गीता मकरंद

भाग - 1

श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी

हिन्दी रूपांतरकार

श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति

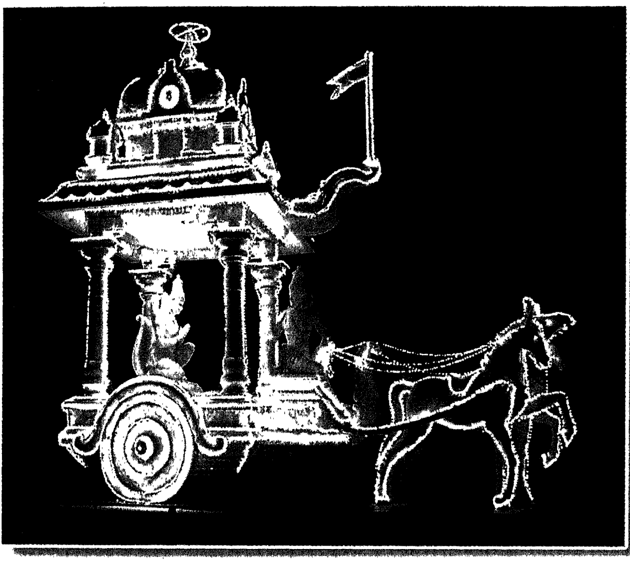

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

2002

गीता मकरंद

श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी
द्वारा तेलुगु में विरचित

प्रथम भाग

(भूमिका सहित दो अध्याय)

हिन्दी रूपांतरकार

श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

2002

GITA MAKARAND Vol - I
(A Commentary on Bhagavad Gita Chapters 1 and 2)

by
Sri Sri Sri Vidya Prakashananda Giri Swamy

Hindi Translation
Vemuri Radhakrisha Murthy

T.T.D. Religious Publications Series No. : 234

© All Rights Reseved

First Edition : 2002

Copies : 2000

Publshed by:
Dr. P. Krishnaiah, I.A.S.
Executive Officer
Tirumala Tirupati Devasthanams
Tirupati - 517 501

Laser Typesetted at :
Annapurna Graphics
53/3, R.S. Gardens, Tirupati
✆ : 35006

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press
Tirupati - 517 507

प्रस्तावना

भारतीय सनातन संस्कृति में श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान महत्त्वपूर्ण है। वेद, उपनिषद्, पुराण आदि प्राचीन पवित्र ग्रंथों का सार ही भगवद्गीता का विषय है। धर्माचरण ही इसका मुख्य लक्ष्य है। धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में पांडवों और कौरवों के बीच में होनेवाले महासंग्राम में संशयग्रस्त व दुःखित महावीर अर्जुन के संशय व संदेहों का निवारण कर, परब्रह्म श्रीकृष्ण ने अपने उपदेशों द्वारा, कर्तव्योंन्मुख किया है। इसमें कर्म, ज्ञान, भक्ति, आत्मा व परमात्मा आदि तत्त्वों का समग्र विश्लेषण मिलता है।

आज के मानव की जीवन-शैली भी अस्त-व्यस्त है। युद्धक्षेत्र में स्थित धर्मभीरु अर्जुन के मन के जैसे, मानव का मन भी संशयोद्वेलित हो, 'किं कर्म किमकर्मेति' परिस्थितियों में आज का मानव किंकर्तव्य विमूढ हो रहा है। केवल गीता का पाठ और मनन करने से ही वह इन बाधाजनक परिस्थितियों से बच सकता है। फिर गीता के उपदेशों का आचरण कर, वह कर्तव्योन्मुख होकर, सुख व शांतिमय जीवन बिता सकता है।

दक्षिण काशी के नाम से विख्यात सुवर्णमुखी नदी तट पर स्थित 'श्रीकाळहस्ती' पुण्यक्षेत्र में श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी 'शुक ब्रह्माश्रमम्' की स्थापना कर, लोक कल्याणार्थ आध्यात्मिक कार्य किया करते थे। उन्होंने अपने जीवन काल में राज्य भर में विस्तृत पर्यटन कर, गीता का प्रवचन सरल व सुबोध तेलुगु में प्रवचन देते हुए पंडित व पामरों के अज्ञानांधकार को दूर करने का सफल प्रयास किया। इसीलिए तेलुगु भाषा-भाषी इनके व्याख्यानों से अधिक प्रभावित हो गये हैं। फिर स्वामीजी "गीता मकरंद" नामक बृहद् ग्रंथ को तेलुगु में प्रकाशित कर चिरस्मरणीय बन गये हैं। इस ग्रंथ की लोकप्रियता को देखकर, तिरुमल तिरुपति देवस्थान ने हिन्दी भाषा-भाषियों को भी इसका परिचय कराने का निर्णय किया है।

इस 'गीता मकरंद' ग्रंथ के प्रारंभ में मूल श्लोक, हर शब्द का अर्थ, तात्पर्य एवं व्याख्या के अलावा गीता के पाठकों के लिए अत्यावश्यक अनेकानेक विषयों

का समावेश किया गया है। वराह पुराण के अन्तर्गत उल्लिखित गीता माहात्म्य के अलावा, स्काद पुराण, महाभारत और वैष्णवीय तंत्रसार आदि में वर्णित गीता माहात्म्य भी तात्पर्य सहित दिया गया है। गीता के जप की पद्धति एवं पारायण का विधान स्पष्ट रूप से दिया गया है।

गीता मंत्रमय है। गीता का हर श्लोक एक महामंत्र है। इस ग्रंथ में बताया गया है कि किन-किन श्लोकों का जप कितने बार, कितने दिन करना है और वैसा करने से क्या फल मिलेगा और लौकिक एवं पारमार्थिक फलों की प्राप्ति के लिए आवश्यक जप एवं साधनाओं का स्पष्टीकरण किया गया है। मात्र लौकिक फलों की प्राप्ति के अलावा, पारमार्थिक फलों की प्राप्ति के लिए आवश्यक संदेश दिया गया है। पद्मपुराण में उल्लिखित अध्यायों के अनुक्रम के अनुसार कथा के रूप में वर्णित गीता पारायण के फल का संक्षिप्त विवरण मिलता है। इस ग्रंथ के आरंभ में स्वामीजी की लिखी विस्तृत भूमिका है। उसमें गीता के मुख्य आशय, गीता तत्त्व एवं गीता की साधनाएँ आदि का स्पष्टीकरण विस्तृत रूप से किया गया है। पाठकों की सुविधा को ध्यान में रखकर ग्रंथ के प्रत्येक भाग के अंत में श्लोकों की अनुक्रमणिका भी दी गयी है।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान द्वारा इस बृहद् ग्रंथ का चार भागों में प्रकाशन किया जा रहा है। प्रथम भाग में स्वामीजी द्वारा रचित भूमिका सहित गीता के पहले छः अध्यायों का विवरण व्याख्या के साथ दिया जा रहा है।

हम इस बृहद् ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोग देनेवाले सभी आध्यात्मिक सेवा निरत व्यक्तियों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं। श्री शुकब्रह्माश्रमम् के संस्थापक एवं चिरस्मरणीय तपस्वी श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी को शतशः प्रणाम अर्पित करते हैं। तेलुगु व हिन्दी भाषाओं में निष्णात तथा हिन्दी रूपांतरकार एवं हैदराबाद के निवासी श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति का आभार व्यक्त करते हैं। सहृदय पाठक इसका अध्ययन कर, अपना भविष्य उज्ज्वल करें। सर्वेश्वर भगवान श्रीकृष्ण की कृपा एवं स्वामीजी का अनुग्रह सभी लोगों पर सदा रहें।

कार्यनिर्वहणाधिकारी,

ति.ति.देवस्थान, तिरुपति।

विषय सूची

क्रम संख्या		पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका	३
२.	पहला अध्याय	२३३
३.	दूसरा अध्याय	२६८
४.	श्लोकों की अनुक्रमणिका	३५७

भूमिका . . .

गीतांजलि

''गीता कल्पतरुं भजे भगवता कृष्णेन संरोपितम्
वेदव्यास विवर्धितं श्रुति शिरो बीजं प्रबोधांकुरम् ।
नानाशास्त्र रहस्य शाख मरति क्षांति प्रवालांकितम्
कृष्णांघ्रिद्वय भक्ति पुष्प सुरभिं मोक्षप्रदं ज्ञानिनाम् ॥''

गीता रूपी कल्पवृक्ष का मैं सेवन करता हूँ। वह भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के द्वारा रोपा गया है। महर्षि वेदव्यास के द्वारा संवारा गया है। उपनिषद् ही इसके बीज हैं। आत्म प्रबोध उसका अंकुर है। विविध शास्त्रों के रहस्य उसकी शाखाएं हैं। वैराग्य एवं सहनशक्ति आदि उसके कोंपल हैं। भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के प्रति भक्ति उसकी सुमन सुगंध है। वह ज्ञानियों के लिए मोक्षदायिनी है।

गीता-जीवजगत् की पथप्रदर्शिका है

महा पुरुषों के अभिमत

१. स्वामी विवेकानन्द -

गीता में भगवान श्रीकृष्णने अर्जुन से जो कुछ कहा वह केवल शब्द समूह नही है। वह ज्ञान का भंडार है। जीवन का आदर्श क्षण भर में वहाँ प्रकट किया गया है। उपनिषद् रूपी बगीचों से आध्यात्मिक सत्य रूपी पुष्प चुन कर बनायी गयी हार है भगवद्गीता।

२. महात्मा गान्धी -

दुखमय वातावरण में रहते हुए भी उससे दूर रहपारहा हूँ, इसका कारण भगवद्गीता ही है।

३. तिलक महाराज -

विश्व साहित्य भर में गीता के बराबर का दूसरा कोई ग्रन्थ नहीं है। वह महान् ज्योतिर्मय अमूल्य रत्न है। वह हमें परमानंद के स्तर पर ले जानेवाला अनुपम साधन है।

४. श्री महर्षि मलयाल स्वामी -

संसार सागर को आसानी से पार करने केलिए भगवद्गीता का पठन और उसके कहे अनुसार आचरण करना काफी है।

५. योगी अरविन्द -

मनुष्य अपनी समस्त मेधा का उपयोग चाहे क्यों न करे, पर वह गीता ज्ञान का एक अंश मात्र जान कर समझ सकता है।

६. श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती -

विश्व वाङ्मय में गीता जैसा महान् ग्रंथराज दूसरा कोई है ही

नहीं। वह ज्ञान का भाडार है। कभी रिक्त न होनेवाला कोष है। आनन्द का सागर है।

७. विनोबाभावे -

मेरे शरीर के विकास में माता के स्तन्य ने जितना सहयोग दिया, मेरी बुद्धि के विकास में भगवद्गीता ने उससे ज्यादा सहयोग दिया।

८. मालव्या -

जहाँ तक मुझे मालूम है विश्व वाङ्मय जगत् में भगवद्गीता से बढकर श्रेष्ठ ग्रन्थ दूसरा कोई नहीं है। वह केवल हिन्दुओं केलिए ही नहीं बल्कि समस्त मानव जगत् केलिए धर्म का भांडार बना हुआ है।

९. एड्विन आर्नाल्ड -

भारतवर्ष का अत्यधिक लोकप्रिय दार्शनिक ग्रन्थ गीता के अभाव में अंग्रेजी साहित्य सचमुच अधूरा रह जाता।

१०. वारन हेस्टिंग्स —

जो मनुष्य ऊँचे शिखरों पर चढना चाहते हैं उनके लिए गीता के उपदेश बडे उपयोगी हैं।

११. बंकिमचन्द —

भगवद्गीता में धर्म का जैसा अपूर्व समन्वय हुआ, जैसी अद्भुत व्याख्या हुई वैसा किसी भी देश में, किसी भी समय में किसी भी व्यक्ति ने कभी नहीं सुना। कभी नहीं देखा।

गीता माई की प्रार्थना

हे माँ ! देवी गीता। हे जगन्माता !

हे चिन्मय स्वरूपिणी ! संसार रूपी धने जंगल में भटकरहे हम लोगों को सही रास्ता तू ने दिखाया है। हमारे भीकर पारिवारिक संकटों एवं परेशानियों को दूर करने का तूने निर्णय किया है। करोडों जन्मों से अज्ञान के निबिड अँधकार में पड कर सडरहे हमें इस जन्म में सौभाग्य से तेरी सेवा का सुअवसर पाकर हमारा हृदय खुशी से फूले नहीं समारहा है। तेरी कृपा से जन जन में ज्ञान का तेज आविर्भूत होरहा है। इससे अविद्या का नाश होकर सांसारिक तिमिर का अंत हो रहा है। अंधेरे से आवृत इस संसार में तू ने हमें रोशनी का मार्ग दिखाया है। हे माँ ! तेरा ऋण हम कैसे चुका सकेंगे? तुझे कोटि कोटि प्रणाम। हे गीतांबिके ! जब भगवान श्रीकृष्ण अपना अवतार समाप्त कर वैकुँठ जाने को उद्यत हुए तब तुझे हमें दे गये। इसलिए तू श्रीकृष्ण का प्रतिनिधि है। नहीं नहीं, साक्षात् कृष्ण रूपिणी है। हे गीतामाई। हम तेरी शरण में हैं। हमारे हार्दिक वंदन स्वीकार कर।

हे ज्ञानदात्री ! जिसने हमारा सृजन किया उस ईश्वर को, उनके उपदेश को, उनके द्वारा प्राप्त अनुष्ठान को किसी भी समय हमें नहीं भूलना चाहिए। शिष्ट जनों का आप्त वाक्य कभी भूलना नहीं चाहिए। इसलिए अपने महान संदेश से हमारी रक्षा करने और हमारा उद्धार करने के लिए कमर कसे तुझे सदा याद रखना हमारा धर्म है। हमारा कर्तव्य है।

हे स्वाराज्य प्रदायिनी ! तूने किसी कौम, किसी धर्म, किसी समुदाय व संप्रदाय की निन्दा नहीं की। समन्वय पद्धति से तूने हमें शिक्षा दी। तूने ढिंढोरा पीट कर हमें समझा दिया कि पापी एवं दुराचारी भी

किसी न किसी दिन पुण्यात्मा बन सकते हैं। निराशा में डूबे निरीह जनों को तूने धीरज बंधाचुकी है। जीव कोटि के अंतःकरण को परिशुद्ध बनाने के अनगिनत मार्ग दिखा चुकी है। हे जगज्जननी ! तेरे उपकार हम कैसे भूल सकेंगे? हम पर अपना ऐसा अनुग्रह कर कि हम कभी तेरे दिव्य संदेश को न भूलें। अपनी इस संतान को आशीर्वाद दे। दीन जनों की रक्षा करनेवाली हे माँ, हम पर तू ऐसी कृपा कर जिससे तेरे भव्य उपदेश हमारे हृदयों की गहराइयों में प्रवेश कर जन्म जन्मों से संचित हमारे दुष्कर्मों का अंत कर दे और ज्ञान के प्रकाश से हमें आलोकित कर दे। तू हम जैसे पतित, दलित, दीन, आर्त, अनाथ जनों को पाप के दलदल से निकाल कर हमारे उद्धार का बीडा उठा चुकी है। हे देवी ! जगद्धात्री ! अंबिके ! अष्टादश अध्यायिनी! तुझे शत सहस्र प्रणाम। स्वीकार कर। भगवान के मुखारविंद से निसृत ज्ञान गंगा रूपिणी हे माँ। उपनिषदों की सार स्वरूपिणी ! भव सागर में डूबे हम जैसों को पार पहुंचाने वाली तू नाव जैसी है। तेरे शरण में हैं। हमें उस पार पहुंचा दे। आशीर्वाद दे कि हमें ज्ञान, वैराग्य आदि मोक्ष के साधन प्राप्त हों। करुणा भरे दिल से हमें ऐसी शक्ति दे कि हम सदा सर्वदा तेरी सेवा करने में समर्थ बनें। भगवान श्रीकृष्ण की पावन-सन्निधि तेरी जन्म स्थली है। वहाँ पहुंचने की हमे शक्ति दे। यही हमारी प्रार्थना है। अनुग्रह कर। अपनी कृपा की हम पर वर्षा कर। पाहिमाम्। पाहिमाम्। पाहिमाम्। पाहि।

गीता की प्रशस्ति

(महाभारत से)

१. गीताशास्त्र मिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान् ।
विष्णोः पद मवाप्नोति भय शोकादि वर्जितः ॥

भाव - परम पावन इस गीता शास्त्र का प्रयत्न पूर्वक जो पठन करता है वह भय एवं शोक रहित होकर विष्णुपद प्राप्त करेगा ।

२. गीताध्ययन शीलस्य प्राणायाम परस्य च ।
नैव सन्तिहि पापानि पूर्वजन्म कृतानि च ॥

भाव - जो गीता का अध्ययन करेगा, जो प्रणायाम करेगा उसके पूर्व जन्म के सभी पाप नष्ट हो जाएंगे ।

३. मल निर्मोचनं पुंसां जल स्नानं दिने दिने ।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसार मलनाशनम् ॥

भाव - जल से हर दिन नहाने पर शरीर का मालिन्य दूर हो जाता है। परन्तु गीता ज्ञान रूपी जल से एक बार नहाने पर सांसारिक मालिन्य सारा नष्ट हो जाता है ।

४. भारतामृत सर्वस्वं विष्णोर्वक्त्रा द्विनिस्सृतम् ।
गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

भाव - महाभारत के अमृतमय सर्वस्व, विष्णु के मुख से निकली गीता गंगा का जल-पान करने से पुनर्जन्म नहीं हो सकता ।

५. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

भाव - सभी उपनिषद् गायें हैं । गोपाल नन्दन श्रीकृष्ण दूध दुहनेवाला है।

अर्जुन बछडा है। महत्वपूर्ण गीतामृत हा क्षीर है। बुद्धिमान जिज्ञासु ही वह दूध पीते हैं।

६. गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसङ्ग्रहैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिस्सृता ॥

भाव - गीता का गान अधिक करना चाहिए। दूसरे शास्त्र संग्रहों से कथा प्रयोजन? क्यों कि गीता स्वयं विष्णु भगवान के मुख कमल से प्रकट हुई है। -

७. सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः
सर्व तीर्थमयी गंगा सर्व वेदमयो मनुः ॥

भाव - गीता सभी शास्त्रों की स्वरूपिणी है। विष्णु सर्वदेवमय है। गंगा सभी तीर्थमयी है। मनु सर्व वेद स्वरूप है।

८. गीता गंगा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते।
चतुर्गकार संयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥

भाव - गीता, गंगा, गायत्री और गोविन्द इन चार गकार युक्त पदार्थ जो अपने हृदय में धरता है उसका पुनर्जन्म नहीं होगा।

९. भारतामृत सर्वस्य गीताया मथितस्य च।
सार मुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखेहुतम् ॥

भाव - महाभारत रूपी अमृत का सर्वस्व ही गीता है। भारत का मंथन कर सार रूपी गीता निकाल कर श्रीकृष्ण ने उसे अर्जुन के मुख में रख दिया। (अर्पित किया)

कृतज्ञता ज्ञापन

गीता
- का उपदेश देनेवाले भगवान श्रीकृष्ण का।
- का निमित्त मात्र बने अर्जुन का
- का छन्दोबद्ध रूप प्रकाश में लानेवाले महर्षि वेदव्यास का।
- का लेखन करनेवाले श्री विघ्नेश्वर का।
- का प्रचार प्रप्रथम करनेवाले संजय का।
- का ताल पत्र-स्वरूप को काल के गर्भ में समा जाने से बचा कर विश्व को समर्पित करनेवाले पुण्यात्माओं का।
- का सूक्ष्म भाव समूह को प्रस्फुटित करनेवाले भाष्यकारों का।
- का प्रचार घर घर में करनेवाले गीता प्रचारकों का।

यह संसार बडा ऋणी है। वह ऋण तभी अदा किया जा सकता है जब कि लोग श्रद्धा एवं भक्ति से उसका पठन करेंगे। उसके भावों को हृदयंगम करेंगे और उसके संदेशों को आचरण में ले आएंगे।

गीता का प्रभाव

(स्कान्द पुराण से)

श्री भगवान उवाच -

१. गीतासार मिदं शास्त्रं सर्व शास्त्र सुनिश्चितम् ।
यत्र स्थितं ब्रह्म ज्ञानं वेद शास्त्र सुनिश्चितम् ॥

"श्री भगवान बोले - गीतासार शीर्षक यह शास्त्र, समस्त शास्त्रों द्वारा निश्चित सिद्धांतों से युक्त है। उसमें वेदशास्त्रों के द्वारा सुनिश्चित ब्रह्मज्ञान विराजमान है"।

२. इदं शास्त्रं मया प्रोक्तं गुह्य वेदार्थदर्पणम् ।
यः पठेत्प्रयतो भूत्वा सगच्छेद्विष्णु शाश्वतम् ॥

"मेरे द्वारा प्रस्तुत यह गीता शास्त्र गोपनीय वेदार्थों को दर्पण की भांति प्रतिबिंबित कर रहा है। जो प्रयत्न कर इसका पठन करेगा वह शाश्वत रूप से विष्णुपद प्राप्त करेगा"।

३. एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःख प्रणाशनम् ।
पठतां श्रुण्वतां वापि विष्णोर्माहात्म्य मुत्तमम् ॥

विष्णु का यह उत्तम माहात्म्य (गीताशास्त्र) पाठकों और श्रोताओं को पुण्य लाभ कराएगा। यह पापनाशक दुःखविनाशक एवं धन्यकारक है।

४. अष्टादश पुराणानि नवव्याकरणानि च ।
निर्मथ्य चतुरो वेदान् मुनिना भारतं कृतम् ॥

५. भारतोदधि निर्मथ्य गीतानिरंधितस्य च ।
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे धृतम् ॥

अठारह पुराणों नौ व्याकरणों और चार वेदों का अच्छीतरह मंथन कर व्यास मुनीन्द्र ने भारत की रचना की। ऐसे महाभारत का मंथन कर सार

(नवनीत) के रूप में गीता को प्रस्तुत कर भगवान श्रीकृष्ण ने उसे अर्जुन के मुँह में रखा।

६. मल निर्मोचनं पुंसां गंगा स्नानं दिने दिने।
सकृद्गीताम्भसि स्नानं संसार मल मोचनम् ॥

प्रति दिन का गंगा स्नान मनुष्यों के शरीर की मलिनता दूर करता है। परन्तु गीतारूपी जल में एक बार स्नान करने से सांसारिक मलिनता एकदम दूर हो जाती है।

७. गीतानाम सहस्रेण स्तवराजो विनिर्मितः।
यस्य कुक्षौच वर्तेत सोऽपि नारायणः स्मृतः ॥

गीता के सहस्रनामों से निर्मित स्तवराज्य का स्मरण जो मनुष्य मन में करेगा वह साक्षात् नारायण स्वरूप कहा गया है।

८. सर्ववेदमयी गीता सर्वधर्ममयो मनुः।
सर्व तीर्थमयी गंगा सर्व देव मयो हरिः ॥

गीता सब वेदों की परिपूर्ण रूपिणी है। मनु सर्व धर्ममय है। गंगा सब तीर्थों से परिपूरित है। विष्णु सर्व देवमय है।

९. पादस्याप्यर्थपादं वा श्लोकं श्लोकार्थ मेव वा।
नित्यं धारयते यस्तु स मोक्ष मधि गच्छति ॥

गीता के एक श्लोक, आधा श्लोक, एक चरण या एक चरणार्थ को ही सही जो मन में धारण करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है।

१०. कृष्ण वृक्ष समुद्भूता गीतामृत हरीतकी।
मानुषैः किं न खाद्येत कलौ मल विरेचिनी ॥

श्रीकृष्णरूपी वृक्ष से निकले गीता रूपी अमृतमय 'हरीतकी फल' लोग क्यों नहीं खाते ? उसे खावें तो वह शरीर में से कलि-मल को बाहर

निकाल देता है।

११. गंगा गीता तथा भिक्षुः कपिलाश्वत्थ सेवनम।
वासरं पद्मनाभस्य पावनं किं कलौयुगे॥

कलियुग में गंगा नदी, गीता, भिक्षु, कपिला गाय, पीपल के पेड आदि भगवान विष्णु के पर्वदिन (एकादशी आदि) से बढकर पावन वस्तु क्या हैं?

१२. गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्माद्विनिस्सृता॥

गीता का गान एवं पठन ज्यादा करना चाहिए। अन्य अनेक शास्त्रों से कया प्रयोजन? क्यों कि गीता शास्त्र स्वय भगवान विष्णु के मुख कमल से निकला है।

१३. आपदं नरकं घोरं गीताध्यायी न पश्यति।

जो गीता का अध्ययन करेगा वह आपदाओं और नरक यातनाओं के दर्शन नहीं करेगा।

एक श्लोकी गीता

यत्र योगेश्वरः कृष्णो
यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूति
धृवा नीतिर्मतिर्मम॥ (भ.गी. ११-७८)

मेरा निश्चित मत है कि जहाँ योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण हैं और गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं, वहाँ पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति'' स्थित रहेंगे।

(सञ्जय)

गीता के १८ नाम

१. गीता गंगाच गायत्री सीता सत्या सरस्वती।
ब्रह्मविद्या ब्रह्मवल्ली त्रिसंध्या मुक्ति गेहिनी ॥

२. अर्थमात्रा चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्ति नाशिनी।
वेदत्रयी पराऽनन्ता तत्त्वार्थ ज्ञान मञ्जरी ॥

३. इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चल मानसः।
ज्ञानसिद्धिं लभेच्छीघ्रं तथान्ते परमं पदम् ॥

गीता के निम्न लिखित नाम हैं -

(१) गीता	(२) गंगा	(३) गायत्री
(४.) सीता	(५) सत्या	(६) सरस्वती
(७) ब्रह्मविद्या	(८) ब्रह्मवल्ली	(९) त्रिसंध्या
(१०) मुक्ति गेहिनी	(११) अर्धमात्रा	(१२) चिदानंदा
(१३) भवघ्नी	(१४) भ्रान्ति नाशिनी	(१५) वेदत्रयी
(१६) परा	(१७) अनंता	(१८) तत्वार्थ ज्ञान मञ्जरी

गीता के इन अठारह नामों का जप जो निश्चल चित्त से सदा करता रहेगा उसे शीघ्रातिशीघ्र ज्ञान की सिद्धि होगी और अंत में परमात्मा के चरणों की प्राप्ति होगी।

गीता के श्लोकों की संख्या

महा भारत के भीष्मपर्व में जब गीता की समाप्ति हुई तब गीता के श्लोकों की संख्या के बारे में श्री वेदव्यास ने बताया -

श्लो ॥ षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्त पंचाशत् सप्त षष्टिं च संजयः ।
धृतराष्ट्रः श्लोक मेकं गीताया मान मुच्यते ॥
(भारत के भीष्मपर्व के ४३ वें अध्याय का श्लोक)

भाव - गीता में भगवान श्रीकृष्ण के मुंह से ६२० श्लोक, अर्जुन के मुंह से ५७ श्लोक, संजय के मुंह से ६८ श्लोक तथा धृतराष्ट्र के मुंह से १ श्लोक निसृत हुये। (कुल ७ ४ ५) लेकिन अब संसार में प्रचलित गीता में श्रीकृष्ण के ५८४ श्लोक, अर्जुन के १४ श्लोक सञ्जय के ४१ श्लोक और धृतराष्ट्र के १ श्लोक (कुल ७०० श्लोक) ही प्राप्त होरहे है । कुछ प्रतियों में १३ वें अध्याय के आरंभ में 'प्रकृतिं पुरुषं चैव' शीर्षक अर्जुन का प्रश्नवाला श्लोक है । इससे मिला कर कुल ७०१ श्लोक होते हैं । बाकी ४४ श्लोकों की खोज करनेवाले बहुत कम हैं । राजस्थान के काठियावाड प्रांत के कुछ विद्वानों ने गीता के तालपत्रों की बडी खोज की। मालूम हुआ कि भोजपत्रों की गीता की एक प्रति प्राप्त की जिसमें ७४४ श्लोक लिखे हुये थे। परन्तु वह संख्या भारत में उल्लिखित संख्या के बराबर नहीं है । फिर भी एक बात स्पष्ट है कि भारत में उल्लिखित संख्या के अनुसार ४४ या ४५ गीता श्लोक कालगर्भ में समा गये। इस बारे में छानवीन करने की सख्त जरूरत है ।

गीता - उपनिषदों का सार है

उपनिषद रूपी गायों का क्षीर ही भगवद्गीता है । उपनिषदों के निगूढ सिद्धांतों का स्पष्टीकरण गीता ने सरल ढंग से किया है । इसलिए उपनिषदों एवं गीता में कई जगहों पर समानता है । ऐसे संदर्भों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

१. गुरु के पास संदेह निवृत्ति के लिए शिष्य जाता है । भक्ति से प्रणाम कर प्रश्न करता है -

उपनिषद् - (१) तद्विज्ञानार्थं स गुरु मेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्म निष्ठम् । तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्त चित्ताय शमान्विताय येवाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्म विद्याम्। (मुंडक १,२=१२,१३)

२. शौनकोऽङ्गीरसं विधि वदुपसन्नः पप्रच्छ (मुंडक १-८)

३. भृगुर्वैवारुणिः वरुणं पितर मापवसार (तै भृ) १)

४. अधीहि भगवन् इति होपससाद सनत्कुमारं वासवः (छां ७-९)

गीता - कार्पण्य दोषोपहतः । (भ.गी. २-७)

२. ब्रह्म विद्या शोक और मोह को दूर करती है -

उपनिषद् - १. तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः (ई.८)

२. तरति शोकमात्मवित् (छां. ८-३)

३. अभयं वै जनक प्राप्तोऽहि (बृ. ४-९-४)

गीता- १. मोहोऽयं निर्गतो मम (भ. ११-९)

२. नष्टो मोहः (भ. १६ - ७३)

३. यज्ञ, दान, तपरूप कर्मा चित्त को परिशुद्धकर ज्ञानोदय केलिए सहायता करते हैं । इसलिए मुमुक्षु को आरंभ में उनको आचरण में लाना चाहिए ।

उपनिषद् १. तदेवं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिशंति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति (वृ. १-४-२२)

गीता- १. नकर्मणा मानारभान्नैष्कर्म्यं

२. यज्ञोदानं तपश्चैव

३. सन्यासस्तु महाबाहो

दुःख माप्तु मयोगतः

४. स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य

४. ज्ञान से अज्ञान का नाश होगा और मोक्ष मिलेगा

उपनिषद् १. तमेवं विद्वानमृत इहभवति नान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय (ना.ड)

२. तमेव विदित्वातिमृत्यु मेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय (श्वे. ३-८)

३. स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैवभवति (मुं. ३-२-६)

४. यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः तदा देव मविज्ञाय दुःख स्यान्तो भविष्यति - (श्वे. ६-२०)

५. ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः (श्वे. २-१५)

६. ज्ञात्वा शिवं शान्ति मत्यन्तमेति (श्वे. ४-१४)

७. निचाय्य तं मृत्युमुखा त्प्रमुच्यते (का)

गीता - १. ज्ञानेन तु तव ज्ञानं

२. यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहं

३. ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति

४. ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिं

५. मोक्ष.-

उपनिषद् १. न च पुनरावर्तते (छां)

गीता - १. मा मुपेत्य पुनर्जन्म

२. यद्गत्वा न निवर्तन्ते

६. सकामकर्म निंद्य है -

उपनिषद् १. प्लवाह्येते अदृढा यज्ञरूपा (मुं. १-२-७)

२. जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा (मुं. १-२-८)

गीता - १. या मिमां पुष्पितां वाचं

७. स्वर्ग की पुनरावृत्ति होगी -

उपनिषद् १. नाकस्य पृष्टे वे सुकृतेऽनु भूत्वा इमं लोकं हीनतरं वाविशन्ति (मुं. १-२-१०)

गीता - १. त्रैविद्या मां सोमपाः

२. ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं

८. ज्ञान से हृदय की गांठ खुलेगी, शंका का समाधान होगा और कर्मक्षय होगा -

उपनिषद १. भिद्यते हृदयग्रन्थिः (मुं. २-३-६)

गीता - १. यथैधान्सि समिद्धोऽग्निः

९. ज्ञान से समस्त पापों का नाश संभव है -

उपनिषद् १ सर्वे प्राप्मानोऽतो निवर्तन्ते (छां. ६-६-२)

२. तं विदित्वा नलिप्यते कर्मणा पापकेन (बृ. ४-४-२२)

गीता - १. अपि चेदपि पापेभ्यः सर्वेभ्यः

१०. प्रणव की उपासना -

मुंडक, प्रश्न, कठ, तैत्तरीय, छांदोग्यादि उपनिषदों में प्रणव की उपासना का उल्लेख है। इसी तरह गीता में भी उसका उल्लेख है।

गीता - ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म . . .

११. ज्ञान के फल में समस्त सत्कर्मों का फल निहित हैं।

उपनिषद् - सर्वं तदभि समेति यत्किंच प्रजाः साधुः कुर्वन्ति यस्तद्वेद यत्स वेद (छां. ४-१-४)

गीता - १. यावानर्थ उदपाने . .

२. सर्वं कर्माखिलं पार्थ . .

३. वेदेषु यज्ञेषु तपःसुचैव . .

१२. ज्ञान की सिद्धि एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए कामना वासना आदि को त्यागना आवश्यक है -

उपनिषद् १. यदा सर्वेप्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिताः

गीता - १. प्रजहाति यदा कामान् . .

गीता में उपनिषदों के वाक्यों का उल्लेख

गीता में उपनिषदों के कुछ वाक्यों का उल्लेख हूबहू हुआ है । वे निम्न प्रकार हैं ।

१. न जायते म्रियते वा कदाचित् (२-२०)

२. उभौतौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते (२-१९)

३. आश्चर्यवत्पश्यति (२-२९)

४. यदक्षरं वेद विदो वदन्ति (८-९)

५. सर्वतः पाणि पादं तत् (१३-१४)

६. सर्वेन्द्रिय गुणाभासं (१३-१५)

७. दूरस्थं चान्तिके च तत् (१३-१६)

८. ऊर्ध्वमूल मधः शाखम् (१४-९)

गीता की महिमा
(वैष्णवीय तन्त्रसार से)

१. शौनक उवाच -

गीतायाश्चैव माहात्म्यं यथावत्सूतमे वद ।
पुरा नारायण क्षेत्रे व्यासेन मुनि नोदितम् ॥

शौनक - हे सूत मुनीन्द्र ! पूर्वकाल में एक बार नारायण क्षेत्र में श्री व्यास मुनीन्द्र ने गीता की जो महिमा बतायी, उसे उसी रूप में मुझे सुनाइये ।

२. सूत उवाच

भद्रं भगवता पृष्टं यद्धि गुप्ततमं परम् ।
शक्यते केन तद्वक्तुं गीतामाहात्म्यमुत्तमम् ॥

सूत - हे शौनक ! तुम ने मंगलदायक प्रश्न पूछा । लेकिन अत्यंत गोपनीय, सर्वोत्तम गीता की महिमा का वर्णन कौन कर सकते हैं?

३. कृष्णो जानाति वै सम्यक किंचित्कुन्ती सुतः फलम् ।
व्यासो वा व्यासपुत्रोवा याज्ञवल्क्योऽथमैथिलः ॥

गीता की महिमा को भली भांति जाननेवाले श्रीकृष्ण एक ही हैं। अर्जुन को उसके बारे में किंचित् मात्र मालूम है । इसी तरह व्यास, शुक, याज्ञवल्क्य तथा जनक कुछ कुछ जानते हैं ।

४. अन्ये श्रवणतः श्रुत्वा लेशं संकीर्तयन्ति च ।
तस्मात्किंचिद्वदाम्यत्र व्यासस्यास्यान्मयाश्रुतम् ॥

बाकी सब सुन सुन कर गीता की महिमा का वर्णन किंचित्मात्र कर पारहे हैं । इसी प्रकार व्यास के मुख से मैंने जो कुछ सुना उसी का अंश मात्र कहता हूँ सुनो ।

५. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधी र्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

उपनिषत् सब गायें हैं। श्रीकृष्ण दूध दुरनेवाला है। अर्जुन बछड़ा है। महत्वपूर्ण गीतामृत ही क्षीर है। बुद्धिमान लोग ही दूध पीनेवाले हैं।

६. सारथ्य मर्जुनस्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ।
लोकत्रयोपकाराय तस्मै कृष्णात्मने नमः॥

जिस महानुभाव ने अर्जुन के रथ का सारथ्य करते हुये भी तीनों लोकों का महान् उपकार करने के निमित्त उसे गीतामृत प्रदान किया उस श्रीकृष्ण भगवान को प्रणाम।

७. संसार सागरं घोरं तर्तु मिच्छति यो नरः।
गीतानावं समासाद्य पारं याति सुखेन सः॥

जो मनुष्य घोर संसाररूप सागर को पार करना चाहता है। वह भगवद्गीता नामक नाव को प्राप्त करे तो आसानी से उस पार पहुंच सकता है।

८. गीताज्ञानं श्रुतं नैव सदैवाभ्यास योगतः।
मोक्षमिच्छति मूढात्मा याति बालक हास्यताम्॥

जो मनुष्य निरन्तर अभ्यास कर, गीताज्ञान को अनुभव में नहीं लाता, पर मोक्ष प्राप्ति की कामना करता है, वह मूर्ख है। बच्चों के परिहास का भी वह पात्र बनता है।

९. ये श्रुण्वन्ति पठन्त्येव गीताशास्त्र महर्निशम्।
न ते वै मानुषा ज्ञेया देवरूपा न संशयः॥

जो मनुष्य दिन रात सदा गीताशास्त्र का श्रवण एवं, पठन करते रहते हैं, वे मनुष्य रूप में स्थित देवता हैं। इसमें शक नहीं है।

१०. गीताज्ञानेन संबोधं कृष्णः प्राहार्जुनाय वै।
भक्तितत्त्वं परं तत्र सगुणं चाथ निर्गुणम्॥

श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश के द्वारा अर्जुन को सम्यक ज्ञान, उत्तम भक्तितत्त्व, एवं सगुण निर्गुण तत्त्व दोनों को भलीभांति समझाया।

११. सोपानाष्टादशैरेव भुक्ति मुक्ति समुच्छ्रितैः ।
क्रमशः चित्तशुद्धिः स्यात्प्रेम भक्त्यादि कर्मसु ॥

भक्ति एवं मुक्तिदायक उपदेशों से समुन्नत अठारह अध्याय रूपी सोपानों के द्वारा प्रेम, भक्ति आदि के साथ कर्मों में प्रवेश करे तो क्रम से जीव का चित्त परिशुद्ध होगा।

१२. साधु गीताम्भसि स्नानं संसारमल नाशनम् ।
श्रद्धा हीनस्य तत्कार्यं हस्तिस्नानं वृथैवतत् ॥

गीता रूपी जल में स्नान करना बहुत ही उत्तम कार्य है। क्योंकि वह संसार के मालिन्य का दूर कर सकता है। परन्तु श्रद्धा रहित को वह कार्य गजस्नान की तरह व्यर्थ ही सिद्ध होगा। (हाथी को जल में छोड़ दें तो वह अच्छी तरह जल में स्नान करके बाहर निकलेगा। पर तुरन्त वह धूल बटोर कर अपने सिर पर ड़ाल लेगा। इससे स्नान का फल उसे प्राप्त नहीं होगा।)

१३. गीतायाश्च न जानाति पठनं नैव पाठनम् ।
न एव मानुषे लोके मोघ कर्म करो भवेत् ॥

गीता का पठन करना, दूसरों से कराना जो नहीं जानता वह इस मनुष्य लोक में व्यर्थ कार्य, करनेवाला है।

१४. यस्माद्गीता न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ।
धिक्तस्य मानुषं देहं विज्ञानं कुलशीलताम् ॥

गीता न समझनेवाले से बढ कर अधम दूसरा कोई नहीं। उसके मानव शरीर, उसके विज्ञान एवं कुलशील को धिक्कार है।

१५. गीतार्थं न विजानाति नाधम स्तत्परो जनः ।
धिग्चरीरं शुभं शीलं विभवं तद्गृहाश्रमम् ॥

गीतार्थ न जाननेवाले से बढ कर अधम दूसरा कोई नहीं हो सकता। उसके सुंदर शरीर, चरित्र, विभव एवं गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

१६. गीताशास्त्रं न जानाति नाधमस्तत्परो जनः ।
धिक् प्रारब्धं प्रतिष्ठां च पूजां मानं महत्तमम् ॥

गीताशास्त्र न जाननेवाले से बढकर नीच मनुज दूसरा कोई नहीं हो सकता। वैसे व्यक्ति के प्रारब्ध, प्रतिष्ठा पूजा एवं सम्मान को धिक्कार है।

१७. गीता शास्त्रे मतिर्नास्ति सर्वं तन्निष्फलं जगुः ।
धिक् तस्यज्ञान दातारं व्रतं निष्ठां तपो यशः ॥

कहा गया है कि जिसकी बुद्धि गीताशास्त्र से प्रेम नहीं करती उसके लिए उपर्युक्त सभी विषय निष्फल हैं। गीताधर्म के विरुद्ध बोलनेवाले के व्रत, निष्ठा एवं यश को धिक्कार है।

१८. गीतार्थ पठनं नास्ति नाधम स्तत्परो जनः ।
गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद्विध्यासुर सम्भवम् ॥

गीतार्थ का पठन न करनेवाले से बढ कर अधम दूसरा कोई नहीं हो सकता। जो ज्ञान गीता को सम्मत नहीं है वह आसुरी प्रकृतिवालों की बुद्धि से जनित है।

१९. तन्मोघं धर्मरहितं वेदवेदान्त गर्हितम्
तस्माद्धर्ममयी गीता सर्वज्ञान प्रयोजिका
सर्वशास्त्र सारभूता विशुद्धा सा विशिष्य ते ॥

गीता के विरोधी जो ज्ञान है वह वेद वेदांतों के द्वारा त्याज्य, धर्मरहित एवं व्यर्थ है। इसलिए धर्मबद्ध, समस्त ज्ञान का बोध करानेवाला, सर्वशास्त्र का सार एवं विशुद्ध होने से गीता सर्वोत्तम है।

२०. योऽधीते विष्णुपर्वाहे गीतां श्री हरिवासरे
स्वपञ्जाग्रच्चलं स्तिष्ठ ञ्छत्रुभिर्नसहीयते ॥

विष्णु पर्व के दिन या एकादशी आदि दिनों में जो आदमी गीता का अध्ययन करेगा, वह सोते, जागते, चलते, बैठते शत्रुओं के द्वारा (काम क्रोध आदि) कभी भी अपमानित नहीं होता।

२१. सालग्रामशिलायां वा देवागारे शिवालये।
तीर्थे नद्यां पठन् गीतां सौभाग्यं लभते धृवम्॥

जो लोग सालग्राम की शिला मंदिर, शिवालय, तीर्थस्थल एवं नदी के किनारे गीता का पठन करेंगे उन्हें सौभाग्य प्राप्त होगा।

२२. देवकी नन्दनः कृष्णो गीता पाठेन तुष्यति।
यथा न वेदैर्दानेन यज्ञ तीर्थ व्रतादिभिः॥

देवकी नंदन श्री कृष्ण भगवान गीता के पठन से जो संतोष प्राप्त करते हैं, वह संतोष वेदों, दानों, यज्ञों एवं तीर्थ व्रतादि से प्राप्त नहीं कर पाते।

२३. गीताधीता च येनापि भक्ति भावेन चोत्तमा।
वेदशास्त्र पुराणानि तेनाधीतानि सर्वशः॥

इस उत्तम गीताशास्त्र का अध्ययन जो मनुज भक्ति भाव से करता है वह सारे वेदों, शास्त्रों एवं पुराणों का अध्येता होता है।

२४. योगिस्थाने सिद्धपीठे शिलाग्रे सत्सभासु च।
यज्ञे च विष्णु भक्ताग्रे पठन् सिद्धिं परां लभेत्॥

योगियों के निवास स्थानों, सिद्धों के पीठों, सालग्राम की शिलाओं, सत्पुरुषों की गोष्ठियों में, यज्ञ यागों तथा विष्णु भक्तों के समक्षा जो लोग गीता का पाठ करते हैं वे उत्तम स्थिति को प्राप्त होते हैं।

२५. गीता पाठं च श्रवणं यः करोति दिने दिने।
क्रतवो वाजिमेधाद्याः कृतान्तेन सदक्षिणाः॥

जो नित्य गीता पाठ या गीता श्रवण करते हैं, वे दक्षिणा के साथ कई अश्वमेध यागों का पुण्यफल पाते हैं।

२६. यः श्रुणोति च गीतार्थं कीर्तयत्येव यः परम्।
श्रावयेच्छ परार्थं वै स प्रयाति परंपदम्॥

जो गीता का श्रवण करते हैं, उसे दूसरों को भी श्रद्धा से सुनाते हैं,

उसके उत्तम भावों से दूसरों को परिचित कराते हैं, वे परमपद प्राप्त करते हैं।

२७. गीतायाः पुस्तकं शुद्धं योऽर्पयत्येवसादरात्।
विधिना भक्तिभावेन तस्य भार्या प्रिया भवेत्॥

२८. यशः सौभाग्य मारोग्यं लभते नात्र संशयः।
दयितानां प्रियो भूत्वा परमं सुख मश्नुते॥

पवित्र गीता ग्रंथ आदर एवं भक्ति भाव से विधि के अनुसार दूसरों को जो समर्पित करते हैं उनकी पत्नी हमेशा पति की आज्ञा माननेवाली होती. है। गीताग्रंथ का दाता, यश, सौभाग्य एवं स्वास्थ्य की प्राप्ति का अधिकारी होता है। अपनी पत्नी आदि का प्रिय बन कर परम सुख का अनुभव करता है।

२९. अभिचारोद्भवं दुःखं वरशापागतं च यत्।
नोपसर्पन्ति तत्रैव यत्र गीतार्चनं गृहे॥

जिस गृह में गीता ग्रंथ पूजा जाता है, वहाँ अभिचार जनित दुख या बडों के शाप आदि से होनेवाले कष्ट आदि पहुँच नहीं पाते। (शत्रु द्वारा किये जानेवाले मारण संबंधी अत्याचार अभिचार कहलते हैं।)

३०. तापत्रयोद्भवा पीडा नैव व्याधिर्भवेत्क्वचित्।
न शापो नैव पापं च दुर्गतिर्नरकं न च॥

जिस गृह में गीता ग्रन्थ पूजा जाता है, वहाँ रोग या व्यथाएँ आदि नहीं होती। शाप, दुर्गति या नरक उन गृह वासियों के पास नहीं फटकते।

३१. विस्फोटकादयो देहे न बाधन्ते कदाचन।
लभेत् कृष्णपदे दास्यं भक्तिं चाव्यभिचारिणीम्॥

गीताभ्यास में लीन लोगों के शरीर पर छाले एवं फोडे आदि नहीं होते। वे भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों में अर्पित होकर दास्य एवं निश्चल भक्ति को प्राप्त होते हैं।

३२. जायते सततं सख्यं सर्वजीव गणैः सह ।
प्रारब्धं भुञ्जतो वापि गीताभ्यासरतस्य च ॥

गीताभ्यास में जो लीन रहता है वह प्रारब्ध का अनुभव करते हुए भी समस्त भूतकोटि से निरन्तर सख्य भाव से रहता है ।

३३. स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा नोपलिप्यते ।
महा पापादि पापानि गीताध्याई करोतिचेत् ॥
न किञ्चित् स्पृश्यते तस्य नलिनी दलमंभसा ॥

वह मुक्त एवं सुखी रहता है । कर्मों से अछूता रहता है । कमल के पत्ते पर जैसे जल रहता है वैसे ही महापाप उसका स्पर्श नहीं करते ।

३४. अनाचारोद्भवं पाप मवाच्यादिकृतं च यत् ।
अभक्ष्य भक्षजं दोष मस्पृश्य स्पर्शजं तथा ॥
३५. ज्ञानाज्ञानकृतं नित्यमिन्द्रियैर्जनितं च यत् ।
तत्सर्वं नाशमायाति गीता पाठेन तत्क्षणात् ॥

अनाचार, दुर्भाषण, अभक्ष्य आहार, अस्पृश्यों का स्पर्श जाने या अनजाने में करना तथा इन्द्रियों के द्वारा नित्य प्रति होनेवाले पाप आदि गीता का पाठ करने से दूर हो जाते हैं ।

३६. सर्वत्र प्रति भोक्ताच प्रतिगृह्य च सर्वशः ।
गीतापाठं प्रकुर्वाणो न लिप्येत कदाचन ॥

हर जगह भोजन करनेवाले, सब से दान लेने वाले अगर गीता का पठन करें तो वे पाप उसका स्पर्श तक नहीं करते ।

३७. रत्नपूर्णां महीं सर्वां प्रतिगृह्य विधानतः ।
गीता पाठेन चैकेन शुद्ध स्फटिक वत्सदा ॥

रत्नों से भरी सारी भूमि को दान के रूप में स्वीकार करने से बढकर एकबार गीता के पठन से मनुष्य शुद्ध स्फटिक की भांति सदा निर्मल बनता है।

३८. यस्यान्त:करणं नित्यं गीतायां रमते सदा।
स साग्निकः सदा जापी क्रियावान् स च पण्डितः ॥

३९. दर्शनीय स्सधनवान स योगी ज्ञानवानपि।
स एव याज्ञिको याजी सर्व वेदार्थ दर्शकः ॥

जिसका अंत:करण नित्य गीता की प्रीति में लगा रहता है, वह अग्निहोत्री, निरंतर जप तप में लीन कर्मनिष्ठ एवं पण्डित बना रहता है। ऐसा गीता सक्त ही दर्शन के योग्य, धनी, योगी, ज्ञानी, यज्ञ करनेवाला, यजमान तथा संपूर्ण वेदार्थ जाननेवाला होता है।

४०. गीतायाः पुस्तकं यत्र नित्य पाठश्च वर्तते।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि भूतले ॥

जहाँ नित्य गीता का पठन होता रहता है वहाँ भूतल पर प्रयाग आदि सभी तीर्थ विद्यमान रहते हैं।

४१. निवसन्ति सदा देहे देहे शेषेऽपि सर्वदा।
सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनो देहरक्षकाः ॥

गीता के पाठक के शरीर में सब तीर्थ सदा बसते हैं। देह के वियोग के बाद भी देह शेष में वे तीर्थ विद्यमान रहते हैं। समस्त देवता, ऋषि एवं योगी उस गीताध्यायी के शरीर की रक्षा करते रहते हैं।

४२. गोपालो बाल कृष्णोऽपि नारद धृव पार्षदैः।
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्तते ॥

जहाँ गीता का पठन होता रहता हैं वहाँ गोप बालक श्रीकृष्ण, नारद, धृव आदि पार्षदों के साथ सहायता पहुँचाने के निमित्त आ जाते हैं।

४३. यत्र गीता विचारश्च पठनं पाठनं तथा
मोदते तत्र भगवान् कृष्णो राधिकया सह ॥

जहाँ गीता पर विचार विनिमय हेतु उसका पठन- एवं पाठन होता रहता है वहाँ भगवान श्रीकृष्ण राधा के साथ पधार कर मोद पाते हैं।

श्री भगवान् उवाच -

४४. गीता मे हृदयं पार्थं गीता मे सार मुत्तमम्।
गीता मे ज्ञान मत्युग्रं गीता मे ज्ञानमव्ययम्॥

श्री भगवान बोले -

हे अर्जुन! गीता ही मेरा हृदय है। गीता ही मेरा उत्तम तत्व है। गीता ही मेरा तेजोमय नाशरहित ज्ञान है।

४५. गीता मे चोत्तमं स्थानं गीता मे परमं पदम्।
गीता मे परमं गुह्यं गीता मे परमो गुरुः॥

गीता ही मेरा उत्तम स्थान है। गीता ही मेरा श्रेष्ठ पद है। गीता ही मेरा परम रहस्य है। गीता ही मेरा परम गुरु है।

४६. गीताश्रयोऽहं तिष्ठामि गीता मे परमं गृहम्।
गीताज्ञानं समाश्रित्य त्रिलोकीं पालयाम्यहम्॥

मैं गीता का आश्रित हूँ। गीता मेरा उत्तम गृह है। गीताज्ञान का आश्रित होकर ही मैं तीनों लोकों का पालन कर रहा हूँ।

४७. गीता मे परमाविद्या ब्रह्म रूपा न संशयः।
अर्थमात्र परा नित्या स्वनिर्वाच्य पदात्मिकाः॥

गीता ही मेरी श्रेष्ठ विद्या है। वह ब्रह्मस्वरूप है। संशय कुछ नहीं है। वह (प्रणव का चौथा पाद रूपी) अर्थमात्र है। उत्कृष्ट है। नित्य है। अनिर्वचनीय है।

४८. गीतानामानि वक्ष्यामि गुह्यानि श्रुणु पाण्डव।
कीर्तनात्सर्व पापानि विलयं यान्ति तत्क्षणात्॥

हे पाण्डु पौत्र अर्जुन! अब तुम्हें गीता के गोपनीय नाम बताता हूँ। सुनो। उनके उच्चारण मात्र से सारे पाप तुरन्त नष्ट हो जाते हैं।

४९. गङ्गा गीता च गायत्री सीता सत्या सरस्वती।
ब्रह्मवल्ली ब्रह्मविद्या त्रिसन्ध्या मुक्ति गेहिनी॥

५०. अर्धमात्र चिदानन्दा भवघ्नी भ्रान्तिनाशिनी।
वेदत्रयी पराऽनन्ता तत्वार्थ ज्ञानमञ्जरी॥

५१. इत्येतानि जपेन्नित्यं नरो निश्चल मानसः।
ज्ञानसिद्धिं लभेन्नित्यं तथान्ते परमं पदम्॥

"गंगा, गीता, गायत्री, सीता, सत्या, सरस्वती, ब्रह्मवल्ली, ब्रह्म विद्या, त्रिसंध्या, मुक्तिगेहिनी, अर्धमात्रा, चिदानन्दा, भवघ्नी, भ्रान्ति नाशिनी, वेदत्रयी, परा, अनन्ता, तत्वार्थ ज्ञानमञ्जरी," ये गीता के दूसरे नाम हैं। स्थिरचित्त होकर मनुष्य को इन नामों का जप करना चाहिए। इससे वह निरंतर ज्ञान प्राप्त करते हुए अंत में परमपद को प्राप्त होगा।

५२. पाठेऽसमर्थः संपूर्णे तदर्थं पाठ माचरेत्।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥

जो मनुष्य गीता का पूरा पाठ नहीं कर सकता उसे अर्ध भाग का पाठ करना चाहिए। तब उसे गोदान से प्राप्त होनेवाला पुण्य अवश्य प्राप्त होगा।

५३. त्रिभागं पठमानस्तु सोमयागफलं लभेत्।
षडंशं जपमानस्तु गंगास्नान फलं लभेत्॥

गीता के तीन भागों का जो पाठ करता है उसे सोमयाग का फल मिलेगा। गीता के छठे भाग (3 अध्याय) का जप करनेवाले को गंगास्नान का फल मिलेगा।

५ . तथाध्यायद्वयं नित्यं पठमानो निरन्तरम् ।
इन्द्रलोकमवाप्नोति कल्पमेकं वसेद्ध्रुवम् ॥

जो मनुष्य गीता के दो अध्यायों का पठन नित्य करेगा वह इन्द्रलोक प्राप्त करेगा एक कल्प तक अवश्य निवास करेगा।

५ . एक मध्यायकं नित्यं पठते भक्ति संयुतः ।
रुद्रलोक मवाप्नोति गणोभूत्वा वसेच्चिरम् ॥

जो मनुष्य नित्य भक्तिभाव से एक अध्याय का पाठ करेगा वह रुद्रलोक प्राप्त करेगा। वहाँ रुद्रगण बन कर चिरकाल वास करेगा।

५६. आध्यायार्थं च पादं वा नित्यं यः पठते जनः ।
प्राप्नोति रविलोकं स मन्वन्तर समाः शतम् ॥

इसी प्रकार जो मनुष्य हर दिन गीता के आधे अध्याय या गीता के चौथे अध्याय का पाठ करेगा वह एक सौ मन्वंतर तक सूर्यलोक में वास करेगा।

५७ गीतायाः श्लोक दशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम् ।
त्रिद्वयेक मेक मर्धं वा श्लोकानां यः पंठेन्नरः
चन्द्रलोक मवाप्नोति वर्षाणामयुतं तथा ।

जो मनुष्य गीता के दस या सात या पांच या चार या तीन या दो या एक या आधे श्लोक का नित्य पाठ करेगा वह दस हजार वर्ष चन्द्रलोक में वास करेगा।

५८. गीतार्थमेक पादं च श्लोक मध्यायमेव च ।
स्मरं स्त्यक्त्वा जनो देहं प्रयाति परमं पदम् ॥

जो मनुष्य गीता के एक अध्याय, या गीता के एक श्लोक या एक पद का स्मरण करते हुए देहत्याग करेगा वह परमपद प्राप्त करेगा।

५९. गीतार्थमसि पाठं वा श्रुणुया दन्तकालतः।
महापातक युक्तोऽपि मुक्तिभागी भवेज्जनः॥

जो मनुष्य अंतिम समय में गीता के मूल श्लोकों या उनके अर्थ का स्मरण करेगा वह महापापी होने पर भी मोक्ष का भागी बन सकेगा।

६०. गीता पुस्तक संयुक्तः प्राणां स्त्यक्त्वा प्रयाति यः।
स वैकुण्ठ मवाप्नोति विष्णुना सह मोदते॥

जो मनुष्य गीता ग्रन्थ हाथ में लेकर प्राण त्याग देगा वह वैकुंठ को प्राप्त होकर विष्णु के साथ आनंद का अनुभव प्राप्त करेगा।

६१. गीताध्याय समायुक्तो मृतोमानुषतां व्रजेत्।
गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्ति मुत्तमाम्॥

जो मनुष्य गीता का अध्ययन करते हुए प्राण त्याग देगा वह फिर से शुद्ध मनुष्य जन्म प्राप्त करेगा। बार बार गीताभ्यास करनेवाला उत्तम मोक्षगति को प्राप्त होगा।

६२. गीतेत्युच्चार संयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत्।
यद्यत्कर्म च सर्वत्र गीतापाठ प्रकीर्तितम्
तत्तत्कर्म च निर्दोषं भूत्वा पूर्णत्व माप्नुयात्॥

"गीता" शब्द का उच्चारण करते हुए प्राण त्यागनेवाला सद्गति प्राप्त करेगा। गीता का पठन तथा गीता का संकीर्तन करते हुए जो जो कर्म किये जाएँगे वे दोष रहित होकर पूर्ण होंगे।

६३. पित्रूनुद्दिश्य यः श्राद्धे गीतापाठं करोति हि।
सन्तुष्टाः पितर स्तस्य निरयादान्ति स्वर्गतिम्॥

श्राद्ध कर्म करते समय पितरों को लक्ष्य कर जो मनुष्य गीता पाठ करेगा उसके पितृ देवता तृप्त होकर नरक से निकल कर स्वर्ग जाएँगे।

६४.	गीता पाठेन संतुष्टाः पितरः श्राद्धतर्पिताः ।
पितृलोकं प्रयान्त्येव पुत्राशीर्वाद तत्पराः ॥

श्राद्ध के अवसर पर तृप्त पितृदेव गीता पाठ से संतुष्ट होकर अपने पुत्रों को आशीर्वाद देकर पितृलोक जाएँगे ।

६५.	गीता पुस्तक दानं च धेनु पुच्छ समन्वितम् ।
कृत्वा च तद्दिने सम्यक् कृतार्थो जायते जनः ॥

गाय की पूंछ के साथ गीता ग्रन्थ भी हाथ में लेकर यथारीति जो मनुष्य गोदान करेगा वह उसी दिन कृतार्थ होगा ।

६६.	पुस्तकं हेम संयुक्तं गीतायाः प्रकरोति यः ।
दत्वा विप्राय विदुषे जायते न पुनर्भवम् ॥

गीता ग्रन्थ का दान सुवर्ण के साथ जो मनुष्य ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ) को करेगा वह फिर इस संसार में पैदा नही होगा ।

६७.	शतपुस्तक दानं च गीतायाः प्रकरोति यः ।
स याति ब्रह्म सदनं पुनरावृत्ति दुर्लभम् ॥

एक सौ गीता ग्रन्थों का दान करने वाला पुनरावृत्तिरहित ब्रह्मधाम को प्राप्त होगा ।

६८.	गीतादान प्रभावेण सप्तकल्पमिताः समाः ।
विष्णुलोक मवाप्यान्ते विष्णुना सह मोदते ॥

गीतादान के प्रभाव से मनुष्य अंत में विष्णु लोक को प्राप्त होगा । वहाँ सात कल्पों तक विष्णु के साथ आनंद पाते हुए वास करेगा ।

६९.	सम्य कृछत्वा च गीतार्थं पुस्तकं यः प्रदानयेत् ।
तस्मै प्रीतः श्रीभगवान् ददाति मनसेप्सितम् ॥

जो मनुष्य गीतार्थ अच्छी तरह सुन कर, गीताग्रन्थ दान करेगा,

उसके प्रति भगवान प्रीति कर उसकी इच्छाओं की पूर्ति करेगा।

७०. देहं मानुष माश्रित्य चातुर्वर्ण्येषु भारत।
न श्रुणोति न पठति गीता ममृत रूपिणीम्।
हस्तात्यक्त्वाऽमृतं प्राप्तं न नरो विषमश्नुते ॥

जो मनुष्य जन्म पाकर, चातुर्वर्णों में पैदा होकर अमृतमयी गीता का श्रवण नहीं करेगा वह हाथ में रखी खीर फेंक कर विष ग्रहण करनेवाला साबित होगा।

७१. जनः संसारदुःखार्तो गीताज्ञानं नमालभेत्।
पीत्वा गीतामृतं लोके लब्ध्वा भक्तिं सुखी भवेत् ॥

सांसारिक दुःखों से संतृप्त मनुष्य को गीता ज्ञान पाना चाहिए। इस प्रकार गीतामृत का पान कर, भगवान की भक्ति पाकर इस संसार में सुख से रहना चाहिए।

७२. गीता माश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः।
निर्धूत कल्मषा लोके गतान्ते परमं पदम् ॥

गीता का आश्रय पाकर इस संसार में जनक आदि कितने ही श्रेष्ठ राजाओं ने पाप रहित होकर कैवल्यपद प्राप्त किया।

७३. गीतासु न विशेषोऽस्ति जनेषूच्चावचेषु च।
ज्ञाने ष्वेव समग्रेषु समा ब्रह्म स्वरूपिणी ॥

गीताध्ययन के बारे में छोटे बडे का अंतर कुछ नहीं है। (सभी गीताध्ययन के अधिकारी हैं।) गीता सभी ज्ञानों में समरूपिणी एवं ब्रह्म स्वरूपिणी है।

७४. योऽभिमानेन गर्वेण गीतानिनां करोति च।
न याति नरकं घोरं यावदाभूतसंप्लवम् ॥

जो मनुष्य अभिमान या अहंकार से गीता की निंदा करेगा, वह प्रलयकाल तक घोर नरक का अनुभव करेगा।

७५. अहंकारेण मूढात्मा गीतार्थं नैव मन्यते।
कुंभीपाकेषु पच्येत यावत्कल्पक्षयो भवेत्॥

जो मूर्ख अहंकार के कारण गीतार्थ का आदर नहीं करेगा वह कल्पक्षय तक कुंभीपाक नरक की यातना भोगेगा।

७६. गीतार्थं वाच्यमानो यो न श्रुणोति समीपतः।
सं सूकरभवां योनि मनेका मधिगच्छति॥

गीतार्थ के वाचन के समय समीप रह कर भी जो मनुष्य उसे नहीं सुनेगा वह कई बार सुअर का जन्म लेगा।

७७. चौर्यं कृत्वाच गीतायाः पुस्तकं यः समानयेत्।
न तस्य सफलं किञ्चित् पठनं च वृथा भवेत्॥

जो मनुष्य गीता ग्रंथ की चोरी करता है, वह कभी सफलता प्राप्त नहीं करता। उसका गीता पाठ व्यर्थ है।

७८. यः श्रुत्वा नैव गीतार्थं मोदते परमार्थतः।
नैव तस्य फलं लोके प्रमत्तस्य यथाश्रमः॥

जो मनुष्य गीता पाठ सुन कर भी उसे परमार्थ मान कर प्रसन्न नहीं होता उसे कोई फल नहीं मिलेगा। पागल के प्रयास की तरह उसका भी श्रम व्यर्थ होगा।

७९. गीतां श्रुत्वा हिरण्यं च भोज्यं पट्टांबरं तथा।
निवेदयेत् प्रदानार्थं प्रीतये परमात्मनः॥

गीता श्रवण कर भगवान की प्रीति के लिए पाठक को सुवर्ण, बढिया भोजन तथा शुभ्र वस्त्र दान में देना चाहिए।

८०. वाचकं पूजयेद्भक्त्या द्रव्य वस्त्रा द्युपस्सरैः ।
अनेकैर्बहुधा प्रीत्या तुष्यतां भगवान् हरिः ॥

'भगवान श्रीहरि प्रसन्न हो' इस भावना के साथ द्रव्य, वस्त्र आदि विविध वस्तुएँ समर्पित कर भक्ति से गीता पाठक की पूजा करनी चाहिए।

सूत उवाच -

८१. माहात्म्य मेतद्गीतायाः कृष्ण प्रोक्तं पुरातनम् ।
गीतान्ते पठते यस्तु यथोक्त फलभाग्भवेत् ॥

सूत बोले --

भगवान श्रीकृष्ण के द्वार बोधित इस गीता की महिमा को गीता पारायण के बाद जो मनुष्य पढेगा वह उपर्युक्त सभी फल प्राप्त करेगा।

८२. गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नै न यः पठेत् ।
वृथा पाठ फलं तस्य श्रम एव ह्युदाहृतः ।

गीता का पाठ करके भी जो मनुष्य गीता की महिमा को नहीं पढेगा, उसके गीतापाठ का फल व्यर्थ होगा। वह केवल श्रम मात्र कहा जायगा।

८३. एतन्माहात्म्य संयुक्तं गीता पाठं करोति यः ।
श्रद्धया यः शृणोत्येव परमां गतिमाप्नुयात् ॥

जो मनुष्य इस माहात्म्य के साथ, गीता का पाठ करेगा, या श्रद्धा से सुनेगा वह उत्तमगति को प्राप्त होगा।

८४. श्रुत्वा गीता मर्थयुक्तां माहात्म्यं यः श्रुणोति च ।
तस्य पुण्यफलं लोके भवेत्सर्व सुखावहम् ॥

जो मनुष्य अर्थ के साथ गीता का श्रवण करेगा, और उसकी महिमा का भी बडी श्रद्धा से श्रवण करेगा उसका पुण्य फल इस संसार में सब को सुख प्राप्त कराएगा।

गीता माता

वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्यायां ननुक्रमात् ।
दशाध्याया: भुजाश्चैक मुदरं द्वे पदांबुजे ।
एवमष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरीश्वरी ।
जानी हि ज्ञान मात्रेण महापातक नाशिनी ।

प्रथम पांच अध्याय गीतादेवी के पांच सिर हैं। बाकी दस अध्याय हाथ हैं। सोलहवाँ अध्याय उदर है। अंतिम दो अध्याय चरण हैं। इस प्रकार अठारह अध्यायों से विलसित महापापों का हरण करनेवाली वाङ्मय रूपिणी, ईश्वरीमूर्ति गीतादेवी को विवेक के साथ समझो।

शुद्धां सनातनी मम्बां शोकमोह विनासिनीम
कृष्ण स्वरूपिणीं गीता मिष्टदेवीं भजाम्यहम् ।

निर्मल सनातन स्वरूपिणी, शोक मोह का नाश करनेवाली, साक्षात् कृष्ण स्वरूपिणी, इष्टदेवी गीता का भजन करता हूँ।

गीता का पूजा विधान

गीता केवल एक ग्रन्थ नहीं है। वह चेतनता का मूर्त रूप है। साक्षात् हैं। इसीलिए व्यक्ति की तरह गीता की भी अर्चना की जाती हैं। अर्चना विधि यहाँ स्पष्ट की जाती है। पवित्र एकादशी के दिन, कृष्णाष्टमी जैसे जो पर्व के दिन, गीता जयंती (मार्गशिर मास की शुद्ध एकादशी) के दिन, भी भी पवित्र अवसर पर या नित्य गीता की पूजा की जासकती है। इससे ज्ञान एवं भगवान की वाणी का निकट संबंध रहता है। इसलिए गीता की भगवान की ही पूजा है। भगवान की पूजा से जो फल मिलते हैं वे सब की पूजा से भी मिलते हैं। वास्तव में गीता के वाक्यों को आचरण में ना ही गीता की सच्ची पूजा है। फिर भी बाह्य पूजा भी जनता के लिए आवश्यक है। पूजा का विधान निम्न प्रकार है।

ॐ गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुंरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मैश्री गुरवेनमः ॥
ॐ कृष्णं कमल पत्राक्षं पुण्य श्रवण कीर्तनम
वासुदेवं जगद्योनिं नौमि नारायणं हरिम् ॥

उपर्युक्त श्लोकों का पठन कर इसके बाद तीन बार आचमन करना चाहिए।

ॐ केशवायस्वाहा, ॐ नारायणायस्वाहा,
ॐ माधवायस्वाहा, गोविन्दायनमः,
विष्णवेनमः, मधुसूदनायनमः,
त्रिविक्रमायनमः, वामनायनमः,
श्रीधरायनमः, हृषीकेशायनमः,
पद्मनाभायनमः, दामोदरायनम।,
संकर्षणायनमः, वासुदेवायनमः,
प्रद्युम्नायनमः, अनिरुद्धायनमः,
पुरुषोत्तमायनमः, अधोक्षजायनमः,
नारसिंहायनमः, अच्युतायनमः,
जनार्दनायनमः, उपेन्द्रायनमः,
हरयेनमः, श्रीकृष्णायनमः,

(इसके बाद निम्न लिखित मंत्र का पाठ करते हुए प्राणायाम करना चाहिए।)

ॐ भूः ॐ भुवः ओ॰ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ओ॰ सत्यं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ।

ॐ आपो ज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवस्सुवरोम् ॥

(इसके बाद घंटी बजाते हुए निम्न लिखित श्लोक का पाठ करना चाहिए ।)

आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम ।
कुरु घण्टारवं तत्र देवताह्वान लांछनम ॥

(इसके बाद दीप जलाकर निम्न लिखित संकल्प मंत्र का पठन करना चाहिए।)

शुभे शोभने मुहूर्ते श्री महाविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य ब्रह्मण: द्वितीय परार्धे श्वेत वराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे कलियुगे प्रथमपादे जम्बूद्वीपे भरतवर्षे भरतखंडे मेरोर्दक्षिण दिग्भागे श्रीशैलस्य आग्नेय (कुछ जगहों पर उस दिशा के अनुसार दिशा का नाम बदलना चाहिए) प्रदेशे कृष्णा कावेर्योर्मध्यप्रदेशे (कुछ जगहों पर नदियों के नाम बदलते हैं) अस्मिन् शोभनगृहे (या पुण्याश्रमे) समस्त देवता ब्राह्मण हरिहर गुरुचरण सन्निधौ, अस्मिन् वर्तमान व्यावहारिक चान्द्रमानेन . . . संवत्सरे . . . अयने . . . . ऋतौ . . . . मासे . . . पक्षे . . . तिथौ . . . वासरे शुभ नक्षत्रे शुभ योगे शुभ करणे एवंगुण विशेषण विशिष्टायां शुभतिथौ श्रीमान् श्रीमत: . . . गोत्रस्य . . . नामधेयस्य मम उपात्त दुरितक्षय द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं समस्त पाप निवृत्यर्थं सर्व दुरितक्षय द्वारा पुण्य फल प्राप्त्यर्थं आत्म शुध्यर्थं भूमण्डले चराचर प्राणिकोटीनां क्षेम स्थैर्य भक्ति ज्ञान वैराग्य फल सिध्यर्थं मम अभीष्ट फल सिध्यर्थं प्रतिबंध रहित ब्रह्म साक्षात्कारज्ञान सिध्यर्थं श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं च संभवता नियमेन संभवद्भिर्द्रव्यै: संभवद्भिरुपचारैश्च यावश्छक्ति श्री गीता देवतामुद्दिश्य श्रीगीता देवता प्रीत्यर्थं ध्यानावाहनादि षोडशोपचार पूजामहं करिष्ये -

आदौ निर्विघ्नेन परिसमाप्त्यर्थं श्री महागणाधिपति पूजां करिष्ये। तदङ्ग कलशाराधनं करिष्ये, कलशे गंधपुष्पाक्षतैरभ्यर्च्य -

(जल से भरे कलश को गंध पुष्प एवं अक्षतों से अलंकृत कर निम्न लिखित मंत्र का पाठ कर पत्ते से कलश के जल का स्पर्श करना चाहिए।)

"गङ्गे च यमुने कृष्णे गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन्सन्निधिं कुरु॥"

आयांतु श्री महागणाधिपतिपूजार्थं मम दुरितक्षय कारका:, कलशोदकेन पूजाद्रव्याणि संप्रोक्ष्य, देवमात्मानं च संप्रोक्ष्य।

(कलश का जल का संप्रोक्षण पूजा द्रव्यों तथा अपने सिर पर करना चाहिए। फिर श्री महागणाधिपती का ध्यान, आवाहन एवं उपचार कर निम्न लिखित

मन्त्रों से पूजा करनी चाहिए।)

ॐ सुमुखायनमः, ॐ एकदंतायनमः,
ॐ कपिलायनमः, ॐ गजकर्णकायनमः,
ॐ लंबोदरायनमः, ॐ विकटायनमः,
ॐ विघ्नराजायनमः, ॐ गणाधिपायनमः,
ॐ धूमकेतवेनमः, ॐ गणाध्यक्षायनमः,
ॐ फालचन्द्रायनमः, ॐ गजाननायनमः,
ॐ वक्रतुण्डायनमः, ॐ शूर्पकर्णायिनमः,
ॐ हेरम्बायनमः, ॐ स्कंदपूर्वजायनमः,
ॐ श्री महागणाधिपतयेनमः, षोडशनाम पूजां समर्पयामि।

श्री महागणाधिपति देवताभ्योनमः, सर्वोपचार पूजां समर्पयामि। अनया पूजाया भगवान् श्री महागणपति देवता सुप्रीता सुप्रसन्ना वरदा भवन्तु।

(बाद अक्षत एवं पुष्प लेकर संकल्प पूरा कर निम्न लिखित मंत्र पढ़ कर उन्हें जल के साथ नीचे छोड देना चाहिए।)

शुभ तिथौ श्रीमद्गीता देवता मुद्दिश्य, श्रीमद्गीता देवता प्रीत्यर्थं यावच्छक्ति छ्यानावाहनादि षोडशोपचारविधानेन श्रीगीतादेवता पूजां करिष्ये।

(गीताग्रन्थ को, हल्दी, कुंकुम तथा पुष्पों से अलंकृत कर उसे एक आसन पर रख कर निम्न प्रकार उसकी पूजा करनी चाहिए।)

अथ प्राण प्रतिष्ठापनं -

"वक्त्राणि पञ्च जानीहि पञ्चाध्याया ननुक्रमात्
दशाध्यायाः भुजाश्चैक मुदरं द्वे पदांबुजे।
एव मष्टादशाध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरीश्वरी
जानीहि ज्ञान मात्रेण महापातक नाशिनी॥"*

ॐ श्री गीतायैनमः - ध्यानं समर्पयामि
ॐ सर्वतीर्थमय्यैनमः - आवाहनं समर्पयामि

ॐ अक्षरायैनमः - आसनं समर्पयामि,

ॐ मलनिर्मोचिन्यैनमः - पाद्यं समर्पयामि,

ॐ सत्यायैनमः - अर्घ्यं समर्पयामि,

ॐ विष्णोर्वक्त्राद्विनिःसृतायैनमः - आचमनं समर्पयामि

ॐ वंद्यायैनमः - पञ्चामृत स्नानं समर्पयामि,

अनन्तरं शुद्धोदक स्नानं समर्पयामि।

ॐ विश्व मङ्गल कारिण्येनमः - वस्त्र युग्मं समर्पयामि,

ॐ सर्वशास्त्र मय्यैनमः - यज्ञोपवीतं समर्पयामि

आभरणानि धारयामि

ॐ सर्वैश्वर्य प्रदायिन्यैनमः - श्रीगंधं समर्पयामि,

ॐ भारतामृत सर्वस्वायैनमः - अक्षतान् समर्पयामि,

पुष्पैः पूजयामि-

(अक्षत या पुष्प हाथ में लेकर निम्न लिखित मंत्रों का पाठ करते हुए गीताग्रन्थ की पूजा करनी चाहिए।)

श्री गीताष्टोत्तर शतनामावली

१. ॐ श्री गीतादेव्यैनमः

२. ॐ विमलायैनमः

३. ॐ सुखदायैनमः

४. ॐ मुनिसंस्तुतायैनमः

५. ॐ तत्वार्थ बोधिन्यैनमः

६. ॐ सर्वलोक संपूज्यायैनमः

७. ॐ श्रीकृष्ण मुख निस्सृतायैनमः

८. ॐ पापघ्न्यैनमः

९. ॐ पुण्यादायैनमः

१०. ॐ महादेव्यैनमः

११. ॐ निष्प्रत्यूह चिदात्मिकायैनमः

१२. ॐ शोक मोहापहन्त्रैनमः

१३. ॐ मोक्षदायैनमः

१४. ॐ ब्रह्मबोधिन्यैनमः

१५. ॐ ब्रह्म विद्यायैनमः

१६. ॐ चिदानन्दायैनमः

१७. ॐ भवधून्यैनमः

१८. ॐ भयनाशिन्यैनमः

१९. ॐ वेदत्रयात्मिकायैनमः

२०. ॐ अनन्तायैनमः

२१. ॐ तत्वार्थज्ञानमञ्जर्यैनमः
२२. ॐ व्यास संग्रथितायै नमः
२३. ॐ पूतायैनमः
२४. ॐ संसारमल मोचन्यैनमः
२५. ॐ सर्वशास्त्रमय्यैनमः
२६. ॐ मात्रेनमः
२७. ॐ सर्वतीर्थमय्यैनमः
२८. ॐ तत्वमस्यादि वाक्योत्थ ब्रह्म तत्वावगाहित्यैनमः
२९. ॐ शान्ति प्रदायैनमः
३०. ॐ परानन्दायैनमः
३१. ॐ बोधामृत तरंगिण्यैनमः
३२. ॐ विश्व संस्कृति समुद्धृतायैनमः
३३. ॐ विश्व धर्म प्रचारिण्यै नमः
३४. ॐ विश्वैकरचनायै नमः
३५. ॐ रमणीयार्थ भासितायै नमः
३६. ॐ रम्यायै नमः
३७. ॐ विश्वमानव संपूज्यायैनमः
३८. ॐ विश्व मंगल कारिण्यैनमः
३९. ॐ विश्व सिद्धान्त सम्मान्यैनमः
४०. ॐ विश्व सम्मोहनाशिन्यैनमः
४१. ॐ विश्व स्वरूपिण्यैनमः
४२. ॐ विश्व वन्द्यायैनमः
४३. ॐ विश्वप्रकाशिन्यैनमः
४४. ॐ विश्वतत्व प्रकाशिन्यैनमः
४५. ॐ त्रिगुणातीत तत्वार्थ भासिन्यैनमः
४६. ॐ लोकोत्तर गुणोपेतायैन
४७. ॐलोकोचित मतान्विता
४८. ॐ लोकोद्धरण संशीलायै
४९. ॐ लोकामोद प्रवर्धितायै
५०. ॐनिहिताखिल शास्त्रार्थ
५१. ॐ शुभौजः पदगुंभितायै
५२. ॐ अनिर्वाच्यायैनमः
५३. ॐ गंभीरायैनमः
५४. ॐ नित्यायैनमः
५५. ॐ नित्य सुखप्रदायैनमः
५६. ॐनैक व्याख्यान संभिन्ना
५७. ॐ नानाचार्यसमादृतायै
५८. ॐ स्वस्वानुकूल भा शोभितायैनमः
५९. ॐ शान्ति दान्तिदायै नम
६०. ॐ नित्यनूतन भावार्थ दा नमः
६१. ॐ लोक कामदायै नमः
६२. ॐप्राच्यपाश्चात्य खंडांतर्नि जनमोदिन्यैनमः
६३. ॐ अक्षरायैनमः
६४. ॐ अद्वेषिण्यै नमः
६५. ॐ सर्वकाल धर्मप्रबोधिन्
६६. ॐ दैव संपत्सु संपन्नायैन
६७. ॐ असुर भावाबि वर्जिता

६८. ॐअष्टादश महायोग भूषितायैनमः
६९. ॐ भुष्ट तारिण्यै नमः
७०. ॐ स्त्री शूद्र समुद्धर्त्र्यै नमः
७१. ॐ समभाव विशोभिन्यैनमः
७२. ॐ ईर्ष्या प्रसूत जात्यादि दुरहंकार घातिन्यै नमः
७३. ॐ चंडाल द्विज शूद्रादि सर्वोद्धरण तत्परायैनमः
७४. ॐ मायापनोदिन्यैनमः
७५. ॐ सत्यायैनमः
७६. ॐ द्वंद्वभेद विनाशिन्यैनमः
७७. ॐ अभेदभाव पीयूष वर्षिण्यैनमः
७८. ॐ ज्ञान भासिन्यैनमः
७९. ॐ त्याग रूपायैनमः
८०. ॐ अनवद्यायैनमः
८१. ॐ विमुक्त फलशालिन्यैनमः
८२. ॐयथाधिकारि निष्कामकर्म ध्यानादि बोधिन्यैनमः
८३. ॐ भवमग्न प्रजा नौकायैनमः
८४. ॐ बंधच्छेद विचक्षणायै नमः
८५. ॐ भगवद्भाव संपूर्णायैनमः
८६. ॐ भववारिधि तारिण्यैनमः
८७. ॐआध्यात्मिक महाकाश लसत्सौदामिनी समायैनमः
८८. ॐ निष्कलायैनमः
८९. ॐ निर्मलायैनमः
९०. ॐ शान्तायैनमः
९१. ॐ सर्वतेजोमय्यैनमः
९२. ॐ शुभायैनमः
९३. ॐ तमो विमूढ लोकान्धकार नोदन चन्द्रिकायैनमः
९४. ॐ श्रुत्यन्तगत तत्वार्थ बोधिन्यैनमः
९५. ॐ बोध भासुरायैनमः
९६. ॐ बोधामृत पयश्शुक्लायैनमः
९७. ॐ पार्थवत्स तरान्वितायैनमः
९८. ॐ दोग्धृकृष्णायैनमः
९९. ॐ गोरूपायैनमः
१००. ॐ कामधेनवे नमः
१०१. ॐ शुगन्तिकायैनमः
१०२. ॐ क्लिन्नपार्थ तमोहंत्र्यैनमः
१०३. ॐ क्षात्र धर्म प्रवर्तिकायैनमः
१०४. ॐकर्तव्यच्च्युत धीमूढजन-सत्पथदर्शिकायैनमः
१०५. ॐसर्व सन्यास संलक्ष्यायैनमः
१०६. ॐ पूर्ण ब्रह्म प्रबोधिन्यैनमः
१०७. ॐ कलि सन्त्रस्त सम्मूढ लोकत्राण चणायैनमः
१०८. ॐ परायैनमः

हरिः ॐ तत् सत्

ॐ इति श्रीभगवद्गीताष्टोत्तर शतनामावली स्तोत्र पुष्पाञ्जलि पूजाम् समर्पयामि। ॐ अष्टाध्यायिन्यैनमः - नानाविध परिमळ पत्र पुष्पाणि समर्पयामि। ॐ भवद्वेषिण्यैनमः - धूप माघ्रापयामि। ॐ सर्वोपनिषत्साररूपिण्यैनमः दीपं दर्शयामि। ॐ अद्वैतामृत वर्षिण्यैनमः -- नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं समर्पयामि। उत्तरापोशनं समर्पयामि। ॐ व्यासेन ग्रथितायैनमः - तांबूलं समर्पयामि। ॐ भारत पंकज स्वरूपायैनमः-कर्पूर नीराजनं दर्शयामि। ॐ भय शोकादि वर्जितायैनमः - मंत्रपुष्पं समर्पयामि। ॐ लोकत्रयोपकारिण्यै नमः - प्रदक्षिणं समर्पयामि। ॐ सर्वज्ञान मय्यैनमः - सर्वोपचार पूजां समर्पयामि। अनया ध्यानावाहनादि षोडशोपचार पूजया भगवती श्री गीता देवता सुप्रीता सुप्रसन्ना वरदा भवतु।

इति श्री गीतादेवी पूजा समाप्ता।

(गीतादेवी की पूजा के अवसर पर भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण एवं सेवन समयोचित है। ऐसा करना मुमुक्षुओं का कर्तव्य भी है। इसलिए भक्त जनों के उपयोगार्थ श्री कृष्णोत्तर शतनामावली का भी विवरण यहाँ दिया जाता है।)

श्रीकृष्णोत्तर शतनामावली

१. ॐ श्रीकृष्णायनमः
२. ॐ कमलनाथायनमः
३. ॐ वासुदेवायनमः
४. ॐ सनातनायनमः
५. ॐ वसुदेवात्मजायनमः
६. ॐ पुण्यायनमः
७. ॐ लीला मानुष विग्रहायनमः
८. ॐ श्रीवत्स कौस्तुभ धरायनमः
९. ॐ यशोदा वत्सलायनमः
१०. ॐ हरयेनमः
११. ॐ चतुर्भुजात्त चक्रानि गदा शखाद्युदारायुधायनमः
१२. ॐ देवकी नन्दनायनमः
१३. ॐ श्रीशायनमः
१४. ॐ नंदगोप प्रियात्मजायनमः
१५. ॐ यमुनावेग संहारिणेनमः
१६. ॐ बलभद्रप्रियानुजायनमः
१७. ॐ पूतना जीवित हरायनमः
१८. ॐ शकटासुरभंजनायनमः
१९. ॐ नंदव्रज जनानंदिनेनमः

२०. ॐ सच्चिदानन्द विग्रहायनमः

२१. ॐ नवनीत विलिप्तांगायनमः

२२. ॐ नवनीत पटायनमः

२३. ॐ अनघायनमः

२४. ॐ नवनीत सवाहारायनमः

२५. ॐ मुचिकुंद प्रसादकायनमः

२६. ॐ षोडशस्त्री सहस्रेशायनमः

२७. ॐ त्रिभंगिनेनमः

२८. ॐ मधुराकृतयेनमः

२९. ॐ शुकवागमृतब्धीन्दनवेनमः

३०. ॐ गोविन्दायनमः

३१. ॐ योगिनांपतयेनमः

३२. ॐ वत्सवाटचरायनमः

३३. ॐ अनंतायनमः

३४. ॐ धेनुकासुर भंजनायनमः

३५. ॐ तृणीकृत तृणावर्तायनमः

३६. ॐ यमलार्जुन भंजनायनमः

३७. ॐ उतालताल भेत्तेनमः

३८. ॐ तमालश्यामलाकृतयेनमः

३९. ॐ गोप गोपेश्वरायनमः

४०. ॐ योगिनेनमः

४१. ॐ कोटिसूर्यसमप्रभायनमः

४२. ॐ इलापतयेनमः

४३. ॐ परंज्योतिषेनमः

४४. ॐ यादवेंद्रायनमः

४५. ॐ यदूद्वहायनमः

४६. ॐ वनमालिनेनमः

४७. ॐ पीतवाससेनमः

४८. ॐ पारिजातापहारकायनमः

४९. ॐ गोवर्धनाचलोद्धर्त्रेनमः

५०. ॐ गोपालायनमः

५१. ॐ सर्वपालकायनमः

५२. ॐ अजायनमः

५३. ॐ निरंजनायनमः

५४. ॐ कामजनकायनमः

५५. ॐ कंजलोचनायनमः

५६. ॐ मधुघ्नेनमः

५७. ॐ मधुरानाथायनमः

५८. ॐ द्वारकानाथायनमः

५९. ॐ बलिनेनमः

६०. ॐ बृंदावनान्त संचारिणेनमः

६१. ॐ तुलसीदासभूषणायनमः

६२. ॐ शमंतकमणेर्हर्त्रेनमः

६३. ॐ नरनारायणात्मकायनमः

६४. ॐ कुब्जाकृष्णांबरधरायनमः

६५. ॐ मायिनेनमः

६६. ॐ परमपुरुषायनमः

६७. ॐमुष्टिकासुरचाणूरमल्लयुद्धविशारदायनमः

६८. ॐ संसारवैरिणेनमः

६९. ॐ कंसारयेनमः

७०. ॐ मुरारयेनमः

७१. ॐ नरकान्तकायनमः

७२. ॐ अनादिब्रह्मचारिणेनमः

७३. ॐ कृष्णाव्यसनकर्शकायनमः

७४. ॐ शिशुपालशिरच्छेत्रेनमः

७५. ॐ दुर्योधनकुलान्तकायनमः

७६. ॐ विदुराक्रूर वरदायनमः

७७. ॐ विश्वरूप प्रदर्शकायनमः

७८. ॐ सत्यवाचेनमः

७९. ॐ सत्यसंकल्पायनमः

८०. ॐ सत्यभामारतायनमः

८१. ॐ जयिनेनमः

८२. ॐ सुभद्रापूर्वजायनमः

८३. ॐ विष्णवेनमः

८४. ॐ भीष्ममुक्तिप्रदायकायनमः

८५. ॐ जगद्गुरवेनमः

८६. ॐ जगन्नाथायनमः

८७. ॐ वेणुनादविशारदायनमः

८८. ॐ वृषभासुरविध्वंसिनेनमः

८९. ॐ बाणासुरकरान्तकायनमः

९०. ॐ युधिष्ठिरप्रतिष्ठात्रेनमः

९१. ॐ बर्हिबर्हावतंसकायनमः

९२. ॐ पार्थसारथयेनमः

९३. ॐ गीतामृतमहोदधयेनमः

९४. ॐ अव्यक्तायनमः

९५. ॐ कालीयफणिमाणिक्यमंडित श्रीपदांबुजायनमः

९६. ॐ दामोदरायनमः

९७. ॐ यज्ञभोक्त्रेनमः

९८. ॐ दानवेन्द्रविनाशकायनमः

९९. ॐ नारायणायनमः

१००. ॐ प्रंरब्रह्मणेनमः

१०१. ॐ पन्नगाशन वाहनायनमः

१०२. ॐ जलक्रीडासमासक्तगोपीवस्त्रापहारकायनमः

१०३. ॐ पुण्यश्लोकायनमः

१०४. ॐ तीर्थपादायनमः

१०५. ॐ वेदवेद्यायनमः

१०६. ॐ दयानिधयेनमः

१०७. ॐ सर्वतीर्थात्मकायनमः

१०८. ॐ सर्वग्रहरूपिणेनमः

१०९. ॐ परात्परायनमः

श्रीकृष्णोत्तरशतनामावली समाप्ता

ॐ तत् सत्

गीता गंगा

श्लोकः -

जातासि त्वं मुरहरि मुखाज्जाह्नवी तस्य पादात्
सर्वान्निभ्युद्धरति भवती सातु मग्नान विधत्ते
प्रत्यग्ब्रह्मामृत रस निधिं प्राप्य विश्राम्यसि
मातर्गीते जडनिधिमियं माति न त्वत्प्रभावः ॥

भावार्थ - हे गीतादेवी ! भगवान विष्णु के चरणों से गंगा आविर्भूत हुयी । पर तुम उस भगवान के श्रीमुख से आविर्भूत हुयी हो । (वाह तुम्हारी कैसी महानता है?) गंगा में गिरनेवालों की भौतिक देह जल में डूब जाती हैं । तुम ज्ञान की गंगा हो। तुममें जो गिरते हैं उन सब का उद्धार करती हो । यही नहीं गंगा नदी, नमकीन जड समुद्र (बंगाल की खाडी) में मिलती है । मगर गीता गंगे! तुम! चेतनामय प्रत्यगात्मा में (ब्रह्मानंद सागर) समाकर विश्राम लेती हो । इस प्रकार की अनुपम प्रभावशालिनी है गीता गंगा माई! तुम्हारी तुलना किससे हम कर सकते हैं?

(कवि का यह चमत्कार है । वे कहना चाहते हैं कि गंगानदी पावन है । लेकिन गीता गंगा उससे भी पावन है ।)

गीता का जपकरने का विधान

("यह लेख, गीता - उसके लौकिक फल एवं गीता - उसके पारमार्थिक फल" ये तीनो लेख गीता प्रेस, गोरखपूर की कल्याण पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर आधारित हैं । प्रकाशकों की अनुमति लेकर उक्त लेखों का सार तेलुगु में हमने प्रकाशित किया । प्रकाशकों के हम कृतज्ञ हैं ।")

गीता भाव जितने गंभीर हैं उसकी भाषा भी उतनी ही पटु है । हर शब्द महान् शक्ति से संपन्न है । भाव एवं अक्षर दोनों की दृष्टि से गीता अत्यंत

महत्व रखती है। गीता का हर श्लोक एक महामंत्र ही है। ७०१ श्लोक ७०१ मंत्र हैं । इसीलिए गीता के ऋष्यादिन्यास में एक वाक्य है "ॐ अस्य श्रीभगवद्गीताशास्त्र महामंत्रस्य" । कहा जा सकता है कि हरि रूप भगवान श्रीकृष्ण तथा अपर हरि स्वरूप (द्विबाहुरपरोहरिः = दो हाथों वाला विष्णु ही व्यास मुनीन्द्र हैं) महर्षि वेदव्यास की दिव्य शक्ति का ही वह प्रभाव है । लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रयोजनों के लिए गीता के मंत्रों का जप किया जा सकता है। पारमार्थिक कामनाओं की पूर्ति के लिए उन उन गीता मंत्रों का अनुष्ठान श्रद्धा के साथ किया जा सकता है। यद्यपि गीता के सभी श्लोक मंत्र हैं परन्तु विशेषकर ४, ९, ११, १२, १३ तथा १५ वें अध्याय मंत्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

सूर्योदय के पूर्व ही उषःकाल में जागना, सीमित सात्विक आहार लेना, ब्रह्मचर्य का पालन करना, सत्य बोलना, मित भाषण करना, जमीन पर लेटना और जहाँ तक हो सके निरंतर "हरिः शरणम्" मंत्र का मन ही मन जप करते रहना इत्यादि पवित्र नियमों का पालन गीता का अनुष्ठान करनेवालों को करना चाहिए।

जप करनेवालों को शौच स्नान आदि से निवृत्त होकर शुद्ध सूती वस्त्र या हिंसा रहित रेशमी वस्त्र पहनकर कुश या ऊन के आसन पर बैठ कर नियमानुसार संध्या, गायत्री जप आदि करना चाहिए। इसके बाद "ॐ केशवायनमः, ॐ नारायणयनमः, ॐ माधवायनमः, ॐ गोविन्दायनमः, ॐ विष्णवेनमः, ॐ मधुसूदनायनमः, "कह कर भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करना चाहिए। फिर संकल्प करना चाहिए कि इस कार्य की सिद्धि केलिए इस मंत्र का जप करूँगा। फिर ॐ क्लीं कृष्णायनमः, वाले मंत्र या जिस मंत्र का जप करना चाहते हैं उस मंत्र का जप करते हुए अंग विन्यास करना चाहिए। (अंग विन्यास का विवरण इस ग्रंथ में प्रकाशित 'गीतापारायण का विधान' शीर्षक लेख में दिया गया है।) इसके बाद हाथ में तुलसी दल एवं पुष्प लेकर भगवान श्रीकृष्ण का आह्वान निम्न लिखित मंत्र से करना चाहिए -

बंशी विभूषित करा न्नवनीरदा भात्
पीतांबरा दरुण बिम्ब फलाधरोष्ठात्
पूर्णेंदु सुंदरमुखा दरविन्द नेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ॥

(हाथ में बासुरी लिए मेघ जैसे कांतिवाले पीतांबरधारी बिंबा फल जैसे अधरों से विलसित पूर्णचन्द्र जैसे सुन्दर मुखवाले कमलनेत्रवाले भगवान श्रीकृष्ण को छोड और किसी तत्व को मैं नहीं जानता।)

बाद षोडशोपचार या पंचोपचार से भगवान श्रीकृष्ण की पूजा करनी चाहिए। एकाग्रचित्त से मंत्रों का जप करना चाहिए। बीच में बातें नहीं करनी चाहिए। भगवान की प्रतिमा पर ध्यान देना चाहिए। इधर उधर देखे बिना शांत एवं प्रसन्न चित्त से मंत्रों का जप करना चाहिए।

सब से बडी शक्तिशाली गुण श्रद्धा है। अटल विश्वास एवं श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करना चाहिए। कभी कभी इच्छा पूरी नहीं होती तो भी बडी श्रद्धा के साथ तीन या सात बार अनुष्ठान करना चाहिए।

जप के बाद उसी मंत्र का पाठ करते हुए दशांश होम करना चाहिए। होम द्रव्यों में तिल, आटा, शक्कर तथा घी को अवश्य मिलाना चाहिए। गेहूँ की खीर बना कर समर्पित करनी चाहिए। एक व्यक्ति के लिए आवश्यक या अपनी शक्ति भर खीर बना कर बाएँ हाथ के अंगूठे एवं तर्जनी को मिला कर "एष बलिः श्रीकृष्णायनमः" कह कर उसे श्रद्धा भरे हृदय से भगवान को समर्पित करना चाहिए। उस बलिवाली खीर को किसी पवित्र बर्तन में रख कर उस पर ढक्कन रखनी चाहिए। उस खीरवाले पात्र को रात भर सिरहाने रख कर अपनी कामना की पूर्ति के लिए भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए। मंत्र का पाठ करते हुए सोना चाहिए। अगले दिन जाग कर वह नैवेद्य किसी गाय को खिलाना चाहिए। जप की समाप्ति के बाद बडी विनम्रता के साथ निम्न लिखित श्लोकों का पठन करते हुए भगवान से क्षमा की याचना करनी चाहिए।

१. आवाहनं न जानामि नै व जानामि पूजनम्
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥

२. अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम
तस्मात्कारुण्य भावेन क्षमस्व परमेश्वर ॥

३. गतं पापं गतं दुःखं गत दारिद्र्यमेव च ।
आगता सुख संपत्तिः पुण्याच्च तव दर्शनात ॥

४. मंत्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तुमे ॥

५. यदक्षर पदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

६. यस्य स्मृत्याच नामोकत्या तपोयज्ञ क्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतामेति सद्यो वन्दे तमच्युतम ॥

७. प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्च्यवेताध्वरेषुयत् ।
स्मरणा देव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

बाद 'अनया यथोपचार पूजया श्रीभगवान् कृष्णः प्रियतां न मम' कह कर साष्टांग नमस्कार करना चाहिए। भगवान का चरणोदक सिर पर थोडा छिडक कर बाद उसका पान निम्न लिखित श्लोकों का पाठ करते हुए करना चाहिए।

१. अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम् ।
विष्णु पादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

२. विष्णु पादाभिषिक्तं यः पात्रेणैव पिबेज्जलम् ।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम् ॥

जो और जप करना चाहते हैं उन्हें निम्न लिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए -

१. जिस मंत्र से सिद्धि पाना चाहते हैं उसका जप तीन हजार बार कृष्णाष्टमी की रात, शरत्पूर्णिमा की रात, दीपावली की रात अथवा वैशाख पूर्णिमा की रात में पवित्र आसन पर बैठकर करना चाहिए। इसके बाद उस मंत्र का अनुष्ठान करने से ज्यादा फायदा होगा।

२. जप के पूर्व पूरी गीता, या उसके ६ अध्याय, या ३ अध्याय या कम से कम १५ वाँ अध्याय पढना चाहिए।

३. विशेष जप जो करना चाहते हैं उन्हें ११ वाँ अध्याय ११ बार, बीच में एवं अन्त में ९१ दिनों तक अवश्य पढना चाहिए। जप के पूरा होने के बाद हो सके तो विधि के अनुसार उस मंत्र से दशांश तर्पण तथा होम कर ब्रह्म निष्ठ व्यक्तियों को भोजन कराना चाहिए। मंत्र का जप करनेवालों को भगवान की पूजा के साथ निम्न सूचित यंत्र की भी पूजा करनी चाहिए।

यंत्र नं १

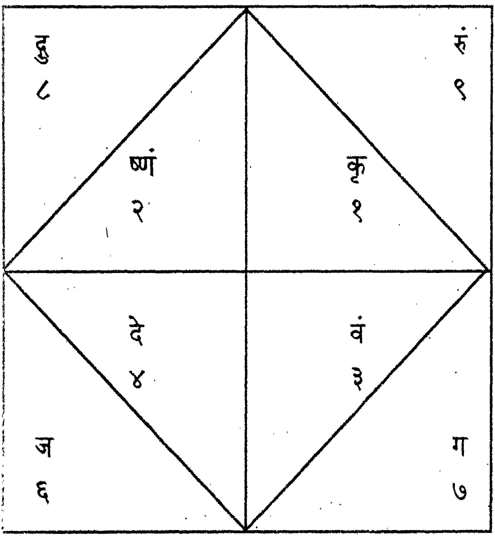

यह यन्त्र तांबे के टुकडे पर होना चाहिए। या श्रीगंध के तख्ते पर अ... की लकडी से लाल चन्दन से लिखा कर पूजा स्थल में रखना चाहि... इस यंत्र में १ से ९ तक के आंकडों तथा 'कृ' से 'रुं' तक के वर्णों को १... ार लिखना चाहिए। ध्यान करते समय गोपालकृष्ण या पार्थसारथी ... प का अंकन मन पर कर लेना चाहिए। गीता के दूसरे अध्याय के ...वें श्लोक का पाठ, १०८ बार शयनैकादशी (असाढ शुद्ध एकादशी) से प्रारंभ कर उत्थानैकादशी (कार्तिक शुद्ध एकादशी) तक हर एकादशी की रात में पवित्र वस्त्र धारण कर अच्छे आसन पर बैठ कर करते हुए गातोक्त रथ पर आसीन भगवान का ध्यान करते हुए, अर्जुन की भांति दीनता के साथ भगवान की प्रार्थना करनी चाहिए। इससे एक न एक एकादशी के दिन स्वप्न में भगवान दर्शन देकर यथा योग्य आदेश देंगे। इसमें साधक के लिए श्रद्धा, धारणा, एवं पवित्रता अत्यंत आवश्यक हैं। साधक जितना उत्तम होगा उसको उतनी जल्दी अनुभूति प्राप्त होगी।

ग्यारहवें अध्याय के छत्तीसवें श्लोक का पाठ कर जल या विभूति को अभिमंत्रित कर भूत प्रेतों से पीडित व्यक्ति को देने से वह उस पीडा से मुक्त होगा। रोगी को देने से शुभफल मिलेगा। कोई व्यक्ति सख्त बीमार पड जाय या कोई जानवर बीमार पड जाय तो तीन हजार बार इस मंत्र का जप कर कुएँ का पानी गिलास में भर कर उसे मंत्र से अभिमंत्रित कर बार बार लगातार घंटों या दिनों तक पिलाते रहने से बीमारी दूर हो जाएगी। जानवरों को चारे में मिला कर या दूसरे और किसी ढंग से पिलाने पर बीमारी दूर होगी।

ग्यारहवें अध्याय के उनचालीसवें श्लोक से अभिमंत्रित करते हुए कुश या नीम की डाली से कई बार पोंछने व झाडने से प्रेत की पीडा दूर होगी।

निष्काम भाव से श्रीमद्भगवद्गीता का शक्ति भर पाठ करने से भगवान की कृपा से भक्ति एवं ज्ञान की प्राप्ति होगी। भगवान के दर्शन कर सकेंगे। जीवन लक्ष्य पूरा होगा। इसके लिए श्रद्धा जरूरी है। पवित्रता एवं सद्गुणों का आर्जन आवश्यक है। गीतोपदेश के अनुसार अपना जीवन यापन करनेवाले

एवं हर दिन गीता का पूरा पाठ करनेवाले महानुभावों के बारे में विशेष रूप से लिखने की कोई जरूरत नहीं हैं।

लोग अपनी अपनी इच्छा के अनुकूल उन उन श्लोकों का पाठ सामान्य रूप से या संपुट शति से कर सकते हैं। (इसी लेख के अंत में स्पष्ट किया गया है कि किस किस इच्छा की पूर्ति के लिए किस किस श्लोक का पठन करना चाहिए।) संपुट रीति दो प्रकार की है। गीता के हर श्लोक के बाद चुने हुए संपुट श्लोक का पाठ कर फिर बाद के श्लोक का पठन करना पहली संपुट रीति के अंतर्गत है।

हर श्लोक के पहले एवं बाद को अर्थात् एक श्लोक का पठन कर दूसरे श्लोक के पठन के पूर्व या बीच में संपुट श्लोक को दो बार उच्चरित करना दूसरी संपुट रीति के अंतर्गत है। इसीको संपुटवल्ली कहते हैं। यह पहले से बढ कर महत्वपूर्ण है। गीता का हर श्लोक मंत्र है। वे सब मनोकामना की पूर्ति कर सकते हैं। इसलिए हर श्लोक का उपयोग संपुट के रूप में किया जा सकता है। (कहा जाता है कि एक सज्जनने गीता के हर श्लोक का संपुट बना कर ७०० बार उनका जप कर सिद्धि पायी।) फिर भी कुछ संपुट श्लोकों का विवरण उनके फलों के उल्लेख के साथ इस लेख के अंत में दिया गया है।

गीता पारायण, पारायण की विधि के अनुसार मंगलाचरण, अंगन्यास, करन्यास, ध्यान, विनियोग तथा संकल्प आदि के साथ ही करना चाहिए। गीता पारायण की विधि का विवरण भी इस ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है। हर दिन गीता का पारायण किया जाय तो अत्युत्तम है। नहीं तो हर दिन ९ अध्यायों के हिसाब से दो दिनों में, ६ अध्यायों के हिसाब से तीन दिनों में, नहीं तो (पहले दिन १,२ अध्यायों, दूसरे दिन ३,४,५ अध्यायों, तीसरे दिन ६,७,८ अध्यायों, चौथे दिन ९,१० अध्यायों, पांचवें दिन ११, १२, १३ अध्यायों, छठे दिन १४, १५, १६ अध्यायों तथा सातवें दिन १७, १८ अध्यायों) के हिसाब से सात दिनों में या रोज २ अध्यायों के हिसाब से ९ दिनों में, यह संभव न हो सके तो एक दिन एक अध्याय के हिसाब से १८

दिनों में पूरा करना चाहिए। पारायण के आरंभ में भगवान श्रीकृष्ण एवं निम्न सूचित षटकोणवाले यंत्र का विधि पूर्वक पूजा करना चाहिए। यंत्र तांबे के पत्र पर लिखा कर उसे सचित्र बनाना चाहिए। नहीं तो चंदन के तख्ते पर लाल चंदन से अनार की छोटी लकडी से लिखना चाहिए।

यंत्र नं - २

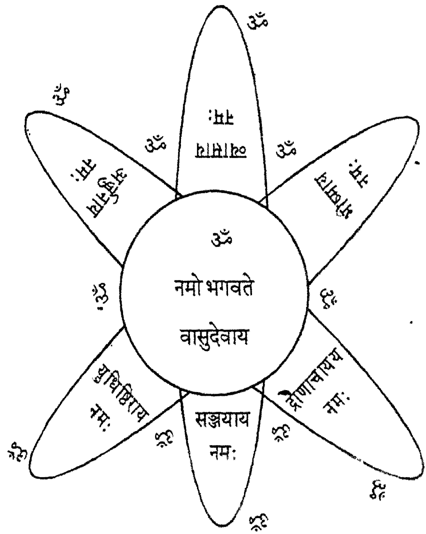

श्रीमद्भगवद्गीता का पूरा पारायण विधिवत् एक वर्ष तक किया जाय तो हर कार्य सफल होगा। निम्न सूचित नव कोठक यंत्र (नं.३) तांबे के पत्र पर या चंदन के तख्ते पर लिखा कर उसकी पूजा करनी चाहिए। पारायण के समाप्त होने के बाद नित्य ''क्लीं कृष्णायनमः'' मंत्र का जप तीन हजार बार करना चाहिए।

यंत्र नं. ३

कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण
कृष्ण	क्लीं कृष्णाय नमः	कृष्ण
कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण

कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण
कृष्ण	क्लीं कृष्णाय नमः	कृष्ण
कृष्ण	कृष्ण	कृष्ण

भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष कृपा की प्राप्ति के लिए निम्न सूचित यंत्र (नं.४) की पूजा करनी चाहिए।

यंत्र नं. ४

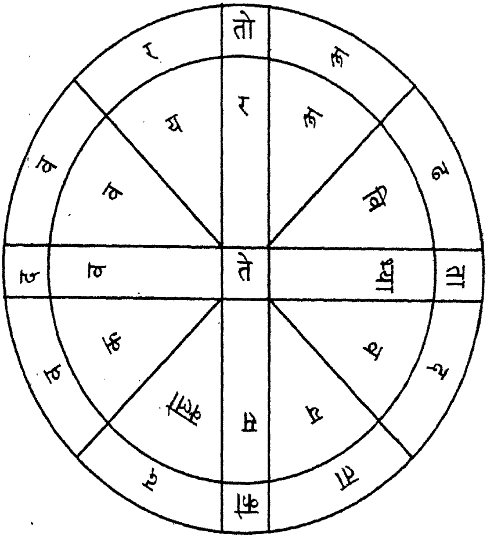

इस यंत्र को तांबे के पत्र या चंदन के तख्ते पर लिख कर हर दिन उसकी पूजा करते हुए पारायण विधि के अनुसार गीता का पूरा पारायण रोज करना चाहिए। "ॐ ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं कृष्णाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा" इस अष्टादशाक्षर मंत्र का जप हर दिन ११०० बार करना चाहिए। इस प्रकार लगातार गीता का पारायण एवं जप तीन वर्ष तक किया जाय तो भगवान की कृपा की प्राप्ति प्रत्यक्ष रूप से होगी। भगवान का साक्षात्कार सुलभ होगा। ४० दिनों तक हर दिन "संहारक्रम" अर्थात् १८ वें अध्याय से आरंभ कर १वें अध्याय तक उस ओर से इस आर उलटा ३ बाार पाठ किया जाय तो बंध मुक्ति होगी।

इसी प्रकार 'स्थिति क्रम' से ४० दिन नित्य तीन बार पढने से लक्ष्मी की प्राप्ति होगी। छठे अध्याय से १८ वें अध्याय तक, फिर ५ वें अध्याय से

पहले अध्याय तक पढने को स्थितिक्रम कहा जाता है।

पहले अध्याय से १८ वें अध्याय तक पढना सृष्टिक्रम कहा जाता है। यह श्रेष्ठ एवं मनोरथ की पूर्ति करनेवाला माना जाता है।

सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ''यत्र योगेश्वरः कृष्णो'' (१८ से ७८) वाले मंत्र का संपुट बना कर जप करना चाहिए। सभी रोगें के शमन के लिए इस मंत्र का संपुट बना कर १० वें अध्याय का पारायण करना चाहिए। भोजन के समय हर दिन १५ वें अध्याय का पठन करने से हित होता है।

जप के समाप्त होने पर क्षमा याचना के श्लोकों का पारायण कर चरणोदक लेना चाहिए। पूरी श्रद्धा एवं अचंचल विश्वास के साथ विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी। किसी भी कार्य का परिणाम अवश्य दिखायी देगा। कोई भी कार्य निष्फल नहीं होगा। ऐसी हालत में संयम एवं नियम के साथ किया जानेवाला गीता पारायण तथा जप कभी भी व्यर्थ नहीं होगा। इसलिए कुछ भी हो गीता का जप छोडना नहीं चाहिए। श्रद्धा विश्वास में कमी नहीं होनी चाहिए। गीता का अध्ययन एवं जप करने से लौकिक तथा पारमार्थिक फल दोनों मिलते हैं। किस किस श्लोक का जप कितने हजार करना चाहिए, और इससे क्या क्या फल मिलेगा इस का विवरण यहाँ दिया जाता है। पहले गीता से प्राप्त होनेवाले लौकिक फलों के बारे में फिर पारमार्थिक फलों के बारे में यहाँ विवरण दिया जाता है।

गीता - लौकिक फल

लौकिक फलों की प्रारित के लिए गीता के कुछ श्लोक (मंत्र) इस लेख में उधृत किये जा रहे हैं। एक एक फल के लिए यद्यपि कई श्लोकों का उल्लेख किया गया है तथापि श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उनमें से किसी एक श्लोक का पाठ किया जाय तो भी लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है।.किस मंत्र का पाठ कितनी बार करना चाहिए, किस देवता का ध्यान कितने दिन करना चाहिए इसका भी विस्तृत विवरण यहाँ दिया जा रहा है। कुछ भी हो, किसी कामना को लेकर गीता का पाठ नहीं करना चाहिए, निष्काम भावना से ही गीता का पाठ करना चाहिए गीता में भगवान ने खुद कहा है कि कृपणाः फल हेतवः अर्थात् फल की कामना करनेवाले अल्प (हल्के) हैं। अतः मनुष्य को धीरे धीरे निष्काम कर्म, भगवान को प्रसन्न कर सकनेवाले कर्म तथा फलरहित अनुष्ठान की ओर अग्रसर होना चाहिए। गीता के श्लोकों के महत्वं पर प्रकाश डालने तथा आम जनता के हृदय में गीता के प्रति आस्था पैदा करने के लिए ही लौकिक फलों का विवरण दिया जारहा है। इसलिए फल प्राप्ति को ही जीवन का चरम लक्ष्य नहीं मानना चाहिए। निष्काम भावना से गीता का पठन करते हुए उसके अनुष्ठान पर ध्यान देना है। इससे अंतःकरण शुद्ध होगा। भगवान की प्राप्ति सुलभ होगी।

१. कार्य की सफलता केलिए -

१. मंत्र- ***धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।***
मामकाः पाण्डावाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ (१-१)

(१) मंत्र - की कुल जप संख्या - २१००० (इक्कीस हजार)
जपनें के कुल दिन - २१ (इक्कीस)

मन में भगवान के किस रूप का ध्यान करना चाहिए ? - पार्थसारथी।

फल - कार्य में सफलता मिलेगी।

२. मंत्र - *एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।*
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥ (३-४३)
जप की संख्या - ४१०००
जप की अवधि के दिन - २१
ध्यान का रूप - गोपालकृष्ण
फल - कार्य में सफलता।

३. मंत्र - *यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।*
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (९-२७)
जपसंख्या - १५०००० एक लाख पंचास हजार।
जप की अवधि के दिन - ५०
ध्यान का रूप पार्थसारथी।
फल - कार्य में सफलता।

४. मंत्र - *ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।*
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते॥ (१३-१२)
जप संख्या - ५,००,००० पांच लाख।
जप के दिन - १५०
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - कार्य में सफलता।

संपुट की रीति के अनुसार इस मंत्र का पाठ ५१ बार करने से भी कार्य की सिद्धि होगी।

५. मंत्र- *सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।*
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
जप संख्या - २५००० पच्चीस हजार।
जप के दिन - २५

ध्यान का रूप - पार्थ सारथी।

फल - कार्य में सफलता।

६. मंत्र- सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

संपुट की रीति के अनुसार इस मंत्र का १५१ बार पाठ करने से सभी कार्य सफल होंगे।

२. रोग का निवारण -

१. मंत्र -कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ (२-२)

जप संख्या - २५००० पच्चीस हजार।

जप के दिन - ११ ग्यारह।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - रोग का निवारण।

संपुट की रीति के अनुसार १०० बार इस मंत्र का पाठ करने से रोग का निवारण होगा।

२. मंत्र -मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ (७-७)

जप संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ७५ हचहत्तर।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - रोग का निवारण।

संपुट की रीति के अनुसार इस मंत्र का पाठ १०० बार करने से रोग का निवारण होगा।

स्वप्न का साकार होना -

१. मंत्र - कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (२-७)
जप की संख्या - ५१,००० इक्कावन हजार।
जप के दिन - २१ इक्कीस दिन
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - स्वप्न साकार हागा।

संपुट की रीति से ५१ बार इस मंत्र का जप करने से स्वप्न साकार ागा।

२. मंत्र - व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ (३-२)
जप की संख्या - ११,००० ग्यारह हजार।
जप के दिन - ११ ग्यारह।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - स्वप्न में आदेश मिलेगा।

. विपत्ति का दूर होना -

१. मंत्र - लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥ (३-३)
जप की संख्या - १,२५,००० एक लाख पच्चीस हजार।
जप के दिन - ४१ इकतालीस।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - विपत्ति का निवारण होगा।

संपुट की रीति से १०० बार इस मंत्र का जप करने से विपत्तियों का

निवारण होगा।

२. मंत्र - भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥ (५-२९)
जप की संख्या - ४३,००० तैंतालीस हजार।
जप के दिन - २१ इक्कीस।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - विपत्ति का निवारण।

५. पूर्व जन्म का ज्ञान -

१. मंत्र - अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति॥ (४-४)
जप की संख्या - ५,००,००० पांच लाख।
जप के दिन - १५० एक सौ पचास।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त होगा।

संपुट की रीति से १५० बार इस मंत्र का जप करने से उपर्युक्त फल मिलेगा।

२. मंत्र - बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप॥ (४-५)
जप की संख्या - ६,००,००० छः लाख।
जप के दिन - १५१ एक सौ इक्कावन।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - पूर्व जन्म का ज्ञान प्राप्त होगा।

६. धन की प्राप्ति -

१. मंत्र - यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥ (५-५)

जप की संख्या - ४०,००० चालीस हजार।

जप के दिन - ३१ इक्तीस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - अचानक धन की प्राप्ति होगी।

पुट की रीति से ५१ बार इस मंत्र का जप करने से उपर्युक्त फल मिलेगा

. मंत्र- वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि॥
(१०-१६)

जप की संख्या - ३६,००० छत्तीस हजार।

जप के दिन - १५ पन्द्रह।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - धन की प्राप्ति।

. मंत्र - यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि
विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥ (११-४२)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - लक्ष्मी की प्राप्ति।

पुट की रीति से १०० बार इस मंत्र का जप करने से उपर्युक्त फल मिलेगा

मंत्र - अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।

तदेव मे दर्शय देवरूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ (११-४५)

जप की संख्या - १५,५०,००० एक लाख पचास हजार।
जप के दिन - ५० पचास।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - ऐश्वर्य की प्राप्ति।

संपुट की रीति से १०० बार इस मंत्र का जप करने से भी उपर्युक्त फल मिलेगा।

११ वें अध्याय के निम्न लिखित मंत्रों का जप उसी संख्या के अनुसार करने से एक एक मंत्र के लिए वही फल मिलेगा।

(अ) मा ते व्यथा मा च विमूढभावो
दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ्ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं
तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ (११-४९)

(आ) इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा
स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं
भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ (११-५०)

(इ) दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ (११-५१)

(ई) सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ (११-५२)

(उ) नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ (११-५३)

६. मंत्र- नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥ (११-४०)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - दरिद्रता दूर होगी।

७. शत्रुओं पर विजय -

१. मंत्र - बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥ (६-६)

जप की संख्या - २१,००० इक्कीस हजार।

जप के दिन - २१ इक्कीस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - शत्रुओं तथा द्वेष करनेवालों पर विजय।

२. मंत्र - १. शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥ (६-२५)

२. यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (६-२६)

जप की संख्या - १३,००० तेरह हजार।

जप के दिन - २६ छब्बीस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - शत्रुओं पर विजय।

८. लोक प्रियता -

१. मंत्र - यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ (६-३०)
जप की संख्या - ५,१०,००० पांच लाख दस हजार।
जप के दिन - १५० एक सौ पचास।
ध्यान का रूप - गोपालकृष्ण
फल - लोकप्रियता।

९. ऋण से मुक्ति -

१. मंत्र - सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ (६-३१)
जप की संख्या - ५,१०,००० पांच लाख दस हजार
जप के दिन - १५७ एक सौ सत्तावन।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - ऋण से मुक्ति।

२. मंत्र - तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ (१२-७)
जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार
जप के दिन - ५० पचास।
ध्यान का रूप - पार्थ सारथी।
फल - ऋण से मुक्ति।

संपुट की रीति से १०० बार इस मंत्र का जप करने से ऋण से मुक्ति मिलेगी

१०. शत्रुओं से मुक्ति -

१. मंत्र - अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ (८-८)
जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - शत्रुओं से मुक्ति मिलेगी।

११. संतान की प्राप्ति -

मंत्र - न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।

उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ (९-९)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - २१० दो सौ दस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - संतान की प्राप्ति।

१२. योग क्षेम की प्राप्ति -

मंत्र - अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (९-२२)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ७५ पचहत्तर।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - योग क्षेम की प्राप्ति।

१३. सुख की प्राप्ति -

मंत्र - पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ (९-२६)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - गोपालकृष्ण।

फल - सुख की प्राप्ति।

संपुट की रीति के अनुसार २५१ बार इस मंत्र का जप करने से उपर्युक्त फल मिलेगा।

१४. भय का निवारण -

१. मंत्र - मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (९-३२)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - भय नष्ट हो जाएगा।

२. मंत्र- श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।

अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते॥ (१७-१७)

जप की संख्या - ७५,००० (पचहत्तर हजार)

जप के दिन - १५ पन्द्रह।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - शत्रु-भय नष्ट हो जाएगा।

१५. सिद्धियों की प्राप्ति -

मंत्र - मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः॥ (९-३४)

जप की संख्या - २०,१०,००० बीस लाख दस हजार।

जप के दिन - ७५ पचहत्तर।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - सिद्धियों की प्राप्ति।

१६. दुःख का निवारण -

१. मंत्र- यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ (१०-३)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ५० पचास।

फल - दुःखों का अन्त होगा।

२. मंत्र- तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।

ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥ (१०-१०)

जप की संख्या - ३६,००० छत्तीस हजार।

जप के दिन - ३१ इक्तीस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - विपत्ति का नाश।

३. मंत्र- श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।

ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥

(१२-१२)

जप की संख्या - १५,००० प्रन्द्रह हजार।

जप के दिन - २१ इक्कीस।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - दुःख का अन्त।

१७. विघ्नों का अन्त -

मंत्र - दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्।

सर्वाश्चर्यमयं देवमनन्तं विश्वतोमुखम् ॥ (११-११)

जप की संख्या - १३,००० तेरह हजार।

जप के दिन - १५ पन्द्रह।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - विघ्नों का अन्त।

संपुट की रीति के अनुसार ५१ बार इस मंत्र का जप करने से उपर्युक्त फल की प्राप्ति होगी।

१८. **प्रेम की वृद्धि -**

१. मंत्र- त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूपम् ॥ (११-३८)
जप की संख्या - १५,००० प्रन्द्रह हजार ।
जप के दिन - २१ इक्कीस ।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।
फल - प्रेम की वृद्धि ।

२. मंत्र- ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ (१८-१८)
जप की संख्या - १५,००० पन्द्रह हजार ।
जप के दिन - २१ इक्कीस ।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।
फल - प्रेम की वृद्धि ।

१९ **भूत प्रेत से रक्षा -**

१. मंत्र- वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशाङ्कः
प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः
पुरश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ (११-३९)
जप की संख्या - १५,००० पन्द्रह हजार ।
जप के दिन - १५ पन्द्रह
ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।
फल - भूत प्रेत से रक्षा होगी ।

१. भूत प्रेत की पीडा के निवारण के लिए संपुट की रीति के अनुसार ५१ बार

निम्न लिखित मंत्र का जप कर सकते हैं।

मंत्र - स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ (११-३६)

२०. प्रसन्नता की प्राप्ति -

मंत्र - पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ (११-४३)
जप की संख्या - १५,००० पन्द्रह हजार।
जप के दिन - १५ पन्द्रह
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - प्रसन्नता की प्राप्ति।

२१. गुरुदेव की ओर से गलतियों को क्षमा करना -

मंत्र - तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ (११-४४)
जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।
जप के दिन - ५० पचास।
ध्यान का रूप - पार्थसारथी।
फल - गुरुदेव गलतियों को क्षमा करेंगे।

२२. मृत्यु के समय का ज्ञान -

मंत्र - यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ (१८

जप की संख्या - एक लाख ।

जप के दिन - ५१ इक्कावन ।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।

फल - मृत्यु के समय का ज्ञान होगा ।

२३. उदर संबंधी रोगों का शमन -

मंत्र - अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ (८)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख प ज़ार ।

जप के दिन - १५ पन्द्रह ।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।

फल - उदर संमंधी रोगों का शमन होगा ।

संपुट की रीति के अनुसार ५१ बार इस मंत्र के जपने से उपर्युक्त फ लेगा।

२४. दोषों का नाश एव क्रोध का शमन -

१. मंत्र- सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (१५-१५)

जप की संख्या - १,१०,००० एक लाख दस हजार ।

जप के दिन - ११० एक सौ दस ।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी ।

फल - क्रोध का शमन होगा ।

२. मंत्र- अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।

प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ (१६-१६)

जप की संख्या - १०,००० दस हजार।

जप के दिन - ११ ग्यारह

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - दोषों का नाश होगा।

३. मंत्र- त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।

काम: क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(१६-२१)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - १५० एक सौ पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - काम, क्रोध एवं लोभ पर विजय प्राप्त होगी।

२५. वैभव की प्राप्ति -

मंत्र- यो मामेवमसंमूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।

स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ (१५-१९)

जप की संख्या - १,५०,००० एक लाख पचास हजार।

जप के दिन - ५० पचास।

ध्यान का रूप - पार्थसारथी।

फल - वैभव की प्राप्ति।

गीता के पारमार्थिक प्रयोजन

जो साधक गीता के पारमार्थिक प्रयोजनों के आकांक्षी हैं उन्हें निम्न लिखित विवरण के अनुसार उल्लिखित मंत्र का जप भक्ति भाव से करना चाहिए। पिछले लेख में मंत्र पूरे दिये गये हैं, अत: इस लेख में मंत्र संक्षेप में दिये जाते हैं। एक एक प्रयोजन के लिए यद्यपि कई मंत्र दिया गया है तथापि विधिवत् एक मंत्र का जप सूचित संख्या के अनुसार करें तो फल अवश्य मिलेगा।

फल या प्रयोजन	मंत्र या श्लोक	अध्याय श्लोक	जप की संख्या	जप की अवधि के दिन	ध्यान का रूप	संपुट की रीति से जप कितनी बार?
अन्तःकरण की शुद्धता	धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	१-१	२५०००	२१	पार्थसारथी	
	व्यामिश्रेणेव वाक्येन	३-२	११०००	११	पार्थसारथी	
	सर्वतः पाणिपादं तत्	१३-१३	२५०००	२५	पार्थसारथी	
मानस के ताप का शमन	तस्त्वा कश्मलमिदं	२-३	२५०००	२५	पार्थसारथी	१००
काम आदि शत्रुओं पर विजय	एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा	३-४३	४१०००	२१	गोपालकृष्ण	
	अभ्यास योग युक्तेन	८-८	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	त्रिविधं नरकस्येदं	१६-२१	१५००००	१५०	पार्थसारथी	
	श्रद्धया परया तप्तं	१७-१७	७५०००	१५	पार्थसारथी	
भक्ति भावना की दृढता	बहूनि मे व्यतीतानि	४-५	६०००००	५१	पार्थसारथी	
	यो मां पश्यति सर्वत्र	६-३०	५१००००	१५०	गोपालकृष्णं	५१
	श्रेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि	१३-१२	५०००००	१५०	पार्थसारथी	
	यो मामेवमसंमूढो	१५-१९	१५००००	५०	पार्थसारथी	
चित्त की चंचलता का निवारण	लोकेस्मिन्द्विविधा निष्ठा	३-३	१५००००	४१	पार्थसारथी	१००
साधना के विघ्नों का नाश	भोक्तारं यज्ञतपसां	५-१९	८३०००	२१	पार्थसारथी	
	दिव्य माल्यम्बरधरं	११-११	[illegible]	[illegible]	पार्थसा[illegible]	

फल या प्रयोजन	मंत्र या श्लोक	अध्याय श्लोक	जप की संख्या	जप की अवधि के दिन	ध्यान का रूप	संपुट की रीति से जप कितनी बार?
मन पर विजय एवं ध्यान की योग्यता की प्राप्ति	शनैश्शनै रुपरमेद्बुद्ध्या	६-२५			पार्थसारथी	
	यतो यतो निश्चरति	६-२६	१३०००	२६	पार्थसारथी	
	वायुर्यमोग्निर्वरुण: शशाङ्क:	११-३९	१५०००	१५	पार्थसारथी	५१
शरणागति की योग्यता की प्राप्ति	कार्पण्य दोषोपहत स्वभाव:	२-७	५१०००	२१	पार्थसारथी	५१
	मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य	९-३२	५००००	५०	पार्थसारथी	
	मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु	९-३४	२१००००	७५	पार्थसारथी	
विश्वास की दृढता	अपरं भवतो जन्मपरं जन्म विवस्वत:	४-४	५०००००	१५०	पार्थसारथी	१५०
सांख्य निष्ठा की योग्यता	यत्सांख्यै: प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते	५-५	४००००	३१	पार्थसारथी	५१
ज्ञान की परिपक्वता	सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्ये कत्वमास्थित:	६-३१	५१००००	१५७	पार्थसारथी	
द्वेषभाव का निवारण	बन्धुरात्मात्मनस्तस्ययेनात्मैवात्मना जित:	६-६	२१०००	२१	पार्थसारथी	
					पार्थसारथी	
सर्वत्र भगवान के दर्शन की योग्यता की प्राप्ति।	मत्त: परतरं नान्यत्	७-७	१५००००	७५	पार्थसारथी	१००
	पत्रं पुष्पं फलं तोयं	९-२६	१५००००	५०	गोपालकृष्ण	१५१
कर्मयोग की परिपक्वता।	न च मां तानि कर्माणि	९-९	१९००००	२१०	पार्थसारथी	

फल या प्रयोजन	मंत्र या श्लोक	अध्याय श्लोक	जप की संख्या	जप की अवधि के दिन	ध्यान का रूप	संपुट की रीति से जप कितनी बार?
योगक्षेम की प्राप्ति	अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।	९-२२	१५००००	७५	पार्थसारथी	
भगवान की कृपा	यत्करोषि यदश्नासि	९-२७	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	वक्तुमर्हस्य शेषेण	१०-१६	३६०००	२१	पार्थसारथी	
भगवान की प्रसन्नता	पितासि लोकस्य चराचरस्य	११-४३	१५०००	१५	पार्थसारथी	
भगवान की ओर से गलतियों की माफी	तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं	११-४४	१५००००	५०	पार्थसारथी	१००
भगवान के दर्शन	अदृष्टपूर्वं हृषितोस्मिदृष्ट्वा	११-४५	२५००००	५०	पार्थसारथी	
	मा ते व्यथा मा च विमूढभावो	११-४९	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा	११-५०	१०००००	५०	पार्थसारथी	
	दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं	११-५१	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	सुदुर्दश्यमिदं रूपं	११-५२	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	नाहं वेदैर्न तपसा	११-५३	१५००००	५०	पार्थसारथी	
पाप का नाश	यो मामजमनादिं च	१०-३	१५००००	५०	पार्थसारथी	
दोष का निवारण	श्रेयोहि ज्ञानमभ्यासात् अनेक चित्त	१२-१२	१५०००	२१	पार्थसारथी	
	विभ्रान्ता	१६-१६	१००००	११	पार्थसारथी	
विवेक की प्राप्ति	अनेक बाहूदर वक्त्रनेत्रं यच्चावहासार्थ	११-१६	१३०००	१५	पार्थसारथी	

फल या प्रयोजन	मंत्र या श्लोक	अध्याय श्लोक	जप की संख्या	जप की अवधि के दिन	ध्यान का रूप	संपुट की रीति से जप कितनी बार?
	मरुत्कृतोसि	११-४२	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	अहं वैश्वानरो भूत्वा	१५-१४	१५००००	१५	पार्थसारथी	
प्रेम की वृद्धि	त्वमादिदेव: पुरुष: पुराण	११-३८	१५०००	१५	पार्थसारथी	
	ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता	१८-१८	१५०००	२१	पार्थसारथी	
योगयुक्त होना	तेषां सतत युक्तानां	१०-१०	३६०००	३१	पार्थसारथी	
मोह का नाश	नम: पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते	११-४०	१५००००	५०	पार्थसारथी	
भगवान की प्राप्ति की योग्यता	तेषांमहं समुद्धर्ता	१२-७	१५००००	५०	पार्थसारथी	
	सर्वधर्मान्परित्यज्य	१८-६६	१५००००	५०	पार्थसारथी	१००
मृत्यु के समय भगवान के नाम का स्मरण	यदासत्वे प्रवृद्धे तु	१४-१४	१०००००	५१	पार्थसारथी	१५१
क्रोध का शमन	सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो	१५-१५	११००००	११०	पार्थसारथी	
विघ्नों का अंत	दिव्य माल्यांबरधरं	११-११	---	---	---	५१

गीता की अमोघ शक्ति का कारण

गीता को	सुनानेवाला सुननेवाला लिखनेवाला	श्रीकृष्ण

सब को विदित है कि गीता को सुनानेवाला श्रीकृष्ण हैं। सुननेवाला अर्जुन है। संदेह हो सकता है कि अर्जुन कैसे श्रीकृष्ण बनेंगे? उस संदेह का निवारण स्वयं भगवान ने गीता के १० वें अध्याय में (विभूति योग) किया। श्रीकृष्ण ने वहाँ कह दिया कि पाण्डवानां धनञ्जयः अर्थात् पञ्च पांडवों में अर्जुन मैं ही हूँ। अतः अर्जुन स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। अब लिखनेवाला व्यास है। संदेह हो सकता है कि व्यास कैसे श्रीकृष्ण बनेंगे? इस संदेह का भी निवारण उसी अध्याय में किया गया है भगवान ने कहा है कि "मुनीना मप्यहं व्यासः" अर्थात् मुनियों में वेदव्यास मैं हूँ। इससे स्पष्ट है कि व्यास स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। इस प्रकार तीन कृष्णों की दिव्य तप की शक्ति से विलसित महान् ग्रन्थ है गीता। इसीलिए गीता को अद्भुत शक्ति प्राप्त हुयी है।

भाग्य की संख्या - १८

गीता के अध्यायों की संख्या -	१८
महाभारत के युद्ध के कुल दिन -	१८
युद्ध के सैनिकों की संख्या - (अक्षौहिणियों में)	१८
महाभारत ग्रन्थ के पर्वों की संख्या -	१८

अक्षौहिणी	२१८७० हाथी	२+१+८+७+० = १८
	२१८७० रथ	२+१+८+७+० = १८
	६५६१० घोडे	६+५+६+१+०= १८
	१०९३५० पैदल चलनेवाले सैनिक	१+०+९+३+५+० = १८

मोक्षरूपी सौध के सोपान*

अंत:करण के चतुष्टय	- १	
पंचप्राण	- ५	
पंच ज्ञानेन्द्रिय	- ५	१+१+५+५+५+१ = १८
पंच कर्मेंन्द्रिय	- ५	
देह		- १
दृश्य		- १

मनुष्य के शलिग होने के वर्ष	- १८
मंदिर की सीढियाँ	- १८
यज्ञ के ऋत्विक	- १८
प्रथम उपनिषत् ईशावास्य के मंत्र	- १८
गीता के दुसरे अध्याय के 'आत्मवर्णन' संबंधी श्लोक	- १८
गीता के दूसरे अध्याय के स्थितप्रज्ञ लक्षण संबंधी श्लोक	- १८
देवी दुर्गा की भुजाएँ	- १८

बडों तथा ज्ञानियों का कथन है कि सांख्य मत के अनुसार १८ संख्या 'सोऽहं' की भावना सूचित करती है। या 'अहं ब्रह्मास्मि' वाले महावाक्य का अर्थ सूचित करता है।

---

* दृश्यं देहं च वागादि श्रोत्रादीन्द्रिय पंचकम्
प्राणादि पंचकं चैव तथाऽन्त:करण मेव च।
मुक्ति सौधस्य सोपाना अष्टादश इतीरिता:
एतान्क्रमेण चारुह्य ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥

भावार्थ :- दृश्य, देह, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच प्राण, अन्त:करण चतुष्टय नामक अठारह मोक्षरूपी सौध के सोपान कहे गये हैं। इन्हें क्रम से पार कर मुमुक्षु परब्रह्म बनता है।

अध्यायों के क्रम से विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा कहे गये श्लोकों की संख्या -

अध्याय	धृतराष्ट्र	सञ्जय	अर्जुन	श्रीकृष्ण	अध्याय के कुल श्लोकों की संख्या	व्यक्तियों के द्वारा कहे गये श्लोकों की संख्या
१	१	२५	२१	-	४७	
२	-	३	६	६३	७२	
३	-	-	३	४०	४३	
४	-	-	१	४१	४२	
५	-	-	१	२८	२९	
६	-	-	५	४२	४७	
७	-	-	-	३०	३०	
८	-	-	२	२६	२८	श्रीकृष्ण - ५७४
९	-	-	-	३४	३४	अर्जुन - ८५
१०	-	-	७	३५	४२	सञ्जय - ४१
११	-	८	३३	१४	५५	धृतराष्ट्र - १
१२	-	-	१	१९	२०	
१३	-	-	१	३४	३५	गीताश्लोक
१४	-	-	१	२६	२७	कुल ७०१
१५	-	-	-	२०	२०	
१६	-	-	-	२४	२४	
१७	-	-	१	२७	२८	
१८	-	५	२	७१	७८	
	१	४१	८५	५७४	७०१	

गीता के श्लोकों के छन्दों का विवरण

गीता में ५ प्रकार के छन्दों का उपयोग किया गया है। वे हैं अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति और विपरीतपूर्वा। किस किस अध्यास में कौन कौन से श्लोक किन किन छन्दों में हैं, उनका विवरण नीचे दिया गया है। इनके अलावा जो श्लोक बचे हैं वे सब अनुष्टुप छन्द ही हैं। उनकी संख्या कुल ६४६ है।

छन्द	अध्याय	श्लोकों की संख्या	कुल
इन्द्रवज्रा	२	७,२९	२
इन्द्रवज्रा	८	२८,	१
इन्द्रवज्रा	९	२०	१
इन्द्रवज्रा	११	२०, २२, २७, ३०	४
उपेन्द्रवज्रा	१५	५,१५	२
उपजाति	११	१८, २८, २९, ४५	४
उपजाति	२	५, ६, ८, १०, २२, ७०	६
उपजाति	८	९, १०, ११	३
उपजाति	९	२१	१
उपजाति	११	१५,१६, १७, १९, २१, २३,२४,२५,२६,३१,३२, ३३,३४,३६,३८,४०,४१, ४८,४९, ५०	२४
उपजाति	१५	२, ३, ४	३
विपरीत पूर्व	११	३५, ३७, ३९, ४४	४

अनुष्टुप	६४६ श्लोका	
इन्द्रवज्रा	१० श्लोकाः	
उपेन्द्रवज्रा	४ श्लोकाः	
उपजाति -	३७ श्लोकाः	
विपरीतपूर्व -	४ श्लोकाः	
गीता के कुल श्लोक	७०१	

गीता - स्तोत्र कदंब

१. इदं गीताशास्त्रं परमपुरुषार्थैक निलयं

[illegible] वेदार्थं [illegible] संगृह्य [illegible]

स्वयं श्रीकृष्णेन [illegible]

जपा ध्याना ज्ञाना [illegible] बुद्धिमताम् ॥

गीताशास्त्र परम पुरुषार्थ रूपी मोक्ष का निलय है । काण्डत्रयात्मक वेद का सारा अर्थ संगृहीत कर सर्व व्यापी भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा विस्तार से यह बताया गया है । इसलिए इसका जप, ध्यान एवं श्रवण करने और इसका ज्ञान प्राप्त करने से बुद्धिमानों को अवश्य फल प्राप्त कराएगा ।

२. रता: केचि द्योगे विजित करणा: संयतधिय:

क्रिया जाते किञ्चित्सुखलवरसास्वादन परा:

रता: शास्त्रभ्यासे विशदमतय: केचि दजडा

वयं तु श्रीकान्ताननवचन मास्वाद्य कृतिन: ॥

कुछ लोग अपनी बुद्धि को संयमित कर इन्द्रियों को जीत कर योग के प्रति आसक्त होते हैं और कुछ लोग थोडे सुख के लिए अनेक क्रिया काण्डों के प्रति आसक्त होते हैं । कुछ बुद्धिमान अपनी बुद्धि को निर्मल बनाकर शास्त्राभ्यास में निरत रहते हैं । परन्तु हम लक्ष्मीपति भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकले वाक्यों (गीताशास्त्र) का स्वाद लेकर कृतार्थ हुए हैं ।

३. वार्ष्णेय ब्रह्म शैलादृजु शतपथगा ज्ञान विज्ञान कूला

प्रार्थस्य प्रार्थनार्ताश्चिर ममृतवहा प्रत्यगानन्द सिंधुम ।

संप्राप्तार्थ प्रवाह प्रपतित विततताश्वत्थ मुल्मालयन्ती

गीता स्फीता निमङ्क्तु सकल कलिमलं स्वर्धुनीयं धुनीते ॥

जो परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण रूपी पर्वत के शिखर से अर्जुन की प्रार्थना पर निसृत हुआ, जो टेढेपन से रहित बहु मार्गों से विहित है, जो ज्ञान विज्ञान रूपी

तीर्थों से विलसित है, जो शाश्वत अमृत प्रवाह से भरा है, जो प्रत्यगात्मा रूपी आनन्द सागर में समारहा है, जो परमार्थ रूपी प्रवाह का अवरोध बन कर (संसार) षडे अश्वत्थवृक्ष को समूल उखाड रहा है, जो अपने में डूबनेवालों के कलि कश्मल को हर रहा है, वह गीता शास्त्र निर्मल गंगा की धारा की तरह शोभित है।

४. आचार्याः सन्ति शुत्वाप्यति विमलधियो वेदशास्त्रा गमानां
दुष्प्रापस्तावदान्ते त्रिजगति नितरामात्म तत्वोपदेष्टा।
एवं सत्युर्जुनस्याद्भुत विकलवतो वर्ण्यते किन्नु भाग्यं
यस्याचार्यस्य हेतोः स्वयमुपनिषदा मर्थ आविर्बभूव ॥

वेदशास्त्रों के ज्ञाता, अति निर्मल चित्तवाले गुरु जहाँ तहाँ मिल सकते हैं। परन्तु केवल आत्मतत्व का बोध अनुभवपूर्वक पानेवाले महानुभाव तीनों लोकों में बहुत कम मिलते हैं। इस हालत में युद्ध के मैदान में बन्धु बान्धवों को देखकर विकलचित्त बने अर्जुन का भाग्य ही भाग्य है कि गुरु के रूप में साक्षात् उपनिषदों का सार ही मानों मूर्तरूप धारण कर उनके समक्ष आविर्भूत हुआ।

५. क्व शास्त्रं गीताख्यं हरिमुख सरोजा द्विगलितं
क्व चास्माकं बुद्धि विषयविष पङ्के निपतिता।
तथापि श्रीकान्त प्रचुरगुण लक्ष्मी विरचितं
कटाक्षं स्वच्छाच्छं ह्यनुसृतवतां किं न सुलभम् ॥

भगवान के मुख कमल से निसृत गीता महाशास्त्र कहाँ? विषय रूपी विष पङ्क में डूबी हमारी बुद्धि कहाँ? तो भी अनंत सद्गुणों से विलसित निर्मल उस लक्ष्मीपति की कृपा के पात्र बने मनीषियों के द्वारा वह सुलभता से समझा जा सकता है।

वेदोदधि प्रमथितं वासुदेव समुद्धृतम।
सन्तः पिबन्ति सततं गीतामृत रसायनम् ॥

वेदरूपी क्षीर सागर का मंथन कर भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा बाहर निकाले गये गीतामृत का पान सत्पुरुष निरंतर कर रहे हैं।

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं
एको देवो देवकीपुत्र एव
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

सभी शास्त्रों में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का गाया गीता शास्त्र ही बढिया है। सभी देवताओं में देवकीपुत्र श्रीकृष्ण ही बडे हैं। सभी मंत्रों में श्रीकृष्ण का नाम ही सर्वश्रेष्ठ हैं। सभी कर्मों में श्रीकृष्ण की सेवा ही महान है।

भारते सर्व वेदार्थो भारतार्थश्चकृत्स्नशः
गीता यामन्ति तेनेयं सर्वशास्त्र मयी मता ॥

समस्त वेदों का सार महाभारत में है। भारत का सार गीता में है। इसीलिए भगवद्गीता सर्वशास्त्रमय कहा जाता है।

श्री गोविन्द मुखारविन्द मधुनामिष्टं महाभारते
गीताख्यं परमं रहस्य मृषिणा व्यासेन विख्यापितम्।
व्याख्यातं भगवत्पदैः प्रतिपदं श्रीशंकराभ्यैः पुन
र्विस्पष्टं मधुसूदनेन मुनिना स्वज्ञान शुद्ध्यै कृतम् ॥

श्री गोविन्द के मुखारविन्द से निसृत, अत्यंत मधुर, गीता नामक परम रहस्य महाभारत में महर्षि व्यास के द्वारा प्रकट किया गया। श्री शंकर भगवत्पाद ने उसकी विपुल व्याख्या की। फिर मधुसूदन सरस्वती अपने ज्ञान की शुद्धि के लिए उसका भाव स्पष्ट रूप से लोगों को समझा चुके।

भगवद्गीता किञ्चिदधीता
गङ्गाजललव कणिका पीता
सकृदपि येन मुरारिसमर्चा
तस्य करोति यमोऽपि न चर्चाम् ॥

जो भगवद्गीता का थोडा बहुत अध्ययन करेगा, जो गंगा जल का थोडा बहुत पान करेगा, जो एक बार ही सही विष्णु की पूजा करेगा, उसके बारे में यमधर्मराज चर्चा नहीं करेंगे'।

गेयं गीतानाम सहस्रं
ध्येयं श्रीपतिरूप मजस्रं
नेयं सज्जन सङ्गे चित्तं
देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥

भगवद्गीता एवं विष्णु सहस्रनाम का पाठ सदा करना चाहिए। सत्पुरुषों के सांगत्य में चित्र को लगाना चाहिए। दीन जनों को धन का दान करना चाहिए।

गीकारं त्यागरूपं स्यात्तत्वबोधं तकारम्।
गीता वाक्यमिदं तत्वं ज्ञेयं सर्वमुमुक्षुभिः ॥

'गी' का अर्थ है त्याग। 'त' का अर्थ है तत्त्वज्ञान। सभी मुमुक्षुओं को अच्छी तरह समझना चाहिए कि इस प्रकार त्याग एवं तत्त्वज्ञान का बोध करानेवाला ही गीता शास्त्र है।

४. गकार

गीता गंगा च गायत्री गोविन्देति हृदिस्थिते ।
चतुर्गकार संयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ।। (महाभारत)

गीता, गंगा, गायत्री, गोविन्द	जिसके जीवन में ये चारों विद्यमान रहते हैं उसका पुनर्जन्म नहीं होता। (गीताध्ययन, गंगा स्नान, गायत्री मंत्र का जप एवं गोविन्द का ध्यान ये चारों हर जीवन के लिए अति मुख्य हैं। वह मनुष्य जनन, मरण रूपी सांसारिक दुःखों से मुक्त होकर कैवल्य पद प्राप्त करता है।)

गीताचार्य स्तोत्र

यस्य कृपा कटाक्षेण संसारोऽयं प्रणश्यति ।
सर्वगं सच्चिदात्मानं तं वन्दे पार्थसारथिम् ।।

जिसके कृपा कटाक्ष से इस संसार का दुःख नष्ट हो जाता है, उस सर्वव्यापी, सच्चिदानन्द स्वरूप, अर्जुन के सारथी भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम।

व्यवहित पृतनामुखं निरीक्ष्य
स्वजनवधाद्विमुखस्य दोष बुद्ध्या ।
कुमति महर दात्मविद्यया यः
स भवतु मे भगवान गति र्मुकुन्दः ।।

(भागवत - भीष्मस्तुति)

दोनों पक्षों की सेनाओं को युद्ध केलिए सन्नद्ध देखकर, स्वजनों का वध दोषपूर्ण मानकर, युद्ध करने से इनकार करनेवाले अर्जुन की विपरीत

बुद्धि को अपने आत्मिक विद्योपदेश से सही रास्ते पर लानेवाले भगवान श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करें।

यदिच्छातरिं प्राप्त गोतापयोधौ
न्यमज्जं गृही ताति चित्रार्थरत्नम्।
न चोत्थातु मस्मि प्रभुर्हर्ष योगात्
स मे कौतुकी नन्दसूनुः प्रियः स्यात्॥

जिसकी प्राप्ति की अभिलाषा रूपी नाव प्राप्त कर गीता सागर में डूब कर उसके चित्र विचित्र (ज्ञान) रत्न पाकर आनंद से फूले न समाकर ऊपर उठ नहीं पा रहा हूँ। उस परमानंद स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण मेरा हित करें।

शोक पङ्क निमग्नं यः सांख्ययोगोपदेशतः।
उज्जहारार्जुनं भक्तं स कृष्णः शरणं मम॥

दुःख रूपी दल दल में धंसे अर्जुन का जिसने अपने ज्ञानोपदेश से उद्धार किया वह भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे लिए शरण्य हैं।

पीतं वासो दधानं विजयरथ गतं ब्रह्मरुद्रादि वन्द्यं
भूमेर्भारं जिहीर्षुं नवजलदरुचं शंखचक्राब्ज हस्तं
पार्थव्याजेन लोकं निगममनुसृतौ योजयन्तं महेशं
ध्यायेन्नित्यं सुसेव्यं सुजनमति गृहं कृष्ण मानन्द कन्दं॥

पीतांबरधारी, अर्जुन के रथ सारथी, ब्रह्म रुद्रादि देवताओं के लिए वन्द्य, भूभार को दूर करने के लिए अवतरित, नील मेघ कांतिवाले, हाथों में शंख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाले, अर्जुन के बहाने समस्त लोक को वेद मार्ग पर चलानेवाले, महेश्वर, सत्पुरुषों की सद्बुद्धि में वास करनेवाले, बहु सेवा के योग्य, आनंद के निधान भगवान श्रीकृष्ण का निरंतर ध्यान करूँगा।

काण्डत्रयात्मकं शास्त्रं गीताख्यं येन निर्मितम्
आदि मध्यान्त षट्केषु तस्मै भगवते नमः॥

आदि मध्य एवं अंत में छः छः अध्यायों के हिसाब से कुल अठारह अध्यायों के गीता रूपी आध्यात्मिक शास्त्र का बोध करानेवाले भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम।

अग्रे कृत्वा कमपि चरणं जानुनै केन तिष्ठन्।
पश्चत्पार्थं प्रणयरस जुषा चक्षुषा वेक्षमाणः
सव्येतोत्रं करसरसिजे दक्षिणे ज्ञान मुद्रां
अविभ्राणो रथ मधिवसन् पातु नः सूतवेषः ॥

एक पैर आगे बढा कर, दूसरे पैर का घुटना टेक कर रथ में बैठनेवाले, अर्जुन को प्रेम से पूर्ण नेत्रों से देखनेवाले बाएँ हाथ से लगाम पकड कर, दाएँ हाथ से ज्ञान की मुद्रा धारण करनेवाले सूतवेष धारी भगवान श्रीकृष्ण हमारी रक्षा करें।

गीता विनोद

१. गीता को सीधे सुननेवाला अर्जुन अकेला नहीं था, और तीन थे। अर्जुन के रथ के झंडे पर आसीन हनुमान ने सुन लिया। व्यास ने भी सुन लिया। व्यास की कृपा से सञ्जय ने भी सुन लिया। इसलिए गीता को सीधे सुननेवाले कुल चार हैं।

२. आम तौर पर लोग समझते हैं कि युद्ध के आरंभ में अर्जुन को अज्ञान का जो मोह हुआ वह श्रीकृष्ण के मुख से सारी गीता के सुनने से दूर हुआ। इसके लिए "नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा . . . ." वाले (१८ वें अध्याय का ७३ वाँ श्लोक) श्लोक का उद्धरण दिया जाता है। ठीक है। लेकिन गीता के ११ वें अध्याय के आरंभ में अर्जुन निम्न लिखित वाक्य बोले -

मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम्।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम॥ (११-१)

मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आपने जो परम गोपनीय आध्यात्म विषयक वचन अर्थात् उपदेश सुनाया उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है।

अर्जुन के मुख से निकले इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि करीब आधी गीता (१० अध्याय) के सुनने पर ही अर्जुन का मोह दूर हो गया।

३. गीता ग्रन्थ का आशय उस शब्द को उलटा करके पढने से स्पष्ट होता है। गीता शब्द को उलटा कर पढने से 'तागी' होता है। अर्थात् त्यागी बनने का उपदेश गीता देती है।

४. ''अशोच्यान्'' (२-११) शब्द से श्रीकृष्ण की शिक्षा शुरू होती है। बीच में 'न त्वं शोचितुमर्हसि' (२-२७) आदि सूचनाओं के साथ, अंत में 'मा शुचः' (१८-६६) वाले वाक्य से समाप्त होती है। इससे स्पष्ट है कि शोक राहित्य ही गीता का मुख्य सिद्धान्त है।

५. गीता का कुल श्लाकों की संख्या ७०० है। १३ वें अध्याय के आरंभ के अर्जुन के प्रश्न ''प्रकृतिं पुरुषं चैव'' वाले श्लोक के मिलाने पर वह संख्या ७०१ होती है।

६. युद्ध के मैदान में भगवान श्रीकृष्ण ने मार्गशिर शुद्ध एकादशी के दिन अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। वह गीता का जन्म दिन है। इसलिए उस तिथि पर गीता जयंती मनायी जाती है।

७. पहले पहल बाहर गीता का प्रचार करनेवाला सञ्जय है।

८. गीता का आरंभ 'ध' कार से होकर अंत 'म' कार से हुआ। 'ध' और 'म' नामक दो वर्णों के बीच में सारी गीता विलसित है। संभव है कि यह साबित करने केलिए कि धर्म का मूर्त रूप ही गीता है, उक्त शब्द का चलन हुआ हो। (प्राकृत भाषा में 'धर्म' को 'धम्म' कहते हैं। उदाहरण के तौर पर बौद्धग्रन्ध धर्मपद, धम्मपद कहा जाता है। धम्म= धर्म)

९. कहा जाता है कि एक व्यक्ति ने गीता का पाठ शुरू किया। भूल से उसने पढा कि धर्मं क्षेत्रे कुरुक्षेत्रे। तुरन्त उसने अपने शब्दों का अन्वय करते हुए कहा कि क्षेत्रे क्षेत्रे धर्मं कुरु (संब जगह धर्म का अनुसरण करो)। उसने सोचा कि इस एक वाक्य को जीवन में अमल में लाऊँ। ऐसा करते करते

कहा जाता है कि वह व्यक्ति धर्माचरण करनेवाला बन गया।

१०. गीता को सुनानेवाला, सुननेवालां लिखनेवाला श्रीकृष्ण ही हैं। (इसका विवरण गीता की अमोघ शक्ति शीर्षक प्रकरण में दिया गया।)

११. गीता (रेखा) को मिटानेवाली गीता है। (इसका मतलब है कि फाल में लिखी रेखा (गीता) को मिटा कर जीव को कर्मातीत, जन्मातीत कैवल्यपद प्राप्त कराने की अमोघ शक्तिवाली गीता है।

१२. श्री वेदव्यास को '१८' की संख्या पर अधिक चाह है।

१३. गीता के कुछ अध्यायों के श्लोकों की संख्या समान है। जैसे - (१) पहले अध्याय तथा छठे (६) अध्याय के ४७ श्लोक हैं। (४) चौथे अध्याय तथा दसवें (१०) अध्याय के ४२ श्लोक हैं। (८) आठवें अध्याय तथा सत्रहवें (१७) अध्याय के २८ श्लोक हैं। (९) नौवें अध्याय तथा तेरहवें (१३) अध्याय के ३४ श्लोक हैं। (१२) बारहवें अध्याय तथा पन्द्रहवें (१५) अध्यांय के २० श्लोक हैं।

१४. महाभारत में गीता का स्थान भीष्म पर्व के २५ वें अध्याय से लेकर ४२ वें अध्याय तक है।

१५. बडे बडे संस्कृत ग्रन्थ मंगल वाचक शब्द 'अथ' से शुरू होकर 'इति' से समाप्त होते हैं। गीता के आरंभ में 'अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा' वाले वाक्य के 'अथ', अंत में 'इति गुह्यतमं शास्त्रं' वाले वाक्य के 'इति' शब्द हैं। अत: कहा जा सकता है कि गीता ने आर्ष संप्रदाय की रक्षा की

१६. कलियुग के आरंभ के ३८ वर्ष पूर्व अर्थात् द्वापरयुग के अंत में गीता का बोध हुआ। कलियुग के आरंभ से स० १९९० ई. सक ५०९१ वर्ष हुए। इसलिए गीता का आविर्भाव होकर ५१२९ वर्ष हो गये हैं।

१७. श्रीकृष्ण के अवतार का काल १२५ वर्ष ७ मास, ८ दिन है। गीता को सुनाते समय श्रीकृष्ण की उम्र करीब ८७ वर्ष की थी।

१८. (अ) 'येन सर्वमिदं ततम्' इस वाक्य का प्रयोग गीता में ३ बार हुआ है।* (जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है वह परमात्मा यही इस वाक्य का अर्थ है।)

(आ) 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' इस वाक्य का प्रयोग गीता में २ बार हुआ है। (९ वें अध्याय के ३४ वें श्लोक एवं १८ वें अध्याय के ६५ वें श्लोक में) 'मुझ ही में अपना मन लगागो। मेरा भक्त बनो। मेरी ही अर्चना करो। मुझे नमस्कार करो।' यही उक्त वाक्य का अर्थ है।

गीता में प्रयुक्त कृष्ण और अर्जुन के नाम

गीता में भगवान श्रीकृष्ण के लिए निम्नलिखित नामों का उल्लेख हआ।

अच्युत	आद्य	केशिनिषूदन
अनंत	कमलपत्राक्षी	गोविन्द
अप्रतिम प्रभावी	कृष्ण	जगत्पति
अरिसूदन	केशव	जगन्निवास
जनार्दन	भूतभावन	वार्ष्णेय
देव	भूतेश	वासुदेव
देवदेव	मधुसूदन	विश्वमूर्ति
देववर	महात्मा	विश्वेश्वर
परमेश्वर	माधव	विष्णु
पुरुषोत्तम	यादव	सर्व
प्रभु	योगी	सहस्रबाहु
भगवान	योगेश्वर	हृषीकेश

---

* १. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् (२-१७)
२. यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् (८-२१)
३. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् (१८-४६)

गीता में अर्जुन के लिए निम्न लिखित नामों का उल्लेख हुआ :

अनघ	कुरुप्रवीर	तात	भरतर्षभ
अनसूय	कुरुनन्दनदेहभृतावर		भरतश्रेष्ठ
अर्जुन	कुरुश्रेष्ठ	धनञ्जय	भरतसत्तम
कपिध्वज	कुरुसत्तम	परन्तप	भारत
किरीटी	कौन्तेय	पार्थ	महाबाहु
	गुडाकेश	पुरुषर्षभ	सव्यसाची

नित्य स्मरण करने योग्य कुछ गीता वाक्य

(दवा के सेवन से रोग दूर होते हैं)

इसी तरह भव रोगों के शमन के लिए दवा के रूप में भगवद्गीता का सेवन करना चाहिए। दैनिक जीवन की समस्याएँ भगवद्गीता के द्वारा सुलझती हैं। सांसारिक दुःख दूर होते हैं। समय मिलते ही गीता के पथ प्रदर्शक वाक्यों का पठन करते रहना चाहिए। अंधेरे में चलते समय दिया जितना काम देता है, अंधेरे से भरे संसार में आगे बढने के लिए भगवद्गीता के वाक्य उतना ही काम देते हैं। इसलिए गीता के ऐसे वाक्यों को जबानी याद रखना चाहिए। घर की दीवारों पर ऐसे वाक्यों को बडे बडे अक्षरों में लिख के रखना चाहिए ताकि वे दिशा दर्शन कर सकें। यद्यपि गीता के सभी वाक्यों का अधिक महत्व है तथापि कुछ ऐसे वाक्य अत्यधिक महत्व के हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है।

गीता के वाक्य	भावार्थ
१. क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप (२-३)	हे अर्जुन! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर कर्तव्य के निर्वाह के लिए खडा हो जा।
२. नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः	असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है।

गीता के वाक्य	भावार्थ
	(जगत् असत् है। आत्मा सत है।)
(२-अ) न त्वेवाहं जातु नाशं, न त्वं नेमे जनाधिपा:	ऐसा नहीं है कि मैं, तू, और ये राजा लोग नहीं थे। हमेशा रहेंगे। (आत्मा अमर है)
३. न हन्यते हन्यमाने शरीरे(२-२०)	शरीर के मारे जाने पर भी आत्मा मारा नहीं जाता।
४. स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महती भयात्	धर्म का थोडा सा भी अंश (जन्म-मृत्यु रूप) महान् भय से रक्षा करता है।
५. कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन (२-४७)	कर्म करने में ही तेरा अधिकार है। उसके फलों में कभी नहीं।
६. समत्वं योग उच्यते (२-४८)	(कर्म के पूर्ण होने और न होने में तथा फल में)

समत्व बुद्धि का होना ही योग कहलाता है।

(६.अ)योगस्थ कुरु कर्माणि(२-४८)	योग में स्थित हो कर कर्तव्य कर्म कर।
७. योगः कर्मसु कौशलम् (२-५०)	(समत्वरूप) योग ही कर्मों में कुशलता है। (निष्काम भावना से कर्म कर)
८. अशान्तस्य कुतस्सुखम् (२-६६)	शान्तिरहित मनुष्य को सुख कैसे मिल सकता है ?
९. कर्मज्यायो ह्यकर्मण: (३-८)	कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है। (तमोगुणी से कर्मशील श्रेष्ठ है)
१०. युद्धस्व विगतज्वर: (३-३०)	सन्ताप रहित होकर युद्ध कर। (कर्मशील बन)
११. जहि शत्रुं महाबाहो काम काम रूपं दुरासदम् (३-४३)	हे महाबाहो! कामरूप दुर्जय शत्रु को मार डालो।
१२. सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते (४-३३)	सम्पूर्ण कर्म ज्ञान में समाप्त हो जाते हैं।
१३. नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्र मिह विद्यते (४-३८)	इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला निस्संदेह कुछ भी नहीं है।

गीता के वाक्य	भावार्थ
१४. श्रद्धावान् लभते ज्ञानं (४-३९)	श्रद्धावान मनुष्य ही ज्ञान को प्राप्त करता है।
१५. न सुखं संशयात्मन: (४-४०)	संशययुक्त मनुष्य को सुख नहीं मिलता।
१६. विगतेच्छा भय क्रोधो य: सदामुक्त एव स: (५-२८)	इच्छा, भय और क्रोध से रहित मनुष्य मुक्त ही है।
१७. ज्ञात्वा मां शान्ति मृच्छति (५-२०)	मुझे (आत्मा को) जान कर जीव परम शान्ति पाता है।
१८. उद्धरेदात्मनात्मानं (६-५)	अपना उद्धार आप ही करे।
१९. आत्मसंस्थं मन:कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् (६-२५)	मन को परमात्मा में स्थित करके उसके सिवा और किसी का चिन्तन न करें।
२०. अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते (६-३५)	हे कुन्तीपुत्र! मन अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।
२१. न हि कल्याण कृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति (६-४०)	हे प्यारे! भगवान की प्राप्ति के लिए कर्म करनेवाला दुर्गति को प्राप्त नहीं होता।
२२. मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव (७.७)	यह संपूर्ण जगत् सूत्र में गुंथे मणियों के समान मुझमें गुंथा हुआ है।
२३. मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां तरन्ति ते (७-१४)	जो पुरुष मुझे ही सदा भजते हैं, वे माया को तर जाते हैं।
२४. ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् (७-१८)	ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है।
२५. वासुदेव: सर्वमिति (७-१९)	वासुदेव ही सब कुछ है।
२६. तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च (८-७)	तू सब समय में निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर।
२७. तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् (९-२२)	नित्य निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कराता हूँ।
२८. तत्कुरुष्व मदर्पणम् (९-२७)	अपने सब कर्म तू मेरे अर्पण कर।

गीता के वाक्य	भावार्थ
२९. न मे भक्त प्रणश्यति (९-३१)	मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।
३०. अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम् (९-३३)	सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरन्तर मेरा भजन कर।
३१. सर्वभूत हिते रता: (१२-४)	सम्पूर्ण भूतों के हित में रत योगी मुझको प्राप्त होते हैं।
३१.अ. तेषां महं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात् (१२-७)	प्रेमी भक्तों का उद्धार मृत्युरूप संसार समुद्र से मैं करता हूँ।
३२. त्यागाच्छान्तिरनंन्तरम् (१२-१२)	त्याग से (कर्मों के फल का त्याग) तत्काल ही परम शान्ति मिलती है।
३३. यो मद्भक्त: स मे प्रिय: (१२-१४)	(सर्वस्व मुझ में अर्पण किए हुए) मेरा भक्त मुझको प्रिय है।
३४. क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भातर (१३-२)	हे अर्जुन! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ (जीवात्मा) भी मुझे ही जान।
३५. जन्ममृत्यु जराव्याधि दु:ख दोषानुदर्शनं (१३-९)	जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदि के दु:खों एवं दोषों का बार बार विचार करना चाहिए।
३६. अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् (१८-२०)	अलग अलग सब वस्तुओं में व्याप्त परमात्मा को जानना सात्विक ज्ञान है।
३७. भक्त्या मामभिजानाति (१८-५५)	भक्ति से मुझे जान सकता है।
३८. मच्चित्त: सततं भव (१८-५७)	सदा मुझमें ही चित्त लगा।
३९. मन्माना भव (१८-६५)	मुझमें ही मन लीन कर।
४०. मामेकं शरणं व्रज (१८-६६)	एक मुझ सर्वशक्तिमान की शरण में आ जा।

सप्त श्लोकी गीता

१. ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
य: प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ (८-१३)

२. स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघा: ॥ (११-३६)

३. सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ (१३-१३)

४. कविं पुराणमनुशासितार-
मणोरणीयामनुस्मरेद्य: ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूप-
मादित्यवर्णं तमस: परस्तात् ॥ (८-९)

५. ऊर्ध्वमूलमध: शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ (१५-१)

६. सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो
मत्त: स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ (१५-१५)

७. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायण: ॥ (९-३४)

गीता का सार

भगवान श्रीकृष्णने सारे गीता ज्ञान को भगवद्गीता के अंत में तीन श्लोकों में बता दिया। उसमें बताया गया कि जीव परमात्मा का साक्षात्कार किस प्रकार कर सकता है। मुमुक्षुओं को उन श्लोकों का पाठ निरंतर करना चाहिए। उन्हें कंठस्थ करना चाहिए। उनका हमेशा मनन एवं चिंतन करना चाहिए। वे तीन श्लोक निम्न प्रकार हैं-

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥(१८-५१)

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः॥ (१८-५२)

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (१८-५३)

विशुद्ध बुद्धि से युक्त तथा हल्का, सात्त्विक और नियमित भोजन करनेवाला, शब्दादि विषयों का त्याग करके एकान्त और शुद्ध प्रदेश में इच्छापूर्वक रहनेवाला, सात्त्विक धारणाशक्ति के द्वारा अन्तःकरण और इन्द्रियों का संयम करके मन, वाणी और शरीर को वश में कर लेनेवाला, राग-द्वेष को सर्वथा नष्ट करके भलीभाँति दृढ वैराग्य का आश्रय लेनेवाला तथा अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और परिग्रहका त्याग करके निरन्तर ध्यान योग के परायण रहनेवाला, ममतारहित और शान्तियुक्त पुरुष सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में अभिन्नभाव से स्थित होने का पात्र होता है।

गीता में प्रयुक्त उपमान

महापुरुष आम जनता की समझ में आने के लिए गंभीर तत्वों का विवरण कई दृष्टांतों के द्वारा देते हैं। इससे गंभीर विषय भी लोगों की समझ में आ जाते हैं। रामायण, योगवासिष्ठ, भारत, और भागवत आदि में तथा महात्माओं के उपदेशों में अनगिनत दृष्टांतों का उपयोग किया गया है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने यही किया है। आध्यात्मिक तत्वों को कई उपमानों के द्वारा समझाया है। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ उपमानों का यहाँ उल्लेख किया जाता है -

१. जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है। (२-२२)

२. सब ओर से परिपूर्ण जलाशय के प्राप्त हो जाने पर छोटे जलाशय में मनुष्य का जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्म को तत्त्व से जाननेवाले ब्राह्मण का समस्त वेदों में उतना ही प्रयोजन रह जाता है। (२-४६)

३. कछुवा सब ओर से अपने अङ्गों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है (ऐसा समझना चाहिये)। (२-५८)

४. जैसे नाना नदियों के जल सब ओर से परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्र में उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुष में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परमशान्ति को प्राप्त होता है, भोगों को चाहनेवाला नहीं। (२-७०)

५. जिस प्रकार धूएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढका जाता है तथा जिस प्रकार जेर से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही काम के द्वारा ज्ञान ढका रहता है। (३-३८)

६. जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधनों को भस्ममय कर देता है, वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देता है। (४-३७)

७. जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्यागकर कर्म करता है, वह पुरुष जल के कमल के पत्ते की भाँति पाप में लिप्त नहीं होता। (५-१०)

८. जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही उपमा परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गई है। (६-१०)

९. मुझसे भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र के मणियों के सदृश मुझ में गुँथा हुआ है। (७-७)

१०. जैसे आकाश से उत्पन्न सर्वत्र विचारनेवाला महान् वायु सदा आकाश में ही स्थित है, वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझ में स्थित हैं, ऐसा जान। (९-६)

११. श्रीभगवान् बोले - हे अर्जुन! यह शरीर 'क्षेत्र' इस नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है, उसको 'क्षेत्रज्ञ' इस नाम से उनके तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानीजन कहते हैं। (१३-१)

१३. जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता। (१३-३८)

१४. आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्म रूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपलके वृक्ष को अविनाशी* कहते हैं, तथा वेद जिसके पत्ते कहे गये हैं-उस संसाररूप वृक्ष को जो पुरुष मूलसहित तत्त्व से जानता

है, वह वेद के तात्पर्य को जाननेवाला है। (१५-१)

१५. उस संसारवृक्ष की तीनों गुणोंरूप जल के द्वारा बढी हुई, एवं विषय - भोगरूप कोंपलोंवाली देव, मनुष्य और तिर्यक् आदि योनिरूप शाखाएँ नीचे और ऊपर सर्वत्र फैली हुई हैं तथा मनुष्यलोक में कर्मों के अनुसार बांधनेवाली अहंता-ममता और वासनारूप जडें भी नीचे और ऊपर सभी लोकों में व्याप्त हो रही हैं। (१५-२)

१६. वायु गन्ध के स्थान से गन्ध को जैसे ग्रहण करके ले जाता है, वैसे ही देहादिका स्वामी जीवात्मा भी जिस शरीर का त्याग करता है, उससे इन मनसहित इन्द्रियों को ग्रहण करके फिर जिस शरीर को प्राप्त होता है - उसमें जाता है। (१५-८)

१७. दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिये, क्योंकि धूएँ से अग्नि की भाँति सभी कर्म किसी-न-किसी दोष से युक्त हैं। (१८-४८)

१८. शरीररूप यन्त्र में आरूढ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमण कराता हुआ सब प्राणियों के हृदय में स्थित है। (१८-६१)

---

* इस वृक्ष का मूल कारण परमात्मा अविनाशी है तथा अनादिकाल से इसकी परम्परा चली आती है, इसलिये इस संसारवृक्ष को "अविनाशी" कहते हैं। इस वृक्ष की शाखा रूप ब्रह्मा से प्रकट होनेवाले और यज्ञादिक कर्मों के द्वारा इस संसार वृक्ष की रक्षा और वृद्धि करनेवाले एवं शोभा को बढानेवाले होने से वेद "पत्ते" कहे गये हैं। भगवान् की योगमाया से उत्पन्न हुआ संसार क्षणभङ्गुर, नाशवान् और दुःखरूप है, इसके चिन्तन को त्यागकर, केवल परमेश्वर का ही नित्य-निरन्तर, अनन्यप्रेम से चिन्तन करना "वेद के तात्पर्य को जानना" है।

गीता भवन

भगवान ने कहा है कि 'गीता मे चोत्तमं गृहम्' अर्थात् मैं गीता का आश्रित हूँ। गीता मेरा निवास गृह है। गीता माहात्म्य में भगवान ने गीता गृह के बारे में बताया है। उस गृह के स्वरूप एवं स्वभाव का विवरण नीचे दिया जाता है।

गीता भवन का विवरण

निर्माता - भगवान श्रीकृष्ण

अलंकरण कर्ता - मुनीन्द्र श्रीवेदव्यास।

आकार - तिमंजिला।

नींव - अर्जुन विषादयोग (पहला अध्याय)

पहली मंजिल - ५ कमरे। (दूसरे अध्याय से छठे अध्याय तक) (सांख्ययोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग कर्मसन्यास योग एवं आत्म संयम योग)

दूसरी मंजिल - ६ कमरे। (भक्ति षट्क, सातवें अध्याय से १२ वें अध्याय तक)
विज्ञानयोग, अक्षर परब्रह्मयोग, राजविद्या राजगुह्य योग, विभूतियोग, विश्वरूप संदर्शन योग एवं भक्तियोग।

तीसरी मंजिल - ६ कमरे। (ज्ञान षट्क - तेरहवें अध्याय से अठारहवें अध्याय तक)
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग, गुणत्रय विभगयोग, पुरुषोत्तम प्राप्ति योग, दैवासुर संपद्विभागयोग, श्रद्धात्रय विभाग योग एवं मोक्ष सन्यासयोग।

भवन निर्माण के लिए आवश्यक चीजें- चूना -कर्म।
- पानी - भक्ति।
- ईंटें - ज्ञान।

गीता भवन बहुत विशाल है। सुंदर है। उसके एक एक कमरे में सुंदर एवं कीमती वस्तुएँ रखी गयी हैं। उस भवन में हर कोई प्रवेश कर सकते हैं। जात-पांत, वर्ग वर्ण तथा लिंग का भेद नहीं है। प्रवेश शुल्क नहीं है। अंदर प्रवेश कर हर वस्तु को बेरोक टोक देख सकते हैं। स्पर्श कर सकते हैं। घर ले जा सकते हैं। रोकनेवाला कोई नहीं। एक बार शङ्कराचार्य ने गीता भवन में प्रवेश किया। उसकी सुन्दरता देख कर उस पर मुग्ध हो गये। अपनी इच्छा के अनुसार वहाँ से चीजें ले गए। इसके बाद रामानुजाचार्य आये। मध्वाचार्य आये। इसी प्रकार बहुत लोग आये। मनचाही वस्तुएँ साथ ले गये। परम शान्ति प्राप्त की। मगर आश्चर्य। कोई कुछ भी ले जायँ, भवन खाली नहीं होता। चीजें फिर आ जाती हैं। भर जाती हैं। यही गीता भवन की विशेषता है। इसलिए मुमुक्षु सब गीता रूपी महोत्तुंग सुविशाल भव्य भवन में प्रवेश करें। जी भर कर उसके दर्शन करें। उसमें विश्राम करें। सांसारिक दुःखों के जाल से मुकत होकर परमानंद का अनुभव कर अपना जीवन धन्य बनावें।

अध्याय क्रम से गीता पारायण का फल

गीता की महिमा अपार है। गीता के श्लोकों के पारायण, जप एवं ध्यान से कितने ही अनुकूल फल मिलते हैं। गीता की अखंड शक्ति के बारे में श्रीमन्नारायण ने लक्ष्मीदेवी को बताया। फिर उसीको शिवजी ने पार्वती से बताया। पद्म पुराण में इसका विवरण है। उसमें कथा के रूप में स्पष्ट किया गया कि गीता के एक एक अध्याय के पारायण से कौन कौन सा फल मिलेगा। पद्म पुराणांतर्गत गीता के अध्यायों के माहात्म्य का विवरण संक्षेप में यहाँ दिया जाता है।

१. प्रथम अध्याय का फल -

जो मनुष्य गीता का पारायण पूरा या एक अध्याय या आधे अध्याय या एक श्लोक या आधे श्लोक या कम से कम एक चरण या एक शब्द का भक्ति के साथ करेगा वह सुशर्मा की तरह मुक्ति पाएगा। पुराने जमाने में

सुशर्मा नामक एक ब्राह्मण था। वह भोग विलासों में डूब गया। अपना जीवन भ्रष्ट किया। मरने के बाद अनेक यम यातनाएँ सह कर बैल के रूप में वह पैदा हुआ। कई वर्षों तक वह बोझ ढोता रहा। एक दिन अपरिमित बोझ ढोते ढोते वह एक पर्वत प्रान्त में मर गया। कुछ पथिक उस बैल की दयनीय मृत्यु पर द्रवित हुए। उन्होंने अपने पुण्य का थोडा भाग सद्गति की प्राप्ति के लिए उस बैल को समर्पित किया। उन यात्रियों में एक वेश्या थी। उसने सोचा कि मैं ने पुण्य का कोई काम नहीं किया। फिर भी उसने तय किया कि मेरे जीवन का पुण्य चाहे लेश मात्र भी क्यों न हो, बैल को समर्पित कर दूँ। वेश्या के पुण्य के प्रताप से बैल का जन्म धन्य हुआ। वह पुण्य लोक पहुँच गया। फिर उसने पूर्वजन्म के ज्ञानवाले ब्राह्मण का जन्म लिया। वह ब्राह्मण वेश्या के घर गया। जानना चाहा कि उसके पुण्य का कारण क्या है ? वेश्या ने एक तोते को दिखा कर कहा कि इस तोते की वाणी सुनने के कारण ही उसे पुण्य मिला। तब दोनों उस तोते के पास गये। तोते ने कहा कि पूर्वजन्म में मैं एक विद्वान था। गुरु का दूषण आदि ऐसे कई कारण थे जिनके प्रभाव से मर कर मैं ने तोते के रूप में जन्म लिया। जंगल में मेरी दयनीय स्थिति देख कर एक मुनिवर मुझे अपने आश्रम ले गये। वहाँ मेरी हालत सुधर गयी। वहाँ वे मुनिवर अपने शिष्यों को गीता का प्रथम अध्याय हर दिन सुनाते थे। हर दिन सुनते सुनते गीता के प्रथम अध्याय श्लोकों का मैं भी उच्चारण करने लगा एक दिन एक चोर ने मुझे चुरा लिया। इस वेश्या को बेच दिया। मैं यहाँ रहने लगा। इससे वेश्या को पाप से मुक्ति मिल गयी और सुशर्मा को सद्गति प्राप्त हो गयी।

तस्मादध्यायमाद्यं यः पठते श्रुणुते स्मरेत्।
अभ्यासात्तस्य न भवेत् भवांभोधिर्दुरुत्तरः ॥

सारांश यह कि गीता के प्रथम अध्याय का पाठ जो करेगा या सुनेगा या स्मरण करेगा वह भवसागर के उस पार पहुँच जाएगा।

गीता के प्रथम अध्याय पारायण के फल है पाप से मुक्ति एवं पूर्वजन्म की स्मृति।

२. दूसरे अध्याय का फल -

पुराने जमाने में पुरंदर नामक शहर में देवशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसने कई याग किये। अतिथि पूजा की। पर उसे शांति नहीं मिली। आत्मज्ञान भी नहीं मिला। इसलिए वह बडा चिंतित हो गया। एक दिन एक साधु उसके घर आया। साधु से अपने मन की बात कह कर निवेदन किया कि आत्मज्ञान का उपाय बतावें। तब साधु ने उसे सौपुर नगर के मित्रवान नामक एक ग्वाले के पास भेजा। मित्रवान ने देवशर्मा से कहा कि मैं एक दिन जंगल में बकरियाँ चराने गया। वहाँ अचानक एक बाघ आया। उसे देख कर बकरियाँ और मैं सब जहाँ तहाँ तितर बितर हो भाग निकले। पर पता नहीं उस स्थल का महत्व क्या था, हमारी एक बकरी एवं वह बाघ दोनों स्नेह से मिल जुल कर घूमने लगे। मुझे आश्चर्य हुआ। इसका कारण जानने की अभिलाषा हुई। एक संत पुरुष वहीं रहते थे। उनसे मालूम हुआ कि पहले वहाँ एक देवालय था सुकर्म नामक एक व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति के लिए वहाँ ईश्वर की उपासना करने लगा। एक दिन एक अतिथि उसके पास आया। सुकर्म का हित करना चाहा। उसने गीता का दूसरा अध्याय एक शिलाफलक पर लिख दिया और कहा कि इसका पाठ नित्य करते रहो। इसके बाद वह अतिथि चला गया। सुकर्म गीता के द्वितीय अध्याय का पारायण बडी भक्ति एवं श्रद्धा से करने लगा। धीरे धीरे उसका हृदय निर्मल हो गया। उसमें आत्मज्ञान का उदय हुआ। वह जहाँ कदम रखता वहाँ पावनता आ जाती। वह स्थल राग द्वेष रहित हो जाता। मैं भी तुरंत उस शिलाफलक के पास जाकर गीता के दूसरे अध्याय का पाठ करने लगा। मैं ने भी आत्मज्ञान का अनुभव पाया। तुम भी गीता का पाठ करो। मित्रवान की बातों से देवशर्मा प्रभावित हुआ। गीता के दूसरे अध्याय का पाठ करने लगा। धीरे धीरे गीता के श्लोकों का पाठ एवं मनन करते करते उसने आत्मज्ञान पाकर ब्रह्मपद प्राप्त किया।

"शिक्षितस्तेन पूतात्मा पठ न्नध्याय मादरात्
द्वितीय मासमा दोच्चैः निरवद्यं परं पदम् ॥"

गीता के द्वितीय अध्याय का फल - आत्मज्ञान की प्राप्ति।

(३) तीसरे अध्याय का फल -

पुराने जमाने में अवस्थान नामक एक नगर में जड नामक एक ब्राह्मण रहता था वह अपने कुल के आचार विचार छोड कर विषय वासनाओं में फंस गया। लालची भी बन गया। धन कमाने के लिए उत्तर दिशा में चल निकला। धन कमा कर वापस आने लगा। रास्ते में चोरों ने उसे पकड लिया। एक पेड के नीचे उसे मार डाला। वह बडा पापी था। इसलिए मृत्यु के बाद उसने पिशाच का रूप धारण किया। उसका पुत्र बडा धर्मात्मा निकला। अपने पिता का श्राद्ध कर्म करने के लिए काशी जाने निकल पडा। रास्ते में उसी पेड के नीचे जहाँ उसके पिता का वध किया गया था, बैठ कर उसने गीता के तृतीय अध्याय का पाठ किया।

"तत्राध्यायं स गीताया स्तृतीयं संज जाप ह"

तुरन्त उसे प्रेत रूप से मुक्त दिव्य विमान पर आसीन पिता दिखायी पडा। उसने पूछा पिताजी, आप प्रेत रूप से मुक्त हुए, देवत्व को प्राप्त हुए "इसका कारण क्या है? पिता ने जवाब दिया कि बेटे! तुमने गीता के तृतीय अध्याय का पाठ किया, उसका मैं ने श्रवण किया। इससे मुझे मुक्ति मिली। तुम्हें अब काशी जाने की जरूरत नहीं। तुम वापस घर जाओ। तृतीय अध्याय का निरंतर पाठ किया करो ताकि हमारे सभी पितृदेवों को सद्गति मिल सके। पुत्र ने वैसे ही किया। तब भगवान विष्णु ने यम के पास देवदूत भेजकर नरकलोक के वासियों तथा यम को अपने पास बुला लिया। वहाँ यमधर्मराज ने भगवान विष्णु की स्तुति कर उनकी अनुमति लेकर अपने यहाँ चला गया। इस प्रकार गीता के तृतीय अध्याय के पारायण से मनुष्य पाप रहित होकर दिव्यत्व पा रहा है।

गीता के तृतीय अध्याय का फल - प्रेतत्व से मुक्ति।

(४) चौथे अध्याय का फल -

गंगानदी के तीर पर वाराणसी नामक नगर है। वहाँ के विश्वनाथ मंदिर में भरत नामक महाशय भक्ति और श्रद्धा के साथ नित्य गीता के चौथे अध्याय का पारायण करता था।

नित्य मात्मरत स्तुर्यं जपत्यध्याय मादरात्।
तदभ्यासादुदुष्टात्मा न द्वंद्वैरभि भूयते ॥

इससे वह पवित्र हो गया। सुख और दुःख एवं शीत और उष्ण के मामले में समबुद्धि हासिल की। एक बार उसे महात्माओं के दर्शन की इच्छा हुई। भ्रमण पर निकल पडा। रास्ते में एक जगह दो बेर के पेडों के नीचे ठहर कर गीता के चौथे अध्याय का पारायण किया। वहाँ से निकलते समय उसे पेड से गिरे बेर के दो फल मिले। उन्हें लेकर वह आगे बढा। पाँच दिनों के बाद वे दोनों बेर के पेड सूख गये। वहाँ के प्राणियों ने पूर्व जन्म ज्ञान की दो ब्राह्मण बालिकाओं के रूप में जन्म लिया। एक दिन वह भरतमुनि उन बालिकाओं के घर गया। उन बालिकाओं ने उसकी पूजा की। फिर उसके आदेश से अपना वृत्तांत सुनाने लगी। कहा कि हे महात्मा ! पूर्व काल में गोदावरी के किनारे छिन्न पाप नामक तीर्थस्थल में सत्यतप नामक योगि पुंगव घोर तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या के फल से भयभीत होकर इन्द्र ने हम दो अप्सराओं को उसकी तपस्या का भंग करने के लिए भेजा। इन्द्र के आदेश के अनुसार हम दोनों उस मुनीन्द्र के पास गयीं। मधुर गीता गाने लगीं। नृत्य भी करने लगीं। मुनीन्द्र कृद्ध हो गया। गंगा नदी के किनारे बेर के दो पेड बन जाने का शाप दिया। हमने प्रार्थना की कि हम पर कृपा करें और शाप से मुक्त करें। हम पर कृपा की। कहा कि भरत नामक महात्मा के आने तक तुम दोनों पेड के रूप में रहोगी। इसके बाद पूर्वजन्म के ज्ञान से विलसित मानव जन्म लेकर अन्त में देवत्व प्राप्त करोगी। हम बेर के पेड बन कर रहने लगीं।

एक दिन आप वहां आ गये। गीता के चौथे अध्याय का पारायण किया। फल स्वरूप हम शाप मुक्त हो गयीं। इसके बाद दोनों बालिकाओं ने मुनीन्द्र को प्रणाम किया और गीता के चतुर्थ अध्याय का पारायण करती हुई सुख से रहने लगीं।

"कन्ये चतुर्थमध्यायं जपतां नित्यमादरात्" गीता के चतुर्थ अध्याय का फल - मनुष्य ही नहीं वृक्षों का भी दोष मुक्त होकर तर जाना।

(५) पांचवें अध्याय का फल -

मद्रदेश के पुरुकुत्स नगर में पिंगल नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसने अपने कुल के वेदाध्ययन आदि कार्य छोड कर संगीत और नृत्य का अभ्यास किया। फिर राजा की नौकरी पर लग गया। उसकी नीच कुल में जन्मी अरुणा नामक पत्नी थी। वह बदचलन औरत थी। अपनी स्वेच्छाचारिता का अवरोध मान कर उसने अपने पति पिंगल का सिर फोड कर मार डाला। मृत शरीर को जमीन में दफना दिया। वह भी अति व्यभिचार के कारण भीषण रोग से पीडित होकर मर गयी। मृत पिंगल एक जंगल में गीध के रूप में पैदा हुआ। उसकी पत्नी वहीं तौता बन कर पैदा हुयु। पूर्व जन्म के वैर के कारण दोनों हमेशा आपस में झगडते थे। एक दिन वे दोनों मर गये। उनके मृत शरीर एक ऋषि सत्तम के जल से भरी खोपडी पर जा गिरे। उन्हें दूत यमधर्मराज के यहाँ ले गये। यम ने उन्हें मुक्त कर उत्तम लोक में जाने की अनुमति दी। तब पति पत्नी ने यम से पूछा कि जीवन में हमने पाप कार्य किये। ऐसी स्थिति में हमें सद्गति क्यों मिल रही है ? यम ने जवाब दिया - गंगा के किनारे एक ब्रह्मज्ञानी रहता था। वह हर दिन गीता के पाँचवें अध्याय का पारायण करता था। इससे वह पुनीत हो गया। परमपद प्राप्त किया।

गीतायां पंचमाध्याय मावर्तयति सर्वदा।
तेन पुण्येन पूतात्मा ययौ ब्रह्म सनातनम् ॥

उसकी खोपडी पर गिरने के कारण तुम भी पवित्र हो गये हो। इसीलिए

उत्तम लोक जाने की अनुमति मैं ने दे दी है। इसके बाद वे दोनों विमान पर चढकर वैकुंठ चले गये। इस प्रकार गीता के पांचवें अध्याय के संबंध से पशु और पक्षी भी तर गये।

गीता के पांचवें अध्याय का फल - पशु और पक्षियों का तर जाना।

(६) छठे अध्याय का फल -

पुराने जमाने में गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठान नामक नगर था। उस नगर में धर्मात्मा जानश्रुति नामक राजा राज करता था। उसकी धर्म निष्ठा एवं उसके जन हित संबंधी कार्यों से प्रसन्न होकर देवता उस पर अनुग्रह करने हंसों का रूप धारण कर आकाश के मार्ग से राज प्रासाद के यहाँ आया करते थे। नगर के पास पहुँचते समय उनमें से भद्राश्व आदि हंस सब से आगे थे। यह देख कर बाकी हंसों ने उनसे कहा - ''इतने वेग से तेजस्वी जानश्रुति महाराजा के यहाँ जाना क्या अविनय नहीं ? धीरे धीरे चलो।'' तब उन हंसों ने जवाब दिया कि ब्रह्मज्ञानी रायिक्क के समक्ष इस राजा की तेजस्विता कम ही है। ''अपने महल में रह कर हंसों की बातें राजा ने सुन लीं। तुरन्त राजा जानश्रुति ने अपने सारथी को आदेश दिया कि रायिक्क का पता लगावें। सारथी तुरन्त ब्रह्मज्ञानी रायिक की खोज में निकला। कई पुण्य क्षेत्रों की यात्रा की। अंत में काश्मीर देश के माणिक्येश्वर के मंदिर के द्वार पर खडी एक गाडी में बैठे रायिक्क के दर्शन किये। उसे प्रणाम कर सारथी ने पूछा कि हे महात्मा, आप इस तरह यहाँ क्यों हैं ? रायिक्क ने जवाब दिया कि हम पूर्ण मनोरथी हैं। हमारा स्वरूप जानना चाहें तो कुछ दिन तुम्हें यहाँ रहना पडेगा। सारथी अपने राजा के यहाँ आया और रायिक की बातें सुनायीं। राजा प्रसन्न हुआ। उस विरागी पुरुष के दर्शन की अभिलाषा लेकर वह कश्मीर के लिए रवाना हुआ। उसने अपने साथ एक हजार गायें रेशमी वस्थ तथा मोतियों के हार ले चला। रायिक्क के दर्शन किये। प्रणाम करके राजा ने उस भेंट को स्वीकार करने की प्रार्थना की। राजा की बातों से मुनीन्द्र नाराज हुए। कहा कि क्या मेरे बारे में

तुम नहीं जानते? ये चीजें तुम वापस ले जाओ। मुझे इनकी जरूरत नहीं। राजा ने उसके चरणों पर सिर रख दिया। क्षमा की याचना की। मुनि प्रसन्न हुआ। राजाने उसके वैराग्य का कारण जानने की इच्छा प्रकट की। मुनीन्द्र ने कहा कि मैं हर दिन गीता के छठे अध्याय का पारायण करता हूँ। इसीलिए मुझे वैराग्य की प्राप्ति हुयी है।

"गीतानां षष्ठमध्यायं जपामि प्रत्यहं नृप।
तेनैव तेजो राशि र्मे सुराणा मपि दुस्सहः॥"

इसके बाद राजा ने वर्षों तक वहाँ रह कर मुनीन्द्र की सेवा की। उनके अनुग्रह से गीता के छठे अध्याय का पारायण करना सीख लिया। निरंतर पारायण करते करते मुक्ति धाम पहुँच गया। इसलिए गीता के छठे अध्याय के पारायण से लोगों को अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होगी।

गीता के छठे अध्याय का फल - मोक्ष की प्राप्ति

(७) सातवें अध्याय का फल -

पुराने जमाने में पाटलीपुत्र नामक नगर में शंकु कर्ण नामक ब्राह्मण रहता था। वह अपनी ब्राह्मण वृत्ति भूल कर धनार्जन में लग गया। एक बार वह अपने बन्धु बान्धवों के साथ दूसरा गाँव जाने के लिए निकला। रास्ते में उसे एक सांप ने डस लिया। वह वहीं मर गया। फिर सांप के रूप में जन्म लेकर पूर्व जन्म के धनार्जन की प्रवृत्ति के कारण वह जमीन में गडी निधि की रक्षा करते हुए जीवन बिताने लगा। एक दिन उसने अपने पुत्रों को सपने में दर्शन देकर कहा कि पुत्रो, मैं तुम्हारा पिता हूँ। सर्प बन कर यहाँ निधि की रखवाली कर रहा हूँ। दूसरे दिन पुत्र उस स्थल पर गये। निधि के लिए खोदना शुरू किया। तब वह सांप फन फैला कर उठ खडा हुआ और कहा कि पुत्रो! गीता के सप्तम अध्याय का पारायण करो। इससे मुझे मोक्ष मिलेगा। पुत्रों ने पिता के आदेश के अनुसार गीता के सप्तम अध्याय का पाठ शुरू किया। अन्त में उनके पिता को मोक्ष की प्राप्ति हुई।

गीतानां सप्तमाध्याय मन्तरेण सुधामयं ।
जन्तोर्जरामृत्यु दुःख निराकरण कारणम् ।

अमृतमय गीता के सप्तम अध्याय का पारा[illegible] प्राणियों को जन्म और मृत्यु के दुःख से मुक्त कराएगा। शंकुकर्ण के पुत्रों ने गीता के सप्तम अध्याय का पारायण कर अपने पिता को सर्प जन्म से मुक्त कराया । पुत्रों ने आजीवन गीता के सप्तम अध्याय का पाठ कर जीवन्मुक्त हो गये ।

सप्तमाध्याय जपतो मुक्ति भाजोऽभवं स्ततः ।
देव मिष्टतमं ज्ञात्वा निर्वाणार्पित बुद्धयः ॥

इस तरह गीता के सप्तम अध्याय के पारायण से मनुष्य ही नहीं, बल्कि पितृदेव सर्प आदि नीच योनियों से जन्मे प्राणी भी मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

गीता के सप्तम अध्याय के पारायण का फल - मनुष्य, पितृदेव एवं सरीसृपादि का तरना ।

(८) आठवें अध्याय का फल -

दक्षिण देश के अमर्दक नामक प्रसिद्ध नगर में भावशर्मा नामक ब्राह्मण रहता था। उसने कई भ्रष्ट कार्य कर अपने जीवन को बिगाड लिया। वेश्याओं के पीछे पड कर मांस और मदिरा का भी सेवन करने लगा। काल क्रम में वह अजीर्ण रोग से पीडित होकर मर गया। एक जगह ताड के पेड के रूप में पैदा हुआ । वहीं पर कुशीवल नामक ब्राह्मण था । वह दान अधिक लेता था। पर एक पैसा भी दूसरों को दान के रूप में नहीं देता था। एक दिन वह मर गया। पापों के कारण ब्रह्म राक्षस बन गया । उसकी पत्नी कुमती भी उसी प्रकार मर गयी। वह ब्रह्म राक्षसी के रूप में पैदा हुई। वे दोनों उस ताड के पेड के नीचे बैठ गये । पत्नी ने पति से पूछा कि हे नाथ, हम इस राक्षस जन्म से मुक्त कैसे होंगे ? पति ने जवाब दिया कि ब्रह्म विद्या के उपदेश, आध्यात्म विचार और कर्म रहस्य की जानकारी से मुक्त हो सकते हैं। उनकी बातें सुन कर पत्नी कुमती के मुँह से अनायास ही निकल गया कि "किं

तद्‌ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम'' ब्रह्म क्या है ? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है ? इस प्रकार उसके मुँह से जब गीता के अष्टम अध्याय के प्रथम श्लोक का प्रथम वाक्य उच्चरित हुआ तब उस गीता वाक्य के स्मरण मात्र से ताड के पेड के रूप में स्थित भाव शर्मा, ब्रह्म राक्षस के रूप में स्थित कुशीवल एवं कुशीवल की पत्नी कुमति तीनों मुक्त हो गये। पति पत्नी दोनों वहाँ पर आये विमान पर चढ कर दिव्य लोक चले गये। भावशर्मा ने गीता के अष्टम अध्याय के प्रथम श्लोक के प्रथम वाक्य को लिख लिया। काशी चला गया। वहाँ रह कर उस श्लोक के वाक्य का मनन एवं चिंतन करने लगा। धीरे धीरे वह गीता श्लोक के जप के द्वारा श्रीहरि के ध्यान में लीन हो गया। भगवान विष्णु ने उसके जप तप से बहुत प्रसन्न होकर उसे मोक्ष प्रदान किया। उसकी तपस्या से नरकवासी उसके पूर्वज भी तर गये।

जपन् गीतष्टमाध्याय श्लोकार्थं नियतेन्द्रियः।
संतुष्टवा नहं देवी तदीय तपसा भृशम्॥

इस तरह गीता के अष्टम अध्याय के पारायण से ब्रह्म राक्षसत्व एवं वृक्षत्व आदि समस्त दोष दूर होते हैं और जीव को मुक्ति मिल जाती है।

गीता के आठवें अध्याय के पारायण का फल - दुर्गति का निवारण और मोक्ष की प्राप्ति।

९. नौवें अध्याय का फल -

पुराने जमाने में नर्मदा नदी के किनारे पर माहिष्मति नामक नगर था। वहाँ माधव नामक ब्राह्मण था। वह बडा विद्वान था। साथ साथ धर्मनिष्ठ भी था। उसने एक बार याग करने का निश्चय किया। उसमें बलि देने के लिए एक बकरी ले आया। ठीक बलि के एक क्षण पूर्व बकरी ने ब्राह्मण से कहा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इस याग से तुमको कोई भी शाश्वत फल नहीं मिलेगा। पशु की हिंसा करने से मेरी जो दुर्गति हुयी वही तुम्हारी भी होगी। बकरी की बातें सुन कर ब्राह्मण सन्न रह गया। उसके जोर देने पर बकरी ने अपने पूर्व जन्म का

वृत्तांत इस प्रकार सुनाया। हे ब्राह्मण ! पूर्व जन्म में मैं भी तुम्हारी तरह एक ब्राह्मण था। एक दिन मेरपुत्र बीमार पडा। उसके रोग को दूर करने के ख्याल से अपनी पत्नी के हठ के कारण मैं एक बकरी ले आया और मां चण्डी के समक्ष उसकी बलि दे दी। उस बकरी की माँ उस बीभत्स दृश्य को देख कर अधीर हो गयी। उसने मुझे शाप दिया कि तुम बकरी बन जाओ। उसके शाप के प्रभाव से मैं ने कई नीच जन्म लिये। अन्त में बकरी के रूप में यह जन्म लिया। उसकी बातें सुनकर ब्राह्मण उद्विग्न हो गया और उससे प्रार्थना की कि सुख प्राप्ति का मार्ग बताओ। बकरी ने निम्न प्रकार जवाब दिया। -

पुराने जमाने में कुरुक्षेत्र नामक नगर में चन्द्रशर्मा नामक राजा राज करता था। उसने एक बार सूर्य ग्रहण के समय ब्राह्मण को काल पुरुष का दान करना चाहा। एक श्रेष्ठ ब्राह्मण को बुला भेजा। उसे विधि के अनुसार काल पुरुष का दान दिया। तुरन्त उस काल पुरुष की प्रतिमा से चांडाल दंपति पैदा हुए। दान लेनेवाले उस ब्राह्मण को वे सताने लगे। ब्राह्मण गीता के नौवें अध्याय का पारायण करने लगा। तब उस अध्याय के एक एक श्लोक के एक एक वर्ण से एक एक विष्णुदूत का आविर्भाव हुआ चांडालों को खदेड दिया। राजा चकित हो गया ब्राह्मण से पूछा कि किस मंत्र के प्रताप से चांडाल दूर हुए ? तब ब्राह्मण ने जवाब दिया कि मैं गीता के नौवें अध्याय का पाठ करता हूँ। इससे सब आपदा दूर होती हैं। प्रतिग्रहण के दोषों से मुक्ति मिलती है। राजा भी गीता के नौवें अध्याय का पारायण करने लगा। कालक्रम में दोनों मुक्त हो गये।

१. गीताया नवमाध्याया मंत्रमाला मया स्मृता।
तन्माहात्म्यमिदं सर्वं त्वमवेहि महीपते ॥

२. गीताया नवमाध्यायं जपामि प्रत्यहं नृप।
निस्तीर्णा श्चापदन्तेन कुप्रतिग्रह संभवाः ॥

बकरी की बातें सुन कर ब्राह्मण ने उसे तुरन्त छोड दिया। गीता के

नौवें अध्याय का पारायण करने लगा। अंत में परमात्मा की सन्निधि प्राप्त की। इसलिए गीता के नौवें अध्याय के पारायण से प्रतिग्रहण आदि से जनित दोष नष्ट होते हैं। अंत में मोक्ष भी प्राप्त होता है।

गीता के नौवें अध्याय के पारायण का फल- प्रतिग्रहण आदि दोषों का नाश एवं मुक्ति।

१०. दसवें अध्याय का फल --

काशी नगर में धीरबुद्धि नामक एक ब्राह्मण था। वह जितेन्द्रिय था। भगवान का बडा भक्त था। वह ऐसा पावन व्यक्ति था कि वह जहाँ जाता वहाँ भगवान भी अदृश्य रूप से उसके साथ जाता था। भृंगी ने शिवजी से इसका कारण जानना चाहा। तब शिवजी ने कहा कि एक बार मैं कैलास में चाँदनी की रात में एक टीले पर बैठा हुआ था। तब अचानक एक पक्षी मेरे पास आया और एक पद्म सौंप कर प्रणाम किया। मैं ने पूछा कि तुम कौन हो? तुम्हारा समाचार क्या है ? उस पक्षी ने जवाब दिया कि मैं ब्रह्मदेव का हंस हूँ। सौराष्ट्र देश में पद्मों से भरा एक तालाब हैं। वहाँ मैं ने एक दिन कमल की नाल खा कर आसमान में उडने का प्रयत्न किया। पर नीचे गिर गया। मेरा शरीर काला हो गया। मैं चकित हो गया। समझ में नहीं आया कि ऐसा क्यों हुआ? इतने में उस तालाब से निकल कर पद्मलता बाहर आयी। उसने कहा कि उठो। तुम मुझसे आगे आगे आसमान में उडते जा रहे हो। इसीलिए काला होकर गिर गये हो। मेरी गंध सूंध कर बीस हजार भ्रमर अब दिव्य रूप प्राप्त कर स्वर्ग पहुँच गये। मेरे इस प्रभाव का एक विशेष कारण है। पहले मैं एक ब्राह्मण बालिका थी। मेरा नाम सरोजवदना था। विवाह के बाद पति की सेवा में लग गयी थी। एक दिन एक मैना को बातें सिखा रही थी कि पति की सेवा में थोडी देर हुयी। इससे नाराज होकर पति ने शाप दिया कि मैना बन जा। मैं मैना बन गयी। एक मुनीन्द्र के घर में रहने लगी। मुनींद्र हर दिन गीता के दसवें अध्याय का पाठ किया करता था। मुझे लगातार उसके श्रवण का

सौभाग्य मिला। उसके पुण्य प्रताप से मैं ने कुछ वर्षों के बाद अपनी देह त्याग दी। स्वर्ग पहुँच गयी। वहाँ एक अप्सरा के रूप में जन्म लिया। मेरा नाम पद्मावती पड़ा। लक्ष्मी देवी की सखी बन गयी। एक बार इस सरोवर के यहाँ विहार कर रही थी कि दूर्वास ऋषि यहाँ आये। उन्हें देख कर डर गयी। तुरन्त पद्मलता का रूप धारण किया। यह देख कर ऋषि कृद्ध हुए। शाप दिया कि तुम इसी रूप में एक सौ साल रहोगी। अब हम दोनों के शाप की अवधि समीप आ गयी है। मैं अब गीता के दसवें अध्याय का पारायण करूँगी। तुम उसका श्रवण करो। पद्मलता ने गीता के दसवें अध्याय का पारायण शुरू किया। उसे मोक्ष की प्राप्ति हुयी। उस लता ने एक पद्म दिया। उसे लेकर मैं आप के पास आया हूँ। इसे आपको समर्पित करता हूँ। शिवाजी ने कहा कि है भृंगीश्वर! ब्रह्म देव का वह हंस पद्मलता के प्रबोध से गीता के दसवें अध्याय का पाठ करते हुए ब्राह्मण के रूप में पैदा हुआ। पूर्वजन्म के संस्कार के कारण निरंतर वह गीता के दसवें अध्याय का पाठ करते हुए विष्णु के दर्शन कर जीवन्मुक्त हो गया है।

दशमाध्याय माहात्म्यात् तत्त्वज्ञानं सुदुर्लभम्।
लब्धमेतेन मुनिना जीवन्मुक्तिरियं तथा॥

इसीलिए, मैं सदा प्रेम से उसके साथ रहता हूँ। गीता के दसवें अध्याय का यह फल है। गीता के दसवें अध्याय का फल - ब्रह्म ज्ञान की व्याप्ति।

११. ग्यारहवें अध्याय का फल --

पुराने जमाने में प्रणीता नामक नदी के किनारे, मेघंकर नामक एक नगर था। लोकपति विष्णु वहाँ रह कर नगरवासियों को सुखों की प्राप्ति करा रहे थे। उस नगर में मेखला नामक एक तीर्थराज था। वहाँ सुनंद नामक एक ब्राह्मण था। वह सदाचारी एवं वेदशास्त्रों में प्रवीण था। वह नित्य विष्णु के यहाँ गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ किया करता था। इससे वह ब्रह्मज्ञानी

बन गया। एक बार वह तीर्थयात्रा केलिए निकल पडा। कई तीर्थों की यात्रा पूरी कर विवाह मंडप नामक नगर पहुँचा। ग्राम के अधिकारी ने रहने के लिए उन्हें एक मंदिर दिखाया। ब्राह्मण अपने साथियों के साथ वहाँ ठहर गया। दूसरे दिन जाग कर देखा तो उसे छोड़ कर बाकी सब साथी गायब थे। इतने में गाँव का अधिकारी वहाँ आया और कहा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! इस नगर में नरभक्षी एक क्रूर राक्षस है। वह नगर के लोगों को मार कर खाता है। हम ने उसको समझा कर नगरवासियों को मारने से मना किया। यह मंदिर बना कर हमने कहा कि बाहर से जो लोग आएँगे उन्हें इस मंदिर में ठहराएँगे, तुम उन्हें मार कर खा लो। आपको छोड कर आपके बाकी सभी साथी उसके द्वारा मारे गये हैं। उसने उन सब को खा लिया है। मेरे पुत्र को भी इसी प्रकार मार कर खा चुका है। आप में कोई अलौकिक शक्ति है जिससे वर आपको मार नहीं सका। मैं ने उस राक्षस से पूछा कि हे राक्षस! मेरा पुत्र पुनरुज्जीवित कैसे होगा? राक्षस ने कहा कि गीता के ग्यारहवें अध्याय का पारायण करते हुए अभिमंत्रित जल का प्रोक्षण करो तो वह जीवन्मुक्त हो जाएगा। मेरे द्वारा मारे गये लोग भी पुनरुज्जीवित हो सकेंगे। तब मैं ने उससे पूछा कि गीता के ग्यारहवें अध्याय को इतना महत्व कैसे प्राप्त हुआ? उसने जवाब दिया कि वित्तवान नामक ब्राह्मण हर रोज गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ करता था। वह मर गया। उसकी हड्डी को एक गीध ले जा रहा था कि रास्ते में एक जलाशय में वह हड्डी गिर गयी। वह जलाशय एक बडा तीर्थ स्थल बन गया। गीता के ग्यारहवें अध्याय में ऐसी महान शक्ति निहित है। फिर राक्षस ने मेरे पुत्र को पुनरुज्जीवित करने के लिए आप के पास जाने का आदेश दिया। तब सुनन्द ने उस गाँव के अधिकारी से राक्षस के बारे में पूछा तो उसने बताया कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! पहले इस गाँव में खेती करते हुए एक ब्राह्मण अपना जीवन यापन कर रहा था। एक दिन वह अपनी खेत में बैठा हुआ था। उसने देखा कि रास्ते पर जानेवाले एक आदमी को गीध चोंच मार मार कर मार रहा था। एक

मुनीन्द्र दौडा हुआ वहाँ आया तो आदमी को मार कर गीध उड गया। आदमी मरा पडा था खेत में वह ब्राह्मण वैसे ही बैठा हुआ था। मुनीन्द्र को गुस्सा आया। उसने ब्राह्मण को राक्षस बन जाने का शाप दिया। ब्राह्मण ने अपना दोष स्वीकार किया। मुनीन्द्र से प्रार्थना की कि शाप मुक्ति का उपाय बतावें। मुनीन्द्र ने कहा कि गीता के ग्यारहवें अध्याय का सात बार पाठ कर अभिमंत्रित जल से प्रोक्षण करोगे तो तुम शाप मुक्त होओगे। यह कह कर ग्राम के अधिकारी ने सुनन्द से प्रार्थना की कि हे विप्रश्रेष्ठ ! आप गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ कर इन सब को मुक्ति प्रदान कीजिए। सुनन्द ने उसकी प्रार्थना मान ली। गीता के ग्यारहवें अध्याय का पारायण किया। अभिमंत्रित जल राक्षस के सिर पर छिडका। तब उस राक्षस के द्वारा मारे गये सभी अभागे मनुज पुनरुज्जीवित हो गये। उस राक्षस ने भी पूर्व जन्म प्राप्त किया। सब दिव्य देह धारी बन कर विष्णुलोक पहुँच गये। विष्णुलोक जाने के पहले पुत्र ने अपने ग्राम के अधिकारी पिता से कहा कि हे पिताजी! आप साधु जनों के सांगत्य में रहिए। गीता के ग्यारहवें अध्याय का पारायण कीजिए। इससे सभी कार्य सिद्ध होंगे। दिव्य लोक प्राप्त होगा। ग्राम के अधिकारी ने आजीवन ऐसा ही किया। इसके बाद वह भी जीवन्मुक्त हो गया। इसलिए गीता के ग्यारहवें अध्याय के पारायण से समस्त पापों से मुक्ति एवं परमात्मा के पद की प्राप्त होगी।

निष्कल्मषतया चैनं प्रापुस्ते परमम् पदम्।
एकादशस्य सामर्थ्या दध्यायस्य भविष्यति ॥

गीता के ग्यारहवें अध्याय के पारायण का फल - सब पापों से मुक्ति एवं परम पद की प्राप्ति।

१२. गीता के बारहवें अध्याय का फल -

दक्षिण देश में कोल्हापुर नामक एक नगर था। वह भोग भाग्य एवं सुख वैभव से विलसित था। पराशक्ति लक्ष्मी देवी वहाँ निवास करती थी। एक दिन एक राजकुमार वहाँ आया। भक्ति भरे हृदय से उसने लक्ष्मी देवी की

स्तुति की। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर लक्ष्मी देवी ने उसे अपने दर्शन देकर कहा कि वर माँगो। उसने प्रार्थना की कि हे देवी, मेरे पिता बृहद्रथ अश्वमेध याग करते हुए रोग ग्रस्त हो मर गये। तेल में उनका शरीर सुरक्षित है। याग का अश्व कहीं भाग गया है। आज तक उसका पता नहीं लगा। माँ ! यदि अश्व को दिलावें तो याग पूरा कर पितृ ऋण से मुक्त होऊँगा। ''राजकुमार की बातें सुन कर देवी ने कहा कि मेरे मंदिर के द्वार पर सिद्ध समाधि नामक एक ब्राह्मण है। वह तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सकता है।'' राजा का पुत्र उस ब्राह्मण के यहाँ गया और सारा समाचार कह सुनाया। ब्राह्मण ने मंत्र के प्रभाव से सब देवताओं को बुला कर कहा कि अश्वमेध याग का अश्व देवेन्द्र के यहाँ छिपा कर रखा गया है। उसे ले आओ। देवताओं ने वैसा ही किया। अश्व फिर मिल गया। इससे राजकुमार काफी प्रभावित हुआ और ब्राह्मण से प्रार्थना की कि मृत पिता के शरीर को पुनरुज्जीवन प्रदान करें। ब्राह्मण ने मान लिया और मृत शरीर पर मंत्र जल छिडक दिया बृहद्रथ जीवित हो गया। राजकुमार ने अपने पिता से सारा समाचार कह सुनाया। तब राजा ने ब्राह्मण को प्रणाम किया। प्रश्न किया कि किस शक्ति के प्रभाव से आप इतने समर्थ हुए ? ब्राह्मण ने जवाब दिया - गीतानां द्वादशाध्यायं जपाम्यह मतन्द्रितः।

तेन शक्ति रियं राजन् यथा प्राप्तोसि जीवितम् ॥

'हे राजन् ! मैं हर दिन गीता के बारहवें अध्याय का पारायण करता हूँ। इससे ऐसी शक्ति प्राप्त हुयी है।' राजा और उसके पुत्र दोनों ने उस ब्राह्मण से गीता के बारहवें अध्याय के पारायण की विधि जान ली और बडी श्रद्धा से आचरण में ले आये। बाकी लोगों ने भी वही कार्य किया सब मुक्ति धाम पहुँच गये। इसलिए गीता के बारहवें अध्याय के पारायण से दिव्य शक्तियाँ प्राप्त होंगी और मोक्ष की प्राप्ति होगी।

गीता के बारहवें अध्याय के पारायण का फल - दिव्य शक्तियों की प्राप्ति और मोक्ष की प्राप्ति।

१३. गीता के तेरहवें अ्याय का फल -

दक्षिण देश की गभद्रा नदी के किनारे हरिहरपुर नामक नगर था। वहाँ हरि दीक्षित नामक र्मनिष्ठ ब्राह्मण था। उसकी पत्नी कुलटा थी। वह हर दिन पति की निन्दा वती थी। पर पुरुषों के सांगत्य की उसे आदत पड गयी थी। उस नगर के सप एक जंगल था। वहाँ एक स्थान पर वह ठहरती तो विलासी पुरुष वहाँ आ। उनके साथ भोग विलास में वह जग जाती। एक दिन.रात के समय वह जंग के निश्चित स्थल पर पहुँची। एक भी पुरुष वहाँ नहीं आया। कामातुरा कुटा पुरुषों की प्रतीक्षाकर ही रही थी कि अचानक एक बाघ वहाँ आया। उस कुलटा को मार कर खा गया। मृत्यु के बाद अपने पाप कृत्यों के कारण कई रक यातनाएँ सहती हुयी अंत में धरती पर एक चांडाल के कुल में पैदा हुी। एक दिन वह ईश्वर की सती जृंभकादेवी के मंदिर के पास गयी। वहाँ वसुदेव नामक ब्राह्मण गीता के तेरहवें अध्याय का पारायण कर रहा था। उस औरत ने बडी श्रद्धा के साथ तेरहवें अध्याय के श्लोकों का श्रवण किया। न्त वह चांडाल जन्म से मुक्त हो गयी। दिव्य लोक चली गयी। इस प्रका गीता के तेरहवें अध्याय के पारायण तथा श्रवण से चांडाल जन्म आदि दोषों े लोग मुकत होकर दिव्य लोक में पहुँच सकते हैं।

गीता त्रयोदशाध्या मुदूगिरन्त मनारतम्।
ात स्तच्छ्रवणादेवा्क्ता श्वपच विग्रहात्॥

गीता के तेरहवें अयाय के पारायण का फल-पापों से मुक्ति एवं सद्गति की प्राप्ति।

१४. चौदहवें अध्याय का ल -

पुराने जमाने में कश्र राज्य में शौर्यवर्मा नामक राजा राज करता था। उसने अपने मित्र सिंहल ्प के राजा विक्रम बेताल के पास दो शिकारी कुत्ते भेजे। उन कुत्तों को साथ कर एक बार विक्रम बेताल अपने राजकुमारों

के साथ शिकार के लिए निकल पडे। दूर से एक खरहा आता हुआ दिखाई पडा। उसे पकडने के लिए राजा ने शिकारी कुत्ते वे छोड दिया। दोनों भागते भागते एक आश्रम पहुँच गये। उस आश्रम में त्स नामक एक जितेन्द्रिय मुनीन्द्र रहता था। वह हर दिन गीता के चौदहवें अध्याय का पारायण किया करता और अपने शिष्यों से भी उसका पाठ करता। उस आश्रम में सिंह, बाघ आदि क्रूर जंतु भी हिरन आदि पशुओं से लि मिल कर रहते थे। वत्स मुनीन्द्र के शिष्य के आश्रम के पास जल से गीलीहो गयी। दौडते हुए आरहा खरहा एवं शिकारी कुत्ता दोनों थक कर उस कीचड़ में गिर गये। वहाँ के पवित्र जल के स्पर्श से वे दोनों दिव्य रूप पाकर विमानमें बैठ कर स्वर्ग पहुँच गये। यह घटना देख कर राजा चकित हो गया। मुनीन्द्र के शिष्य से उसका कारण जानना चाहा। मुनीन्द्र के शिष्य ने कहा कि महाराष्ट्र में पहले प्रत्युदक नामक एक नगर था। वहाँ एक धूर्त ब्राह्मण रहता था। उसका नाम केशव था। उसकी एक कुलटा पत्नी थी। वह व्यभिचार करने में माहिर थी। उसके दुश्चरित्र पर नाराज होकर पति ने उसे एक दिन मार डाला। स्त्री हत्या के पाप से वह खरहे के रूप में पैदा हुआ। पापिनी पत्नी शिकारी कुत्ते के रूप में पैदा हुयी। आश्रम आया हुआ खरहा एवं शिकारी कुत्ता वे ही हैं। आश्रम में जितेन्द्रिय मुनि रहते हैं। वे गीता के चौदहवें अध्याय का निरंतर पाठ किया करते हैं। मैं उनका शिष्य हूँ। मैं भी सदा उस अध्याय का जप करता हूँ। मेरे चरणोदक के स्पर्श से आज वे दोनों जंतु पुनीत होकर स्वर्ग पहुँच चुके हैं।

चतुर्दशं तु अध्यायं जपामित्यहं नृप
मदीय चरणाम्भोजप्रक्षालनजले लुठन्
शश स्त्रिदश्च मापन्नः शुनका सह भूपते।

शिष्य के वचन सुन कर राजा प्रभावित हुआ। उस दिन से उसने भी गीता चौदहवें अध्याय का पाठ शुरू किया। अंत में परमपद प्राप्त किया। इस प्राकर गीता के चौदहवें अध्याय के पाठ से सभी दोष दूर होते हैं। परम पद प्राप्त होता है।

गीता के चौदहवें अध्याय के पारायण का फल - दोषों का निवारण एवं उत्तम पद की प्राप्ति।

१५. पन्द्रहवें अध्याय का फल -

पुराने जमाने में गौडदेश में नरसिंह नामका राजा राज करता था। सरसभेदी नामक उनका एक सेनापति था। सेनापति ने राजा को मार कर राज्य हथियाने का निर्णय किया। परन्तु इसके पहले ही वह रोग ग्रस्त होकर मर गया। सिन्धु देश में अश्व के रूप में वह पैदा हुआ। एक व्यापारी ने वह अश्व उसी राजा को बेच दिया। एक दिन उस घोडे पर चढ कर राजा शिकार केलिए जंगल में गया। घोडे से उतर कर उसे एक पेड से बांध दिया। प्यास जगने के कारण जल की खोज में चल कर एक शिला पर बैठ गया। इतने में ताड का पत्ता उडता हुआ वहाँ आ गिरा। उस पर कुछ लिखा हुआ था। राजा ने उसे उठा कर ध्यान से पढा। गीता के पन्द्रहवें अध्याय के श्लोक का अर्ध भाग लिखा हुआ था। उस अर्थ श्लोक के श्रवण से घोडा दिव्य रूप प्राप्त कर स्वर्ग चला गया। वहीं पर एक आश्रम था। राजा वहाँ गया। वहाँ के मुनीन्द्र से घोडे की मुक्ति का कारण जानना चाहा। मुनीन्द्र ने बताया कि गीता के पन्द्रहवें अध्याय के अर्ध श्लोक का ही यह फल है।

अथ पंच दशाध्याय श्लोकार्थं लिखितं क्वचित्
ततो वाच यतः श्रुत्वा निरगात्तुरगो दिवम्॥

राजा इससे प्रभावित हुआ। वह पन्द्रहवें अध्याय का पाठ करने लगा परम पद प्राप्त किया। इस प्रकार गीता के पन्द्रहवें अध्याय के पारायण से प्राणी पापों से मुक्त होकर मोक्ष पाते हैं।

गीता के पन्द्रहवें अध्याय का फल - सब पापों से मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति।

१६. सोलहवें अध्याय का फल -

पुराने जमाने में धूर्जर देश के सौराष्ट्रिक नगर में खड्गबाहु नामक

राजा रहता था। उसके पास अरिमर्दन नामक एक शक्तिशाली हाथी था। एक बार जींजीरें तोड कर हाथी नगर में आ गया। इससे नगरवासी सब भयभीत हो गये। महावत एवं राजा ने उसे काबू में लाने का प्रयास किया। पर सफलता नहीं मिली। इतने में सरस नामक एक ब्राह्मण स्नान करके गीता के सोलहवें अध्याय के श्लोकों का पाठ करते हुए वहाँ आ गया। लोगों ने उसे उधर जाने से मना किया। परन्तु ब्राह्मण सीधे हाथी के पास गया और हाथ से उसे पुचकारने लगा। उसके कर स्पर्श से हाथी विनम्र हो गया। राजा चकित हुआ। उस ब्राह्मण से शक्ति का कारण जानना चाहा। ब्राह्मण ने जवाब दिया - हे राजन्! मैं हर दिन गीता के सोलहवें अध्याय के कुछ श्लोकों का पाठ किया करता हूँ। इसीसे मुझे यह शक्ति मिली।

गीतायाः षोडशोध्याय श्लोकान् कतिपयानहम्।
जपामि प्रत्यहं भूपते नैताः सर्व सिद्धयः ॥

ब्राह्मण वचन सुन कर राजा प्रभावित हुआ। ब्राह्मण को अपने प्रासाद में ले गया। उसने गीता के सोलहवें अध्याय के पारायण का अभ्यास किया। धीरे धीरे राजा ने भी वैसी शक्ति हासिल की। अन्त में परम पद प्राप्त किया। इस प्रकार गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ से अपरिमित शौर्य साहस प्राप्त कर अन्त में मोक्ष पा सकेंगे।

गीता के सोलहवें अध्याय के पारायण का फल - बल पराक्रम एवं मोक्ष की प्राप्ति।

१७. गीता के सत्रहवें अध्याय का फल -

धूर्जर देश के राजा खड्गबाहु के पुत्र के यहाँ दुश्शासन नामक एक सेवक था। एक दिन वह एक मस्त गज पर सवार होकर जा रहा था। रास्ते में उस हाथी ने उसे नीचे गिरा कर मार डाला। इसके बाद वह दुश्शासन सिंहल के राज जयदेव के दरबार में हाथी के रूप में पैदा हुआ। जयदेव ने उस हाथी को अपने मित्र खड्गबाहु को सौंप दिया। खड्गबाहु ने उसे एक कवीश्वर को

सौंप दी। उस कवीश्वर ने उसे मालवदेश के अधीश्वर को बेच दिया। एक बार वह हाथी रोग ग्रस्त हो गया। राजा ने रोग निवारणार्थ चिकित्सा करायी। लेकिन रोग कम नहीं हुआ। राजा देखने के लिए हाथी के पास आया। हाथी ने राजा से कहा कि हे राजन्! इन दवाओं से मेरा रोग दूर नहीं होगा। गीता के सत्रहवें अध्याय का पाठ करनेवाले को यहाँ ले आइए। मेरा रोग दूर हो जाएगा।

गीता सप्तदशाध्याय जापकं द्विज मानय।
तेनायं मामको रोगः शाम्य त्यत्र न संशयः॥

तुरन्त राजा ने गीता के सत्रहवें अध्याय कापाठ करनेवाले एक ब्राह्मण को बुलाया। वह ब्राह्मण वहाँ सत्रहवें अध्याय का पाठ करने लगा। उन श्लोकों का श्रवण कर हाथी शीघ्र ही चंगा हो गया। मोक्ष प्राप्त किया। इससे प्रभावित होकर मालवदेश के अधीश्वर ने भी गीता के सत्रहवें अध्याय का पारायण शुरू किया। अचिरकाल में ही वह भव के बंधनों से मुक्त हो गया। इस प्रकार गीता के सत्रहवें अध्याय के पाठ से महारोगों का शमन होगा। प्राणी को मोक्ष मिलेगा।

गीता के सत्रहवें अध्याय के पारायण का फल - सभी रोगों से मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति।

१८. गीता के अठारहवें अध्याय का फल -

मेरु पर्वत के शिखर पर अमरावती नामक नगर में एक बार देवेन्द्र अपनी राणी शचीदेवी के साथ विराजमान था। तब विष्णु के दूत एक तेजस्वी पुरुष को वहाँ ले आये। उसकी तेजस्विता देख न सकने के कारण देवेन्द्र जमीन पर गिर पडा। तब विष्णु के दूतों ने उस तेजस्वी महा पुरुष को सिंहासन पर बिठा दिया। राज तिलक कर स्तोत्र पाठ करने लगे। बाजे बजने लगे। यह दृश्य देखकर देवेन्द्र हक्का बक्का रह गया। कारण उसकी समझ में नहीं आया। तब वह सीधे विष्णु लोक पहुँचा और भगवान विष्णु से कारण जानना चाहा।

विष्णु ने जवाब दिया कि वह हर दिन गीता के अठारहवें अध्याय के पांच श्लोकों का पाठ भक्ति से किया करता है। इसलिए उसे महत्व प्राप्त हुआ।

"जप त्यष्टादशाध्याये गीतानां श्लोक पञ्चकम्।

यत्पुण्येन च संप्राप्तं तव साम्राज्यमुत्तमम्॥

ये बातें सुन कर देवेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण कर गोदावरी नदी के किनारे बसे एक ब्राह्मण श्रेष्ठ की सेवा करने लगा। वह ब्राह्मण श्रेष्ठ गीता के अठारहवें अध्याय का निरंतर पाठ किया करता था। देवेन्द्र ने उनसे गीता के अठारहवें अध्याय का पाठ करना सीख लिया। फिर देवेन्द्र पद को तुच्छ मान कर अन्त में विष्णु लोक में निवास का सौभाग्य प्राप्त किया।

इस प्रकार गीता के अठारहवें अध्याय के पारायण से मनुष्य को सभी यज्ञों का फल, सभी पुण्य कार्यों का फल, तथा मोक्ष प्राप्त होते हैं। इस तरह गीता के अध्यायों के महत्व पहले भगवान विष्णु ने लक्ष्मी देवी से बताया। फिर उसी को शिवजी ने पार्वतीदेवी से बताया।

गीता के अठारहवें अध्याय का फल - सभी पुण्यों के फल और मोक्ष की प्राप्ति।

गीता के अनेक रूप

(Polymorphism)

गीता:

- भगवान श्रीकृष्ण का दूत
- महर्षि व्यास द्वारा प्रणीत
- वेदमंत्रों द्वारा घोषित
- अहंकार आदि का हन्ता
- दिव्य ज्ञान का दाता
- आसुरी स्वभाव के लिए चीता
- दैवी संपदा का नेता
- पारमार्थिक भावना की माता
- राग द्वेष आदि पर आक्रमिता
- कैवल्य पथ की सीता
- प्रणवनाद का प्रगाता
- भवसागर का त्राता
- मुमुक्षुजनों का भ्राता
- प्रकृति साम्राज्य का जेता
- धर्मामृत का सोता

गीता-संग्रह

भगवद्गीता के हर अध्याय से उस अध्याय का सार ज्ञात करानेवाले एक एक श्लोक का चुनाव कर भाव के साथ उसका विवरण यहाँ दिया जाता है। गीतासार का ज्ञान जो पाना चाहते हैं उनकेलिए यह विवरण बडा उपयोगी सिद्ध होगा।

१. न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ (१-३२)

हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों को ही। हे गोविन्द ! हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगों से और जीवन से भी क्या लाभ है? ।

२. न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ (२-२०)

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता। (२-२०)

३. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ (३-७)

हे अर्जुन! जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्मयोगका आचरण करता है वही श्रेष्ठ है ।

४. ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ (४-२४)

जिस यज्ञ में अर्पण अर्थात् स्रुवा आदि भी ब्रह्म है और हवन किये जानेयोग्य द्रव्य भी ब्रह्म है तथा ब्रह्मरूप कर्ता के द्वारा ब्रह्मरूप अग्नि में आहुति देनारूप क्रिया भी ब्रह्म है - उस ब्रह्मकर्म में स्थित रहने वाले योगीद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य फल भी ब्रह्म ही है।

५. ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ (५-१०)

जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल से कमल के पत्ते की भाँति पाप से लिप्त नहीं होता।

६.   शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥ (६-२५)

क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरति को प्राप्त हो तथा धैर्य युक्त बुद्धि के द्वारा मनको परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे ।

७.   मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ (७-७)

हे धनञ्जय ! मुझ से भिन्न दूसरा कोई भी परम कारण नहीं है । यह सम्पूर्ण जगत् सूत्र में सूत्र के मनियों के सदृश मुझ में गुँथा हुआ है ।

८.   ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ (८-१३)

जो पुरुष 'ॐ' इस एक अक्षररूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मुझ निर्गुण ब्रह्म का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है ।

९.   अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ (९-२२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तर करनेवाले पुरुषों को योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ ।

१०.   यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥ (१०-४१)

जो-जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस-उसको तू मेरे तेज के अंश की ही अभिव्यक्ति जान ।

११.   मत्कर्मकृत्मत्परमो मद्भक्त सङ्गवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ (११-५५)

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को

करने [illegible], मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूत[illegible] में वैरभाव से रहित है, वह अनन्य भक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता।

[illegible]. संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥ (१२-१४)

[illegible] योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये [illegible] और मुझ में दृढ निश्चयवाला है - वह मुझ में अर्पण किये हुए मन-बुद्धि [illegible] मेरा भक्त मुझ को प्रिय है।

[illegible]३. क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम॥ (१३-२)

[illegible] अर्जुन! तू सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मुझे ही जान और [illegible]त्रज्ञ को अर्थात् विकारसहित प्रकृतिका और पुरुष का जो तत्त्व से जान[illegible] वही ज्ञान है - ऐसा मेरा मत है।

[illegible]४. नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥ (१४-१९)

[illegible]स समय द्रष्टा तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखत[illegible] [illegible] तीनों गुणों से अत्यन्त परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझ परमात्मा को त[illegible] [illegible] जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है।

[illegible]. निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

जिनका मान और मोह नष्ट हो गया है, जिन्होंने आसक्तिरूप दोष को जी[illegible] लिया है, जिनकी परमात्मा के स्वरूप में नित्य स्थिति है और जिनकी कामना[illegible] पूर्णरूप से नष्ट हो गयी हैं - वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानीजन उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

१६. यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ (१६-२३)

जो पुरुष शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धिको प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ही।

१७. सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥

हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अन्तःकरण के अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।

१८. *सर्वधर्मान्परित्यज्य*
मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो
मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (१८-६६)

सम्पूर्ण धर्मों को अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को मुझ में त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

गीता का अंतरार्थ

पांडव एवं कौरवों का युद्ध वास्तव में हर प्राणी के हृदय में हर दिन होता रहता है। वह धर्म और अधर्म की भावनाओं का ही संघर्ष है। जीवन एक रणक्षेत्र है। यहाँ सुख-दुःख, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, बुरा-भला और न्याय-अन्याय के बीच हमेशा संघर्ष चलता रहता है। इनमें बुद्धि निश्चयात्मक होती है। वह शुद्ध और विवेकयुक्त हो तो फल भी शुद्ध और विवेकयुक्त होते हैं। इसीलिए उपनिषदों ने बुद्धि को सारथी कहा है। रथ बिना किसी अवरोध के मञ्जिल तक पहुँचना हो या कुमार्ग पर न चल कर सन्मार्ग पर चलना हो तो कुशल सारथी का होना आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण जैसे सारथी मिले तो रथ विजय पथ पर अवश्य चलेगा। अर्जुन के सौभाग्य से उसे श्रीकृष्ण जैसे प्रज्ञावान कुशल सारथी मिला। धर्म के क्षेत्र में चलने के लिए अर्जुन निकल पडा। तब वह कर्मच्युत होकर वक्रमार्ग पर चलने को उद्यत हुआ। श्रीकृष्ण ने उसे ज्ञान का संदेश देकर सही मार्ग पर चलाया। उसी संदेश का संग्रह है भगवद्गीता। इसी प्रकार हृदय क्षेत्र में जब पवित्र बुद्धि आध्यात्मिक निर्णय के क्षेत्र से च्युत होता है तब उसे ज्ञान का संदेश देकर सही मार्ग दिखाता है गीता शास्त्र। गीता का अंतरार्थ यही है। अर्जुन की तरह हर प्राणी अपने जीवन-रथ के लगामों को भगवान के हाथों में सौप कर चले तो उसके अनुग्रह से मोक्ष रूपी मंजिल तक वह आसानी से पहुँच सकता है।

गीता के अंतरार्थ का विवरण निम्न प्रकार है -

कुरुक्षेत्र	- हृदय
अर्जुन का रथ	- शरीर
सारथी श्रीकृष्ण	- प्रज्ञावान बुद्धि (परमात्मा)
रथी अर्जुन	- चंचल मन (जीव)
अश्व	- इन्द्रिय

कौरव + प्रतिपक्ष की सेना - काम, क्रोध, राग, द्वेष अहंकार एवं

ममत्व आदि दुर्गुण

पाण्डव - स्वपक्ष की सेना - निर्भयता, भक्ति, श्रद्धा आदि सद्गुण

अर्जुन का धनुष - साधना चतुष्टय

सञ्जय - विवेक

धृतराष्ट्र - अविवेक, अविद्या

दुर्योधन - काम

भगवद्गीता - जीव को (मन के बारे में)

प्रज्ञावान् बुद्धि के द्वारा प्रदत्त हितवाक्य

प्रथम ६ अध्याय (कर्म षट्क) श्रवण

द्वितीय ६ अध्याय - (भक्ति षट्क) मनन

तृतीय ६ अध्याय - (ज्ञान षट्क) निदिध्यास

जीवन रथ को विषय वासनाओं के मार्ग पर चलाना ही बंधन है। दैवी मार्ग पर चलाना ही मोक्ष है। यही गीता का रहस्य है।

गीतोद्यान का विहार

१. भगवद्गीतोद्यान में विहार भक्तिसहित करें आओ।
सुन्दर उसके दर्शन के हित सुलभ मार्ग यह, आ जाओ॥

२. जीवन रण के परिसर में उपजा सौभाग्य धाम है गीता।
व्यास महर्षि के हाथों पनपा उद्यान-धाम है यह गीता॥

३. भगवान कृष्ण ने धरती पर गीता का दिव्य रथ चलाया।
इसके द्वारा जन हित का पावन पथ दर्शाया॥

४. पृथ्वी पर अष्टादश बीधों का पुण्य क्षेत्र प्रशस्त हुआ।
हरे भरे छायादार सप्त शत सद्वृक्षों का विस्तार हुआ॥

५. ये सुमन कभी न मुरझाते हैं, ये फल कभी न सडते हैं।
धन्य धन्य यह चलें वहाँ हम, गीता फल बाटें जन जन में॥

गीता - जयंती

व्यक्तियों की तरह जयंती मनाने का सौभाग्य गीता ग्रन्थ को प्राप्त हुआ। उसका कारण इस ग्रन्थ की विशेषताएँ ही हैं। रण क्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को मार्गशिर शुद्ध एकादशी के दिन गीता का उपदेश दिया। इसलिए वह पर्व दिन माना जाता है। जिस प्रकार श्रीराम जयंती, श्रीकृष्ण जयंती, श्रीबुद्ध जयंती श्रीदत्तात्रेय जयंती एवं श्री शंकर जयंती के अवसर पर उन अवतार पुरुषों की अर्चना की जाती है उसी प्रकार गीता जयंती के अवसर पर गीता देवी की अर्चना की जाती है। गीता माता की अर्चना की विधि के बारे में इस ग्रन्थ में अन्यत्र बताया गया है। उस दिन श्री कृष्ण, श्रीव्यास और श्री अर्जुन की अर्चना के साथ साथ निम्न लिखित कार्यक्रम भी अमल में लावें तो ठीक होगा।

१. भगवद्गीता के कुल १८ अध्याय हैं। उनका पारायण व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से उस दिन करना चाहिए। कई भक्त एकत्रित हों तो सामूहिक पारायण श्रेष्ठ है। सामूहिक पारायण से श्लोकों के पाठ की ध्वनि जोर से मुखरित होकर लोगों में उत्साह भरती है। उस उद्घोष के श्रवण से लोगों के श्रवणेन्द्रिय पुनीत होते हैं। गीता की समाप्ति के बाद गीता माहात्म्य का भी पाठ करना चाहिए।

२. गीता तत्त्व के ज्ञाताओं के द्वारा उस दिन गीता के बारे में भाषण दिलाना चाहिए। गीता माहात्म्य संबंधी भाषणों से लोगों में गीता के उदात्त भावों का प्रचार होगा। गीता के प्रति श्रद्धा बढेगी। फल स्वरूप उनके सांसारिक दुख दूर होंगे और उन्हें परमानन्द प्राप्त होगा। इससे बढ कर परोपकार दूसरा और क्या हो सकता है ? इसलिए गीताज्ञान के वितरण का आयोजन कर लोगों के नैतिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक विकास की व्यवस्था करनी चाहिए। ऐसे पुण्य पुरुष भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह के पात्र बन जाते हैं। भगवान ने स्वयं कहा है -

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।

भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥ (१८-६९)

उससे बढकर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है, तथा पृथ्वीभर में उससे बढकर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं।

३. बच्चों, विद्यार्थियों, बडों एवं महिलाओं के लिए गीता संबंधी स्पर्धाएँ अलग अलग चला कर विजयी लोगों को पुरस्कृत करना चाहिए। इससे गीता पाठ, चिंतन एवं मनन की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलेगा। गीता पाठ के प्रति लोगों में उत्सुकता बढेगी। सुननेवालों में भी उत्साह बढेगा। समाज में गीता का प्रचार होगा।

४. आम जनता में गीता का प्रचार करने के लिए लोक कलाओं का उपयोग करना आवश्यक है। संगीत और गीता का संबंध लोक विदित है।

५. गीता का सार, गीता की विशेषताएँ एवं गीता के कुछ श्लोक वगैरह का मुद्रण करा कर लोगों तक पहुँचाना चाहिए। गीता प्रेमी दाता गीता ग्रन्थ खुद खरीद कर उत्सुक व्यक्तियों में वितरित कर सकें तो गीता के प्रचार को प्रोत्साहन मिलेगा।

६. जहाँ जहाँ संभव हो वहाँ वहाँ गीता संबंधी ग्रन्थों, चित्रों एवं गीता संबंधी सामग्री की प्रदर्शिनी का आयोजन करना चाहिए।

७. गीता जयंती के दिन भगवान श्रीकृष्ण, श्रीव्यास एवं श्री अर्जुन के चित्र अलंकृत रथ पर रख कर जुलूस निकालना चाहिए।

८. गीता जयंती के दिन हर व्यक्ति को कोई न कोई प्रतिज्ञा करनी चाहिए। बुरी आदतें हों तो छोड देनी चाहिए। निर्णय करना चाहिए कि इस साल गीता के इतने अध्यायों का पारायण करेंगे। कम से कम इतने श्लोकों को कंठस्थ करेंगे। इस प्रकार गीता संबंधी रचनात्मक कार्यक्रमों पर गीता प्रेमियों को ध्यान देना चाहिए।

लोगों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि गीता की सेवा अपनी ही सेवा है। गीता पाठ व्यक्ति के नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास का सोपान है। हर व्यक्ति कम से कम एक दो साथियों को गीता पाठ के प्रति आकर्षित कर सके तो समाज में नैतिकता का उत्थान होगा। देश का कल्याण होगा।

गीता की आरती

१. जयतु जयतु गीता कृष्ण वक्त्र प्रभूता
जयतु जयतु गीता सर्व लौकिक माता
जयतु जयतु गीता दैव संपत्प्रपूता
जयतु जयतु गीता विश्व शान्ति प्रसूता।

भावार्थ - श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निसृत, सर्व जगज्जननी, भक्ति एवं मुक्ति प्रदायिनी, जगत् में शांति स्थापित करनेवाली गीता की जय हो, जय हो।

२. मंगलं श्री कुरुक्षेत्र रणक्षोणी विहारिणे
पार्थसारथि रूपाय गीताचार्याय मंगलम् ॥

भावार्थ - कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में विहार करने वाले, अर्जुन के रथ के सारथी और गीताचार्य श्री कृष्ण भगवान का मंगल हो।

१. जय भगवद्गीते जय भगवद्गीते
हरि-हिय-कमल-विहारिणि सुन्दर सुपुनीते ॥ जय ॥

२. कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि कामासक्ति हरा।
तत्वज्ञान विकासिनि विद्या ब्रह्मपरा ॥ जय ॥

३. निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी।
शरण रहस्य प्रदायिनि सब विधि सुखकारी ॥ जय ॥

४. राग-द्वेष-विदारिणि कारिणी मोद सदा।
भव भय हारिणी तारिणि परमानन्दप्रदा ॥ जय ॥

५. आसुर-भाव विनाशिनि नाशिनि तम रजनी।
दैवी सद्गुण दायिनि हरि रसिका सजनी ॥ जय ॥

६. समता त्याग सिखावनि हरि मुख की वानी।
सकल शास्त्र की स्वामिनि श्रुतियों की रानी ॥ जय ॥

७. दयासुधा बरसावनि मातु, कृपा कीजै।
हरिपद प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ॥ जय ॥

गीता पारायण की विधि

गीता का पारायण शुरू करने के पूर्व निम्न लिखित श्लोकों का पठन कर प्रणाम करना चाहिए।

ॐ श्रीकृष्ण परब्रह्मणेनमः

१. ॐ शुक्लांबरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्व विघ्नोपशान्तये ॥

२. ॐ अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मैश्री गुरवेनमः ॥

३. ॐ कृष्णं कमल पत्राक्षं पुण्य श्रवण कीर्तनम्।
वासुदेवं जगद्योनिं नौमि नारायणं हरिम् ॥

४. ॐ व्यासाय विष्णु रूपाय व्यास रूपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्म निधये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

५. ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवी सरस्वतीं व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥

इस तरह वन्दना करने के बाद भगवान श्रीकृष्ण, श्री वेदव्यास एवं गीता ग्रन्थ की पूजा करनी चाहिए। फिर निम्न प्रकार पारायण का आरंभ करना चाहिए। पारायण के समय हृदय को भगवान के ध्यान में लीन करना चाहिए। पारायण शुरू करते समय अंगूठी पहननेवाली उँगली में कुश की पवित्री का धारण कर निम्न लिखित वाक्य उच्चारित कर पानी थाली में छोडना चाहिए।

ऊँ अस्य श्री भगवद्गीता शास्त्र महामन्त्रस्य श्री वेदव्यासो भगवान ऋषिः अनुष्टुपछन्दः श्रीकृष्ण परमात्मा देवता, अशोच्यानन्वशोचस्त्वमिति बीजं, सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रजेति शक्तिः, अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच इति कीलकम्, मच्चित्तः सर्व दुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसीति कवचम्। किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमित्यस्त्रम, अनादि

मध्यान्त मनन्तवीर्यमिति ध्यानम्, ज्ञान यज्ञेन भगवदाराधनार्थे श्रीकृष्ण परमात्म प्रीत्यर्थे गीता पारायणे जपे विनियोगः। (इसके बाद करन्यास एवं अंगन्यास करना चाहिए।)

करन्यास -

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः -इत्यगुष्ठांभ्यानमः
(इस मंत्र का पाठ कर दोनों हाथों के अंगूठों का स्पर्श दिखाने की उंगली अर्थात् तर्जनी से कराना चाहिए।)
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः - इति तर्जनीभ्यां नमः
(इस मंत्र का पाठ कर दोनों तर्जनियों का स्पर्श अंगूठों से कराना चाहिए)
अच्छेद्योय मदाह्यो यमक्लेद्यो शोष्य एव च - इति मध्यमाभ्यां नमः।
(इस मंत्र का पाठ कर दोनों अंगूठों का स्पर्श दोनों मध्य उंगलियों से करना चाहिए) नित्यः सर्वगतः स्थाणु रचलोऽयं सनातनः - इति अनामिकाभ्यां नमः। (इस मंत्र का पाठ कर दोनों अनामिकाओं को अंगूठे का स्पर्श करना चाहिए।)
पश्यमे पार्थ रूपाणि शतशोध सहस्रशः- इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
(इस मंत्र का पाठ कर दोनों अंगूठों का स्पर्श दोनों अंतिम छोटी उंगलियों से करना चाहिए।)
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च - इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः
(इस मंत्र का पाठ कर बायें के नीचे दायाँ और दायें के नीचे बायें हाथ रखना चाहिए।)
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः - इति शिरसे स्वाहा।
(इस मंत्र का पाठ कर सिर का स्पर्श करना चाहिए।)
अच्छेद्योयमदाह्यो यम क्लेद्यो शोष्य एव च - इति शिखायैवषट्।
(इस मंत्र का पाठ कर शिखा का स्पर्श करना चाहिए।)

नित्य:सर्वगत: स्थाणु रचलोयं सनातन: - इति कवचायहु
(इस मंत्र का पाठ कर दायें हाथ से बायीं भुजा, बायें हाथ से दा... । का स्पर्श करना चाहिए।)
पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोथ सहस्रश: - इति नेत्रत्रयायवौ
(इस मंत्र का पाठ कर दायें हाथ से नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए।
नानाविधानि दिव्यानि नाना वर्णाकृतीनि च - इत्यस्त्रायफ
(इस मंत्र का पाठ कर दायें हाथ को सिर की चारों तरफ घुमा क... एवं मध्य उंगलियों से बायें हाथ पर ताली बजानी चाहिए।)

इसके बाद ध्यान में लीन होना चाहिए - ध्यान -

(महाभारत का ध्यान)

"पाराशर्य वच: सरोज ममलं गीतार्थ गन्धोत्कटं नानाख्यानक के... कथा सम्बोधना बोधितम् लोके सज्जन षटपदै रहरह: वेपीयमानं मु... भारत पङ्कजं कलिमल प्रध्वंसि न: श्रेयसे ॥" श्रीवेदव्यास के वाक् रूप... र में उत्पन्न, अतिनिर्मल, गीतार्थरूपी महा सुगंध से भरे नानाविध के... युक्त, भगवान के कथोपदेशों से विकसित, लोक में सज्जन रूपी भ्रम... द्वारा निरंतर संतोष के साथ आस्वादित, कलि संबंधी दोषों का पूर्ण रू... हनन करनेवाला महाभारत रूपी पद्म हमारा मंगल करे।

श्रीकृष्ण का ध्यान -

ऊँ प्रपन्न पारिजाताय तोत्रवेत्रैक पाणये।
ज्ञान मुद्राय कृष्णाय गीतामृत दुहे नम: ॥

शरणागत भक्तों को कल्पवृक्ष की भांति इच्छित वस्तुएं ...वाले, एक हाथ में कोडा और एक हाथ में ज्ञान मुद्रा का धारण करनेवा... गीता रूपी अमृत को दुहनेवाले भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम।

वसुदेव सुतं देवं कंस चाणूर मर्दनम्।
देंवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥

वसुदेव के पुत्र, दिव्य रूपधारी, कंस और चाणूर का संहार करनेवाले, देवकी को परमानंद पहुँचानेवाले, जगद्गुरु श्रीकृष्ण को प्रणाम करता हूँ।

भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला गान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी कर्णेन वेलाकुला -
अश्वत्थाम विकर्ण घोरमकरा दुर्योधनावर्तनी
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी कैवर्तकः केशवः ॥

भीष्म और द्रोण रूपी किनारों वाली, जयद्रथ रूपी जल से भरी, कौरव रूपी नीलोत्पलों से युक्त, शल्य रूपी भयंकर मछलीवाली, कृपाचार्य रूपी तेज धारवाली, कर्ण रूपी तरंगों से विलसित, अश्वत्थामा तथा विकर्ण रूपी भयंकर मगरों से भरी, दुर्योधन रूपी बवंडरवाली युद्ध रूपी महानदी को पांडव श्रीकृष्ष रूपी नाविक की सहायता से पार कर सके।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥

जिनकी कृपा से मूक मनुष्य वाचाल बन सकता है, लंगडा आदमी पर्वत लांघ सकता है, उन परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण को प्रणाम।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यै स्तवैः
वेदैः सांग पद क्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरा सुरगणा देवाय तस्मैनमः ॥

ब्रह्मदेव, वरुण, इन्द्र, रुद्र, वायु आदि देवता जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेदी अंग, पद, क्रम एवं उपनिषद् वेदों से जिनका गान करते हैं, योगी ध्यान निष्ठ होकर एकाग्र चित्त से जिनके दर्शन करते हैं, जिनका आदि और अंत देवता या दानव भी नहीं जान सकते उस परमात्मा को प्रणाम।

श्री व्यास का ध्यान -

ॐ नमोस्तु ते व्यास विशाल बुद्धे
फुल्लार विन्दायतपत्र नेत्र
येन त्वया भारत तैलपूर्ण:
प्रज्वालितो ज्ञानमय: प्रदीप: ॥

विशाल बुद्धिवाले, विकसित कमलपत्र जैसे नेत्रवाले, महाभारत रूपी तेल से परिपूर्ण गीता ज्ञान की ज्योति जलानेवाले श्री भगवान व्यास को प्रणाम।

श्री गीता का ध्यान-

पार्थाय प्रति बोधितां भगवता नारायणेन स्वयम्
व्यासेन ग्रथितां पुराण मुनिना मध्ये महाभारतम्।
अद्वैतामृत वर्षिणीम् भगवती मष्टादशाध्यायिनी
मम्बत्वा मनुसंदधामि भगवद्गीते भव द्वेषिणीम् ॥

स्वयं भगवान नारायण के द्वारा अर्जुन को बोधित, महर्षि वेदव्यास के द्वारा महाभारत के मध्य ग्रथित, अद्वैतमतरूपी अमृत की वर्षा करने वाले अठारह अध्यायों से विलसित, भवबंधनों से मुक्ति दिलानेवाली हे माँ भगवद्गीते! मैं तेरा ध्यान करता हूँ।

गीता कल्पतरुं भजे भगवता कृष्णेन संरोपितम्
वेदव्यास विवर्धितं श्रुति शिरोबीजं प्रबोधाङ्कुरम्
नानाशास्त्र रहस्यशाखमरति क्षान्ति प्रवालाङ्कितम्
कृष्णाङ्घ्रिद्वय भक्ति पुष्प सुरभिं मोक्षप्रदं ज्ञानिनाम् ॥

भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा संस्थापित, श्रीवेदव्यास मुनीन्द्र के द्वारा संवर्धित, उपनिषद्रूपी बीजों से विलसित, प्रबोध रूपी अंकुरों से सज्जित, सकल शास्त्र रूपी शाखाओं से आवृत, अनासक्ति एवं क्षमा नामक पल्लवों से युक्त, भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों के प्रति भक्ति रूपी सुगंध से शोभित,

ज्ञानियों को मोक्ष प्रदान करनेवाले गीता रूपी कल्पवृक्ष को मैं भजता हूँ।

संसार सागरं घोरं तर्तुमिच्छति यो नरः
गीतानावं समासाद्य पारं याति सुखेन सः ॥

जो मनुष्य भयंकर भवसागर को पार करना चाहता है वह भगवद्गीता रूपी नाव प्राप्त करे तो आसानी से उसे पार कर सकता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधी र्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

सब उपनिषद् गायें हैं। गोपालनन्द ने भगवान श्रीकृष्ण दूध दुहनेवाले हैं। अर्जुन बछडा हैं। महत्वपूर्ण गीतामृत ही दूध है। सद्बुद्धिवाले ही उसे पीते हैं।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण, श्री वेदव्यास, श्री गीतामाता एवं श्री महाभारत का ध्यान कर गीता पारायण का आरंभ करना चाहिए। हर दिन एक अध्याय का पारायण करना चाहिए। पारायण के बाद गीता माहात्म्य का पठन करना चाहिए। वराह पुराणांतर्गत गीतामाहात्म्य बहुत प्रचलित है। महान् है।

गीता माहात्म्य

१. धरोवाच -

भगवन् परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी
प्रारब्धं भुज्यमानस्य कथं भवति हे प्रभो।

भूदेवी - भगवान! परमेश्वर! प्रभू! प्रारब्ध भोगनेवाले को अचंचल भक्ति कैसे प्राप्त होगी।

२. विष्णुरुवाच -

प्रारब्धं भुज्यमानोपि गीताभ्यासरतः सदा।
स मुक्तः स सुखी लोक कर्मणा नोपलिप्यते।

श्री महाविष्णु - भूदेवी ! प्रारब्ध भोगनेवाला भी निरंतर गीता का

अभ्यास करे तो मुक्ति पाकर सुखी बनता है। कर्मों से बद्ध नहीं होता।

३. महापापादि पापानि गीताध्यानं करोति चेत्।
क्वचित् स्पर्शं न कुर्वंति नलिनीदल मंभसा ॥

जिस तरह जल कमल के पत्ते पर नहीं टिकता उसी तरह गीता पारायण करनेवाले के पास महा पाप भी नहीं आते।

४. गीतायाः पुस्तकं यत्र यत्र पाठः प्रवर्तते।
तथ सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि तत्र वैः ॥

जहाँ गीता ग्रन्थ रहता है, जहाँ गीता का पठन होता है वहाँ प्रयाग की भांति सभी तीर्थ विद्यमान रहते हैं।

५. सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पन्नगाश्च ये
गोपाल गोपिकावापि नारदोद्धव पार्षदैः
सहायो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्तते।

जहाँ गीता का पारायण होता है वहाँ सब देवता, ऋषि, योगी, नाग, गोपाल, गोपिकाएँ, विष्णु भक्त नारद और उद्धव आदि सभी आकर सहयोग देते हैं।

६. यत्र गीता विचारश्च पठनं पाठनं श्रुतम्।
तत्राहं निश्चितं पृथ्वी निवसामि सदैव हि।

हे भू देवी ! जहाँ गीता संबंधी चर्चा, गीता पाठ, बोध और श्रवण होते हैं वहाँ मैं सदा रहता हूँ।

७. गीताश्रयोहं तिष्ठामि गीता में चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञान मुपाश्रित्य त्रीन्लोकान्पालयाम्यहम् ॥

मैं गीता के आश्रित हूँ। गीता ही मेरा उत्तम निवासगृह है। गीताज्ञान का आश्रय लेकर ही तीनों लोकों का मैं पालन करता हूँ।

८. गीता मे परमाविद्या ब्रह्म रूपा न संशयः।
अर्धमात्राक्षरा नित्या स्वनिर्वाच्य पदात्मिका ॥

गीता मेरी परम विद्या है। वह ब्रह्म रूप है। इसमें संदेह नहीं। वह अर्धमात्रा स्वरूप है। (प्रणव का चौथा पाद)। वह नाशरहित है। नित्य है। अनिर्बच्चनीय है।

९. चिदानन्देन कृष्णेन प्रोक्ता स्वमुखतोर्जुनम्।
वेदत्रयी परानन्दा तत्वार्थज्ञान मंजसा ॥

चिदानन्द स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। यह गीता तीन वेदों का सार है। परमानन्द स्वरूप है। जो इसके आश्रय में आते हैं। उन्हें यह जल्दी तत्वज्ञान प्रदान करता है।

१०. योष्टादश जपेन्नित्यं सरो निश्चल मानसः।
ज्ञानसिद्धिं स लभते ततो याति परं पदम् ॥

निर्मल मन से जो नित्य गीता के अठारह अध्यायों का पारायण करता है वह ज्ञान की सिद्धि पाकर उसके द्वारा परमपद भी पाता।

११. पाठेऽसमर्थ संपूर्णे तदर्थं पाठमाचरेत्।
तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥

जो गीता का पूरा पाठ नहीं कर सकते वे आधा भी पढें तो गोदान से प्राप्त होनेवाला पुण्य फल उन्हें अवश्य मिलेगा।

१२. त्रिभागं पठमानन्तु गंगास्नान फलं लभेत्।
षडंशं जपमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥

गीता का तिहाई भाग का छः अध्यायों का जो पाठ करते हैं उन्हें गंगा स्नान का पुण्यफल मिलेगा। जो छठे भाग का, तीन अध्यायों का पाठ करते हैं उन्हें सोमयाग का पुण्यफल मिलेगा।

१३. एकाध्यायं तु यो नित्यं पठते भक्ति संयुतः।
रुद्रलोक मवाप्नोति गणोभूत्वा वसेच्चिरम् ॥

जो भक्ति से नित्य एक अध्याय का पाठ करेगा वह रुद्रलोक पहुँच कर वहाँ प्रमथगण का वह भी हिस्सा बन कर चिरकाल तक निवास करेगा।

१४. अध्याय श्लोक पादं वा नित्यं यः पठते नरः ।
स याति नरतां यावन्मनुकालं वसुन्धरे ॥

हे भूदेवी ! एक अध्याय का चौथा भाग ही सही जो नित्य पढेगा वह एक मन्वंतर काल मानवजन्म पाता है ।

१५. गीतायाः श्लोक दशकं सप्तपंच चतुष्टयं ।
द्वौत्री नेकं तदर्थं वा श्लोकानां यः पठेन्नरः ॥

१६. चन्द्रलोक मवाप्नोति वर्षाणा मयुतं धृवम् ।
गीतापाठ समायुक्तो मृतो मानुषतां व्रजेत् ॥

जो व्यक्ति गीता के दस, सात, पाँच, चार, तीन, दो,एक श्लोक या कम से कम आधे श्लोक का ही सही पाठ करेगा वह दस हजार साल चन्द्रलोक में रहेगा । इसमें संदेह नहीं । गीता का पारायण करते हुए जो मर जाता है वह उत्तम मानव जन्म प्राप्त करता है ।

१७. गीताभ्यासं [illegible] त्वा लभते मुक्ति मुत्तमाम् ।
गीतेत्युच्चा [illegible] क्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ॥

जो मनुज गीता का अध्ययन पुनः पुनः करता है वह उत्तम परम पद पाता है । गीता का उच्चारण करते हुए जो प्राण त्याग देता है वह उत्तम गति पाता है ।

१८. गीतार्थ श्रवणासक्तो महापापायुतोपि वा ।
वैकुण्ठं समवाप्नोति विष्णुना सह मोदते ॥

जो गीतार्थ के श्रवण के प्रति आसक्ति रखता है वह चाहे जितना भी महापापी क्यों न हो, वैकुंठ जाकर वहाँ विष्णु के साथ रहकर आनन्द पाता है।

१९. गीतार्थं ध्यायते नित्यं कृत्वा कर्माणि भूरिशः ।
जीवन्मुक्तः सविज्ञेयो देहांते परमं पदम् ॥

नित्य अनेक कर्म करते हुए भी गीतार्थ का जो ध्यान करता है वह जीवन्मुक्त होकर मृत्यु के बाद मोक्ष पाता है ।

२०.	गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः ।
	निर्धूत कल्मषा लोके गीता याताः परं पदम् ॥

गीता शास्त्र का आश्रय लेकर इस लोक में जनक जैसे कितने ही राजर्षि पापों से मुक्त होकर परम पद प्राप्त कर चुके ।

२१.	गीतायाः पठनं कृत्वा माहात्म्यं नैव यः पठेत् ।
	वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम एवह्युदाहृतः ॥

गीता पाठ कर जो गीता माहात्म्य नहीं पढेगा उसका गीता पारायण व्यर्थ प्रयास मात्र होगा ।

२२.	एतन्माहात्म्य संयुक्तं गीताभ्यासं करोति यः ।
	सतत्फल मवाप्नोति दुर्लभां गति माप्नुयात् ॥

माहत्म्य के साथ जो गीता का पारायण करेगा उसे ऊपर उल्लिखित फल के साथ उत्तम गति प्राप्त होगी ।

२३.	सूत उवाच -
	माहात्म्य मेतद्गीताया मया प्रोक्तं सनातनम् ।
	गीतान्ते च पठेद्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत् ॥

सूत ने कहा -

हे शौनकादि महर्षियो! इस प्रकार सनातन गीता माहात्म्य को मैं ने तुम्हें बताया । गीता पारायण के बाद जो यह गीता माहात्म्य पढेगा वह ऊपर उल्लिखित फल प्राप्त करेगा ।

"इति श्री वराह पुराणे श्रीगीतामाहात्म्यं संपूर्णम्" । इस प्रकार श्रीवराहपुराण का श्री गीता माहात्म्य समाप्त ।

गीता मकरंद

ॐ

आमुख

विश्व वाङ्मय में गीता जैसा महत्वपूर्ण ग्रन्थ दूसरा कोई नहीं है। ज्यादातविश्व साहित्य मनुष्य के द्वारा सृजित है। लेकिन गीता भगवान के द्वारा सृजि है। मायांतर्गत मनुज के द्वारा सृजित पदार्थ कहाँ और मायातीत भगवान द्वारा सृजित पदार्थ कहाँ ! गीता का बोध करनेवाले स्वयं अवतार पुरुष हैं, वण करनेवाले भी सत्ता के मूर्तरूप हैं। बोधक हैं स्वयं ईश्वर और सुननेवालोहापुरुष हैं। (पार्थश्य च महात्मनः गीता- १८-१४) सुनानेवाले पुरुषोत्तम तो सुननेवाले नरोत्तम। (नरंचैव नरोत्तमम् भारत) इस प्रकार उत्तम श्रेणी गुरु और शिष्य के सम्मेलन से आविर्भूत अमरवाणी ही गीता है। नर और नायण के तप का फल गीता है। श्रीकृष्ण एवं अर्जुन के दिव्य संसर्ग से जनित संाषण का संपुट ही गीता है। उन दोनों के अलौकिक संवादों को जगद्विख्यातचनाकार श्री वेदव्यास मुनीन्द्र ने छन्दो बद्ध कर बडी कृपा करके संसारको समर्पित किया। इस तरह तीन महान् तपस्वियों की कृपा से गीता ग्रन्थ कधरती पर आविर्भाव हुआ जो आज भी मानव लोक का कल्याण कर रहा है। वंतव में प्राणि लोक के पुण्य के प्रभाव से गीता जैसे महान् ग्रन्थों का सृजन होतहै। गीता की अनुपम प्रतिभा, अखंड शक्ति सामर्थ्य एवं अपार महिमा पर ध्या दें तो हर किसी के हृदय में उसके प्रति पूज्य एवं भक्ति व श्रद्धा के भाव उन्न होते हैं। इसलिए ऐसे परम पावन, लोकोत्तर दिव्य वाङ्मय के विवरण, स्वरूप स्वभाव एवं उसकी महिमा की विशेषताओं पर विचार करना हमारा कव्य है।

दो गान

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने जीवनकाल में दो गान गाये। एक मुरली गान और दूसरा है गीता गान। मुरली गान के माधुर्य का आस्वादन गोपिकाओं ने किया। संबंधित दूसरे लोग भी श्री कृष्ण के मुरली गान के अमृत का थोडा सा पान कर धन्य हुए। हमें पता नहीं कि उनका मुरली गान कैसा है? उसे सुनने का सौभाग्य हमें प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु उससे भी श्रेष्ठ गान हमें प्राप्त हुआ। वह है गीता गान। गानेवाले में और गान में अंतर नहीं है। श्रीकृष्ण एवं गीता में अंतर नहीं है। दोनों में अविनाभाव संबंध है। भगवान श्रीकृष्ण की सांस गीता है। उनका हृदय गीता है। भगवान के मुखारविन्द से निकले गीता गान की धारा में स्नान करनेवालों के पाप धुल जाते हैं। मुक्ति सुलभ होती है। अतः भगवान श्रीकृष्ण के इस दूसरे गान रूपी गीता का श्रवण करने से बढ कर दूसरा पुण्य कार्य और कुछ नहीं। भूत भविष्य तथा वर्तमान काल की जीवराशि का यह अहोभाग्य है कि उसे गीता शास्त्र प्राप्त हुआ।

लोकोपयोगी अद्भुत लीला

श्रीकृष्ण ने अपने जीवन काल में अनगिनत अद्भुत एवं आश्चर्यजनक लीलाएँ कीं। उनको हमने नहीं देखा। अनुभव भी नहीं किया। उस काल के लोगों को ही वे लीलाएँ उपयोग में आयीं। परन्तु यशोदानंदन की गीता से हम सब को लाभ हुआ। भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा प्रबोधित गीतात्मक रूपी महान् लीला किसी एक काल, एक देश, एक धर्म एवं एक जाति तक सीमित नहीं है। वह सार्वजनीन, सार्वकालीन सार्वभौमिक सत्य शिव सुन्दर भगवान की वाणी है। इसीलिए श्रीकृष्ण से संबंधित प्रार्थना में निम्न प्रकार कहा गया है -

सारथ्यमर्जुन स्यादौ कुर्वन् गीतामृतं ददौ।
लोकत्रयोपकाराय तस्मै कृष्णात्मने नमः॥

जिस महानुभाव ने पूर्वकाल में अर्जुन के सारथी बन कर व्यवहार करते हुए तीनों लोकों के लोगों के उपयोगार्थ गीतामृत प्रदान किया उस भगवान श्रीकृष्ण को प्रणाम हैं।

सभी शास्त्रों का सार

अब हम गीता माहात्म्य के बारे में और भी गहराई तक जाकर विचार करेंगे। हिन्दूधर्म शास्त्र व्यापक है। इस में कितने ही शास्त्र, कितने ही ग्रन्थ और कितने ही सिद्धांत हैं। इन सब को देख कर मनुष्य चकित होकर पूछता है कि इसमें कौन सा शास्त्र ग्राह्य है और कौन सा शास्त्र त्याज्य है ? क्या इन शास्त्रों के पारावार का मंथन कर निकाला गया सारभूत ग्रन्थ कोई है? सभी शास्त्रों एवं सिद्धांतों के समन्वित स्वरूप ग्रन्थ कोई क्या हिन्दू धर्म साहित्य में मिलता है? हिन्दू धर्म ही नहीं, बल्कि सभी मतों और संप्रदायों के तत्वों से परिपोषित और उन सब का प्रतिनिधित्व कर सकनेवाला एक मात्र प्रामाणिक ग्रन्थ क्या कोई है ? इन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर है, हाँ है। ऐसा प्रामाणिक ग्रन्थ भगवद्गीता है। क्योंकि हिन्दू धर्म के ही नहीं बल्कि सभी अन्य धर्मों के भी प्रधानसूत्र इसमें संगृहीत हैं। विभिन्न मतों एवं सिद्धांतों की शाखा और उपशाखाओं से विलसित धर्मवृक्ष ही गीता है। सभी धर्मों का समन्वय ही गीता है। सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदांत और शाक्त, गाणापत्य, वैष्णव आदि मतों का सुन्दर समन्वय गीता में दिखायी देता है। संसार में व्याप्त सभी धर्मों के तत्वों के दर्शन गीता में होते है। इसलिए सभी विद्वानों ने मुक्तकंठ से कहा है कि गीता विश्व भर का धर्म ग्रंथ है (Universal scripture, universal Gospel, Bible of Humanity) वल्लभाचार्यजी से किसी ने पूछा कि सब शास्त्रों में कौन सा शास्त्र महान् है ? उन्होंने झट जवाब दिया - "एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतं"। अर्थात् देवकी पुत्र श्रीकृष्ण का गाया गीता शास्त्र ही सब से महान् है। इसी तरह किसी ने श्रीशंकराचार्य जी से पूछा कि कौन सा गाना सब से श्रेष्ठ है ? उन्होंने उत्तर दिया कि "गेयं गीतानाम सहस्रं"। अर्थात् गीता एवं विष्णु सहस्र नाम का गान करना चाहिए। बडे मेधावी, सर्व शास्त्र विशारद एवं आध्यात्म विद्या के धनी दो आचार्यों ने ऐसा क्यों कहा ? गीता में ऐसी महान् शक्ति निहित है। इसीलिए उन्होंने ऐसा कहा है। स्कांदपुराण में कहा गया है "सर्वशास्त्रमयी गीता"। महाभारत में कहा

गया है "गीता संगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः" (गीता का अधिक गान करना चाहिए। दूसरे शास्त्रों से क्या प्रयोजन!) द्वापर युग के अंतिम समय में करीब पांच हजार वर्ष पहले रणक्षेत्र में गीता का गान किया गया। तब से लेकर आज तक गीता नदी की धारा की तरह नित्य नूतन बनी हुयी है। गीता के गंभीर भावों की महत्ता, सर्व धर्म समन्वय की गुणवत्ता और अगाध ज्ञान की सत्ता पर ध्यान दें तो स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह मानव का सृजन नहीं है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक ऐसा लोकोत्तर सर्व जनोपयोगी कोई दूसरा ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ। यही वजह है कि हर कोई पुण्यात्मा गीता का पाठ करके अपनी भावानाओं के अनुरूप उसकी व्याख्या लिखते रहे। इससे स्पष्ट है कि भारत के धार्मिक जीवन पर गीता का कितना बडा प्रभाव पडा है।

विविध गीताएँ - उनमें भगवद्गीता का स्थान

संसार में कई गीताएँ हैं, जैसे अष्टावक्र गीता, अवधूतगीता, ऋभुगीता, ब्रह्मगीता, वसिष्ठगीता, गणेशगीता, हनुमद्गीता, पराशरगीता, हरीतगीता, शिवगीता, हंस गीता, भिक्षु गीता, कपिल गीता, एवं देवीगीता आदि। फिर भी भगवद्गीता ही गीता के नाम से प्रख्यात है। रूढ है। गीता की सुलभ शैली, विषय की गंभीरता, समन्वय का दृष्टिकोण, सभी के लिए आचरणयोग्य हैं। अनुष्ठान की उसकी पद्धतियाँ उसकी लोकप्रियता के कारण हैं। भगवद्गीता शीर्षक में ही एक प्रकार का विशाल भाव निहित है। क्यों कि श्रीकृष्ण के द्वारा प्रबोधित गीता का नाम वास्तव में होना चाहिए कृष्ण गीता। मगर उस नाम से प्रचलित न होकर यह ग्रन्थ भगवद्गीता के नाम से लोकप्रिय हुआ। इससे इस ग्रंथ की व्यापकता एवं श्रेष्ठता का परिचय मिलता है।

इसीलिए मैक्स मूलर, कार्लायिल, एमर्सन, एड्विन आर्नाल्ड तथा अनीबीसेंट आदि अनेक पश्चिमी विद्वानों ने गीता का पठन कर अपने जीवन का मार्ग बदल लिया। गीता का प्रचार किया। एड्विन आर्नाल्ड नामक

महानुभाव ने दिव्य गीता (The song celestial) के नाम से गीता के अठारह अध्यायों का अंग्रेज़ी में पद्यानुवाद किया। अंग्रेजी भाषा में वह काफी प्रख्यात हुआ। गीता की महत्ता के बारे में आर्नाल्ड के वचन बडे ही महत्व के हैं। उन्होंने कहा कि भारत का यह लोकप्रिय छन्दोबद्ध दार्शनिक ग्रंथ अगर अंग्रेजी में प्रकाशित नहीं होता तो अंग्रेजी का साहित्य अधूरा रह जाता। अंग्रेजी के अलावा संसार की सभी भाषाओं में गीता का प्रकाशन आवश्यक है। आज भी विश्व के कई लोग गीता का पाठ किसी न किसी प्रकार करके अपना जीवन धन्य बना रहे हैं।

गीता का मातृहृदय

वास्तव में गीता एक ग्रंथ नहीं है। वह तो चेतनता का प्रतीक है। श्रीकृष्ण जब इहलोक लीला समाप्त कर चलने को उद्यत हुए तब वे हमें चेतना के प्रतीक गीता शास्त्र दे गये।

भुवं विहाय कृष्णस्त्वां दर्शयित्वा दिवंगतः।
त्वमेव साक्षात् श्रीकृष्णः हे गीते शरणं मम ॥

गीता शास्त्र हम सबको ज्ञान प्रदान करते हुए सांसारिक दुःख दूर कर माँ की तरह हमें सांत्वना प्रदान कर रहा है। महात्मा गान्धीजी के निम्न लिखित वाक्य इस दिशा में उल्लेखनीय हैं।

"I lost my earthly mother who gave me Birth Long ago but this eternal mother (Gita) has completely filled her place by my side ever since. When I am in difficulty distress. I seek refuge in her bosom.

"मेरी माँ कई वर्षों पहले चल बसी। लेकिन गीतारूपी माँ ने वह स्थान लेकर तब से मेरे साथ रह कर मेरी रक्षा कर रही है। कष्टों के समय मैं उसकी गोद में सिर छिपाता हूँ।"

महात्मा गान्धीजी की ही तरह कितने ही व्यक्ति गीतामाता के आश्रित होकर अपने कष्टों से छुटकारा पाते रहे हैं। गीता का मातृहृदय है। पुत्रवात्सल्य

से भरे हृदय से वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के अलावा शूद्र एवं चांडालों को भी मुक्ति मार्ग दिखाती है। पुरुषों के अलावा स्त्रियों तथा पशु पक्षी वगैरह समस्त चराचर जगत् को भी आश्रय देकर सब की रक्षा कर रही है। गीता ढिंढोरा पीट कर घोषित करती है कि मोक्षाधिकार की प्राप्ति में जाति, धर्म, कुल, लिंग एवं उम्र संबंधी अन्तर नहीं है। सभी मोक्षप्राप्ति के समान हकदार हैं।

गीता की अनुपम सामर्थ्य

गीता शास्त्र कल्पवृक्ष जैसा है। मगर स्वर्ग के कल्पवृक्ष की तरह क्षणिक सुख पहुँचानेवाला वह नहीं है। संकल्प रहित मोक्ष प्रदान करता है। वह कामधेनु जैसा है। मगर सुरलोक की कामधेनु की तरह वह नश्वर भोग भाग्य देनेवाला नहीं है। काम रहित निष्कलंक निर्वाण का पद वह प्राप्त कराता है। गीता शास्त्र चिंतामणी जैसा है। मगर त्रिविष्टप की चिंतामणी की तरह वह पांचभौतिक संपत्ति बढानेवाला नहीं है। चिंताओं से मुक्ति दिला कर निश्चिंत निरपेक्ष निरामय परंधाम तक जीवों को पहुँचाता है। गीता शास्त्र अमृत जैसा है। मगर देवताओं के पान के योग्य जड पदार्थ जैसा द्रावक नहीं है। वह जनन मरण रहित शाश्वत ब्रह्म लोक प्राप्त करानेवाला ज्ञानामृत है। गीताशास्त्र प्राणियों को विश्वास दिलाता है कि तू नाश रहित आत्मा है न कि नाशवान शरीर। निष्काम कर्तव्य के पालन का बोध कराता है। वह भवसागर को आसानी से पार करानेवाला जहाज है। जीवनरथ अवरोधों से नष्ट कर गम्य स्थल तक पहुँचानेवाला कुशल सारथी है। ज्ञानरूपी गर्जन से माया मोह रूपी निद्रा से लोगों को जगानेवाली बिजली है। उपनिषद्रूपी गायों के थनों से श्रीकृष्ण रूपी गोपाल ने क्षीर दुह कर जगत् को प्रदान किया तो महर्षि व्यास ने भारत नामक बरतन में सुरक्षित रूप से उसे जमा किया। सचमुच यह गौओं का क्षीर नहीं अपितु अमृत की धारा है।

वासनाओं को शांत कर, व्यावहारिक एवं पारमार्थिक सही मार्ग व उद्दीप्त करनेवाली दिव्यवाणी है। नास्तिकों एवं पाखंडियों के द्वारा फैलाये ज रहे भ्रमजाल का विच्छेद कर लोगों को सत्य के गगन में विहार करानेवाला वाई जहाज है। बाहरी वेषों से मुक्त कर सही मार्ग दिखानेवाला पथ प्रदर्शक है। दूर से सुंदर दीखनेवाली मिथ्यापरक चीजों के भ्रम एवं अविद्या का पर्दाफाश कर मोक्षद्वार की चाबियाँ जिज्ञासुओं के हाथों में रख देनेवाली अनुपम ब्रह्म विद्या है।

गीता की अपार शक्ति का कारण

हम विचार करें कि गीता में इतनी अपार शक्ति का प्रादुर्भाव कैसे हुआ ? श्रीशुकजी महाराज परीक्षित को मोक्ष मार्ग का उपदेश देने के लिए जब उद्यत हुए तब उन्हें सात दिनों की अवधि मिली। इसलिए उन्होंने आराम से कई कथाओं, इतिहासों तथा वर्णनों का उल्लेख किया। लेकिन गीता के समय की स्थिति अलग रही। अर्जुन को ज्ञानोपदेश देने के लिए श्रीकृष्ण को कुछ मिनिटों का ही समय मिला। युद्ध का समय था। रणक्षेत्र में युद्ध करने के लिए दोनों पक्षों के शूर वीर सन्नद्ध होकर खडे थे। शंख बज उठे। युद्ध की भेरियों की आवाज गूँज उठी। अब तीरों की वर्षा होनेवाली थी। ऐसे समय में अर्जुन का हृदय मोहग्रस्त हो गया। उनके मोह को दूर करने की बहुत बडी जिम्मेदारी श्रीकृष्ण पर आ गयी। अर्जुन बैठे हुए थे। उनके खडे होने के पूर्व ही उन्हें ज्ञानोपदेश देना पडा। श्रीकृष्ण स्वयं सर्वशक्तिमान प्रभु थे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति और सूझ बूझ से काम लेकर गीतोपदेश का महान् कार्य शुरू किया। वेद वेदांत का सार निचोड कर पल भर में अर्जुन को उससे परिचित करा दिया। सारे शास्त्रों के सिद्धांतों और उनके अनुष्ठान की पद्धतियों का विवरण दिया। इससे उनके आशय की पूर्ति हुयी। जिस अर्जुन के मुँह से क्षण भर पहले निकला था कि "नयोत्स्य इति गोविन्द" हे कृष्ण, मैं युद्ध नहीं करूँगा, उसी के मुँह से क्षण भर बाद अपने उपदेशों के प्रभाव से कहलवा

दिया कि "करिष्ये वचनं तप" हे कृष्ण, आपके कहे अनुसार (युद्ध) करूँ। फिर अर्जुन के मुँह से यह भी कहलवा दिया कि "नष्टो मोहः", मेरा अज्ञ नष्ट हुआ। इसके मूल में भगवान श्रीकृष्ण की लोकोत्तर प्रतिभा ही थी। त चित्त की एकाग्रता वाली समाधि की निष्ठा से जनित अखंड ज्ञानोपदेश : इसका मूल कारण था। जब साधारण मनुष्य एकाग्रचित्त होता है तब सांसारिक साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में वह साहसिक अद्भुत कार्य कर सकता है। ऐसी स्थिति में सर्वज्ञ भगवान के बारे में कहने की आवश्यकता ही क्या है ? यही वजह है कि भगवान श्रीकृष्ण की भाव समाधि से आविर्भूत भगवद्गीता अपार महिमा से मंडित हुयी।

इसी सत्य का महाभारत के अश्वमेध पर्व की निम्न लिखित घटना अच्छी तरह समर्थन करती है। भारतयुद्ध समाप्त हुआ। युधिष्ठिर अच्छी तरह राज करने लगे। सभी लोग सुखी थे। भोग भाग्य से विलसित थे। भगवान श्रीकृष्ण द्वारका जाने की तैयारी करने लगे। तब एक दिन अर्जुन श्रीकृष्ण के पास पहुँचे और बोले -महात्मन् ! युद्ध क्षेत्र में मुझ पर कृपा करके आपने जो ज्ञानोपदेश दिया (भगवद्गीता) उसे कई कारणों से अब मैं भूल गया हूँ। उसे फिर से सुनने की इच्छा है। उसे फिर से सुना कर मुझे कृतार्थ कीजिए। तब श्रीकृष्ण ने जवाब दिया कि हे अर्जुन! अत्यंत गोपनीय ज्ञान का रहस्य उस समय (युद्ध क्षेत्र में) मैं ने तुम्हें बताया। लेकिन अश्रद्धा के कारण तुम उसे भूल गये हो। यह मुझे अप्रिय लगरहा है। उसे अब फिर बताना मेरे लिए संभव नहीं। तब योगयुक्त (तीव्र एकाग्रचित्त) होकर मैं ने तुम्हें बताया था। (उस स्थिति की प्राप्ति अब संभव नहीं है) ब्रह्म साक्षात्कार के लिए उस समय का वह प्रबोध काफी है।

१. अबुद्ध्या ना ग्रहीर्य स्त्वं तन्मेनु महद प्रियम्।
न च साद्य पुनर्भूयः स्मृतिर्मे संभविष्यति।
(भारत-अश्वमेध पर्व) (१६-११)

२. नूननु श्रद्ध धानोसि दुर्मेधा ह्यसि पाण्डव।
न च शक्यं पुनर्वक्तुमशेषेन धनञ्जय॥ (१६-११)

३. न हि धर्मऽनुपर्याप्तो ब्राह्मणः परवेदने।
न शक्यं तन्मया भूय स्तथावक्तुमशेषतः॥ (१६-१२)

४. परं हि ब्रह्म कथितं योगं युक्तेन तन्मया॥ (१६-१३)

भगवान के इस वचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि गीतोपदेश के वक्त भगवान श्रीकृष्ण का चित्त कितना एकाग्र था। उनकी योगनिष्ठा कैसी महान् थी। जब मन प्रबुद्ध था तब श्रीकृष्ण ने गीता का प्रबोध किया। इस प्रकार गीता योगेश्वर की योगनिष्ठा से संजनित थी इसीलिए उसमें इतनी अखंड शक्ति आ गयी।

गीतायज्ञ

कुरुक्षेत्र के संग्राम में एक विचित्र यज्ञ संपन्न हुआ। उस यज्ञ का होमकुंड अर्जुन का मुख था। होमद्रव्य गीतोपदेश था। होता श्रीकृष्ण थे, फल कैवल्य था।

भारतमृत सर्वस्व गीताया मथितस्य च।
सार मृद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम्॥
(भारत-भीष्म पर्व) (४३-५)

भारतरूपी अमृतराशि गीता का भलीभांति मंथन कर श्रीकृष्ण ने उसका सार निकाल कर अर्जुन के मुख में डाल दिया। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानामृत रूपी होमद्रव्य निगल कर पार्थ कृतार्थ हुए। इसी तरह सभी जीव भगवान का यह दिव्य प्रसाद ग्रहण कर धन्य बनें, यही हमारी आशा एवं अभिलाषा है।

उपनिषदों का सार गीता

उपनिषद् वेदों के सार हैं। भगवद्गीता उपनिषदों का सार है। उपनिषदों के और दो नाम हैं, वेदांत शास्त्र एवं श्रुति सिर। वेदों का सारभूत साहित्य होने

के कारण इनका नाम वेदांत पडा और जिस प्रकार शरीर में सिर प्रधान है उसी प्रकार श्रुतियों के प्रधान भाग होने के कारण उनका नाम श्रुति सिर पडा। इस तरह आध्यात्मिक वाङ्मय में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान हो गया। हर मुमुक्षु का हृदय उपनिषदों का अध्ययन करने एवं वेदवृक्ष के उपनिषदरूपी फलों का स्वाद चखने और अपना जन्म सार्थक बनाने को लालायित रहता है। लेकिन उपनिषदों की भाषा एवं भाव सामान्य जनों के समझ में नहीं आते। यह एक जटिल समस्या बन गयी। भगवान ने खुद इस समस्या को सुलझाने का बीडा उठाया। उपनिषदूरूपी गाय को सामने खडा किया। अर्जुन को बछडा बनाया। फिर गोपालनन्दन ने ही खुद गाय का दूध रूपी ब्रह्मज्ञानामृत दुहकर अर्जुन के बहाने सभी मुमुक्षुओं में वितरित किया। वह दूध ही भगवद्गीता है।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् महत्॥

इस प्रकार जटिल एवं दुर्ग्राह्य उपनिषदों के ज्ञान भांडार को भगवद्गीता शीर्षक शास्त्र ग्रन्थ के द्वारा भगवान ने सामान्य लोगों के लिए सुलभ बना दिया। आमतौर पर लोग समझते हैं कि गीता का बोध अर्जुन को कराया गया। परन्तु वास्तव में अर्जुन निमित्त मात्र थे। वास्तव में विश्व के मानव जगत् को गीता का बोध कराया गया। बछडे को थोडा सा ही दूध मिला। बाकी दूध पूरा का पूरा विश्व के अन्य लोगों को मिला। सुधीर्भोक्ता, कहा गया। इसका मतलब है कि सभी बुद्धिमान उसका पान कर सुखी बन सकते हैं। 'गीतामृतं महत्' कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि यह स्वर्ग का लौकिक अमृत नहीं है। पारलौकिक सच्चिदानंद रसामृत है। अतः मानवजगत् का कर्तव्य है कि वह सुलभ शैली में गंभीर भावों से विलसित स्वयं भगवान के द्वारा प्रसादित उपनिषदों का सार भगवद्गीता का पाठ करें। भगवान के संदेशों को आचरण में ले आवें और भव सागर के दुःखों से मुक्ति पावें।

अनंत गीताज्ञान

गीता की महिमा अनंत है। भगवान जितना अनंत है उनकी वाणी भी उतनी ही अनंत है। 'कृष्णस्तु भगवान स्वयं' - कहा गया है। अत: गीताचार्य, जगद्गुरु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं अत: कृष्ण की वाणी भगवान की वाणी ही है। गीता पाठ करनेवालों को स्पष्ट विदित हो जाएगा कि वह दैव निर्मित पदार्थ है। कृष्ण गीता ही भगवद्गीता है। गीता के हर अक्षर तथा हर श्लोक में दैवत्व छलकता है। एक एक श्लोक में कितने ही नये अर्थ द्योतक होते हैं।

इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि गीता की श्लोकबिन्दु में ज्ञानसिंधु भरा पडा है। अपने संस्कार के अनुसार मनुष्य को गीता के श्लोकों में नये अर्थ सूझते रहते हैं।

"The suggestiveness of this wonderful book is really infinite"

एक महानुभाव ने लिखा है कि आश्चर्यजनक इस ग्रन्थ के विनूत्न भावों की स्फुरण शीलता वास्तव में अनंत है। कितंने ही टीकाकार कितनी ही टीकाएँ लिख चुके हैं। लिखते जा रहे हैं। फिर भी गीता का ज्ञान भांडार इतना अनंत है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। गीता पावन नदी का प्रवाह है। एक मनुष्य लोटे में भर कर नदी का जल ले जाता है। दूसरा बडे बरतन में जल भर कर ले जाता है। तीसरा पीपे में जल भर कर ले जाता है। चौथा टैंक में नदी का ज़ल भर कर ले जाता है। फिर भी नदी में जल कम नहीं होता। इसी प्रकार श्रीशङ्कराचार्य गीतारूपी गंगा का जल बहुत बडे वरतन में ले गये। इसी तरह श्रीरामनुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य तथा श्रीकंठ शिवाचार्य वगैरह जैसे महानुभाव अपनी अपनी शक्ति के अनुसार बुद्धिरूपी बरतनों में गीतार्थरूपी जल भर कर ले गये। आधुनिक युग में श्री बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गान्धी तथा अनीबिसेंट वगैरह ने भी गीताज्ञान रूपी अमृत का स्वाद लिया। सबने अपनी अपनी दृष्टि से गीतार्थ को प्रस्तुत किया। किसी ने द्वैत, किसी ने अद्वैत, किसी ने विशिष्टाद्वैत, किसी ने कर्म, किसी ने भक्ति, किसी ने योग और किसी ने

ज्ञान परक दृष्टि से गीता का अर्थ प्रस्तुत किया। फिर भी गीता का ज्ञान भंडार वैसा ही भरा पूरा है। यही गीता की बडी विशेषता है। ऐसी शक्ति दूसरे किसी भी ग्रन्थ की नहीं है। इसीलिए कहा गया कि गीता का अर्थ सही रूप से जाननेवाले विश्व भर में एक ही व्यक्ति हैं। वे हैं भगवान श्रीकृष्ण, कहा जाता है कि बाकी सब गीता का एक एक अंश ही ग्रहण कर सके।

कृष्णो जानाति वै सम्यक् किंचत्कुन्तीसुतः फलम्।
व्यासोवा व्यासपुत्रोवा याज्ञवल्क्योऽथ मैथिलः ॥

"गीतार्थ एवं गीता की महिमा को श्रीकृष्ण ही संपूर्ण रूप से जानते हैं। अर्जुन, व्यास, शुक, याज्ञवल्क्य तथा जनक वगैरह बाकी सब थोडा ही जानते हैं।"

यह एक रहस्य है। अमृत की एक बूंद पीवें, या लोटे भर, या कलश भर, उसका फल एक ही मिलेगा। गीतामृत का थोडा सा पान करें या ज्यादा उसका फल सभी को समान ही मिलेगा। अतः किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि श्रीशङ्कराचार्य जैसा गीता ज्ञान मेरा नहीं है। अपनी अपनी शक्ति एवं बुद्धि के अनुसार गीता के संदेशों में से किसी एक को भी अगर आचरण में ला सकें तो मन को शांति मिल जाएगी।

गीता महाभारत का सर्वस्व है

महाभारत के भीष्मपर्व के २५ वें अध्याय से लेकर ४२ वें अध्याय तक श्रीमद्भगवद्गीता है। भारत रूपी सागर में दीपस्तंभ की तरह गीता जगमगा रही है। गीता भारत रूपी दूध का मक्खन है। व्यासजीने अष्टादश पुराणों, नव व्याकरणों तथा चार वेदों का अच्छी तरह मंथन कर भारत की रचना की।

१. अष्टादश पुराणानि नवव्याकरणानि च।
निर्मिध्य चतुरो वेदान् मुनिना भारतं कृतम् ॥

२. भारतोदधि निर्मथ्य गीता निर्मथितस्य च।
सार मुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥

इसीलिए भारत पंचमवेद के नाम से प्रख्यात हुआ। ऐसे उत्कृष्ट महाकाव्य का सार ही भगवद्गीता है। आलंकारिक भाषा में कहा जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण ज्ञानामृत की जब वर्षा कर रहे थे तब व्यास मुनीन्द्र ने महाभारत रूपी कलश में उसे भर लिया। महाभारत इतना प्रख्यात् हो गया कि कहा गया कि यन्न भारते तन्न भारते अर्थात् जो भारत में नहीं है वह भारतवर्ष में नहीं है। ऐसे भारत के सार के रूप में विख्यात गीता की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम ही है। इसीलिए श्री शङ्कराचार्य ने अपने गीता भाष्य के आरंभ में कहा है - तदिदं गीताशास्त्रं समस्त वेदार्थसार संग्रह भूतम्' यह गीताशास्त्र समस्त वेद वेदांतों का सार संग्रह है। नहीं तो देश विदेशों के इतने महानुभाव उसके प्रति क्यों आकर्षित होते ? मकरंद न हो तो भ्रमर क्यों आते ? वास्तव में गीता में जो बताया गया वह अनंत है। अविनाशी है। देश और काल में परिवर्तन हो, मगर गीता ज्ञान में कभी परिवर्तन संभव नहीं। युग युगों तक वह अक्षुण्ण रहेगा। भगवान ने चौथे अध्याय में 'प्रोक्तवानहमव्ययम्' कहा है। अर्थात् मैं ने इस अव्ययी ब्रह्मविद्या और योगशास्त्र का पहले सूर्य को उपदेश दिया। यह अत्यंत गोपनीय विद्या है। इसीलिए गीताचार्य ने बार बार कहा है कि 'इदंतुते गुह्यतमं' इस अत्यंत गोपनीय शास्त्र को तुम्हें बता रहा हूँ। इसीलिए गीताशास्त्र एक व्यक्ति, एक देश, एक धर्म, एक कौम तथा एक काल के लिए सीमित नहीं रहा। सब लोगों, सब देशों, सब धर्मों, सब कौमों तथा सब कालों के लिए शिरोधार्य है। सभी धर्मों का सार गीता में प्रस्तुत हुआ है। इसलिए यह कहना गलत है कि गीता केवल हिन्दुओं का धर्म ग्रन्थ है। संत ज्ञानेश्वरने गीता के बारे में कहा कि गीता विवेकरूपी तरुओं वाला बाग है। सभी सुखों की बुनियाद है। पारमार्थिक सिद्धांत रूपी रत्नों की खान है। नवरस रूपी अमृत से भरा सागर है। खुला परंधाम है। सभी विद्याओं की मूल भूमि है। सर्वशास्त्रों का आश्रय है। सभी धर्मों की मातृभूमि है। सज्जनों का

प्यारा मित्र है। भावुकता के सुन्दर रत्नों का भँडार है। ज्ञानामृत से भरपूर गंगा है। विवेकरूपी क्षीर समुंदर की नवलक्ष्मी है।'' उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि गीता की महिमा कितनी अपरंपार है।

गीतोपनिषद्

गीता के बारे में और कुछ विशेषताओं पर विचार करेंगे। कहा जाता है कि ब्रह्म देव का आविर्भाव भगवान विष्णु के नाभि कमल से हुआ। फिर ब्रह्मदेव से वेदों का आविर्भाव हुआ। लेकिन भगवद्गीता स्वयं भगवान विष्णु के मुख कमल से प्रकट हुई। कहाँ मुख कमल और कहाँ नाभिकमल? इससे स्पष्ट है कि भगवद्गीता भगवान के प्रमुख स्थान को अपने वश में कर चुकी है। महाभारत के निम्न लिखित वाक्यों से यह बात स्पष्ट होती है -

गीता संगीताः कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्मा द्विमिसृता ॥

(भारत-भीष्मपर्व - ४ - ३१)

''गीता का ज्ञान खूब प्राप्त करना चाहिए। अन्य शास्त्रों से गीता शास्त्र श्रेष्ठ है। क्यों कि गीताशास्त्र स्वयं भगवान विष्णु के मुखकमल से निसृत हुआ'' इससे बढकर गीता की महिमा के बारे में और क्या कहा जाय? कुछ लोग गीता की बराबरी स्मृति से करते हैं। वल्लभाचार्य ने कहा कि ईश्वर की सांस स्मृति है। तो ईश्वर की वाणी अमोघ है। वह स्मृति कैसे हो सकती है? इसके अलावा भगवद्गीता के हर अध्याय के अंत में संकल्प रहता है -

''इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्म विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवादे . . . .''। इसमें उपनिषत्सु . . . (उपनिषदों में) कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि गीता वेदों के अंतिम उपनिषदों के अंतर्गत है। अतः इसे 'गीतोपनिषद्' कहना गलत नहीं है। इसमें भी कोई संदेह नहीं कि वेदों की तरह गीता भी अमरवाणी का मूर्त रूप है।

प्रस्थानत्रय - गीता

आध्यात्मिक वाङ्मय में मुमुक्षुओं के लिए प्रस्थानत्रय प्रमुख आलंबन है। प्रस्थानत्रय का परिचय न हो तो परमार्थतत्व अच्छी तरह समझ में नहीं आता। दशोपनिषद्, भगवद्गीता और ब्रह्मसूत्र, ये तीनों प्रस्थानत्रय कहलाते हैं। चूँकि कई धर्म रहस्यों से भरी पडी है, इसीलिए गीता को भी प्रस्थानत्रय में स्थान मिला है। इन तीनों में भी गीता की यह सब से बडी विशेषता है कि इसमें उपनिषदों तथा ब्रह्मसूत्रों के भाव सम्मिलित हैं। इसकी भाषा एवं शैली सर्वसुलभ है। इसीकारण लोकप्रिय बन गयी है।

भगवान विष्णु ने कहा कि मैं गीता के आश्रय में हूँ। गीता मेरा मंदिर है। गीताज्ञान के अनुसार ही मैं तीनों लोकों का पालन करता हूँ।

"गीताश्रयोऽहं तिष्ठामि गीतामेचोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीन्लोकान्पालयसम्यहम् ॥"

विष्णु के ये वाक्य गीता के माहात्म्य के उदाहरण हैं। भगवान गीता का आश्रय लेकर जब तीनों लोकों का संचालन कर रहे हैं तो मनुष्य गीता का आश्रय लेकर क्या अपने गृह का संचालन नहीं कर सकता? क्या परिवार नहीं चला सकता ? "भूभुजो जनकादयः" इस उक्ति के अनुसार जनक आदि महाराजाओं ने राज किया। इसलिए घोर संसार के जंगलों में दुःख रहित होकर प्रशांत जीवन बिताना चाहें तो गीता की सहायता अवश्य लेनी चाहिए। गीता रक्षति रक्षिता, जो गीता की रक्षा करते हैं उनकी रक्षा गीता करती है। इसका मतलब है कि गीता का जो आदर करते हैं, उसका आश्रय लेते हैं, उसका अनुष्ठान करते हैं उनकी भवसागर से रक्षा गीता करती है। अतः भवसागर के उस पार जो पहुँचना चाहते हैं उन्हें गीता रूपी नाव का अवश्य आश्रय लेना चाहिए।

कलिकाल में गीता

कलिकाल के आरंभ के पूर्व भगवान ने श्रीकृष्ण का अवतार लेकर गीतामृत जगत् को प्रदान किया। भगवान नै पहले ही समझ लिया कि कलिकाल लोगों को भ्रष्ट मार्ग पर ले जाएगा। इसीलिए दयार्द्रहृदय होकर उन्होंने जगत् को गीता का संदेश दिया। कृतयुग में भगवान ने ऐसा नहीं किया। त्रेतायुग में नहीं किया। द्वापरयुग के अन्त तक भी नहीं किया। लगता है कि रोग की तीव्रता देखकर ही भगवान ने तेज दवा दी। अतः स्पष्ट है कि जो साधक गीता के आश्रय में जाएगा वह सांसारिक यातनाओं से मुक्त हो जाएगा। पद्म पुराण में गीता माहात्म्य के बारे में कहा गया कि पाठमात्रपराभूत कालकिंकर गर्जितम्' गीता के पठन मात्र से यमकिंकरों का गर्जन व्यर्थ हो जाएगा। गीता का हर शब्द पापों को भस्म करनेवाला एक अग्निकण जैसा है। इसीलिए राजा से लेकर रंक तक, पंडित से लेकर पामर तक, भूसुर से लेकर चांडाल तक सब गीता का आश्रय लेकर शांति एवं संपन्नता प्राप्त करते हैं। गीता गंगा का पान कर कितने ही महानुभाव धन्य हुए। आगे भी धन्य होंगे। श्रीशङ्कराचार्य ने गीता की प्रशस्ति में कहा -

भगवद्गीता किञ्चिदधीता
गंगाजललवकणिका पीता।
सकृदपि येन मुरारि समर्चा
तस्य करोति यमोऽपि न चर्चाम्॥

'भगवद्गीता का थोडा सा अध्ययन करने पर, गंगाजल थोडा सा पीने पर, विष्णु भगवान की पूजा एक बार करने पर, यम पास नहीं आता।' इसलिए गीता पर पूर्ण विश्वास कर, उसके सत्यों को आचारण में लाकर इसी जन्म में निरतिशयानंद पाने के लिए कमर कसना चाहिए।

जीवन संगिनी

गीता केवल कृष्ण और अर्जुन का संभाषण नहीं है, बल्कि हर मनुष्य के हृदय में नित्य चलनेवाला संभाषण है। अर्जुन की तरह अपने श्रवणेन्द्रिय भगवान श्रीकृष्ण की ओर घुमावें तो वह देववाणी सब को सुनाई पड़ेगी। साधारण ग्रन्थ की तरह एक बार पढ कर उसे बगल में रखना नहीं चाहिए। यह उपन्यास नहीं है जिसे एक बार पढ कर बगल में रख दें। यह जीवन संगिनी जैसी है। नित्य इसका अध्ययन करते हुए जीवन में इसके द्वारा निर्दिष्ट धर्मों का पालन करना चाहिए। आपदाओं एवं सांसारिक दुःखों में गीता का उपकार वर्णनातीत है। रोगी के पास डाक्टर रहे तो उसे जितनी सांत्वना मिलती है, संशयों वाले शिष्य के पास सद्गुरु रहे तो उसे जितनी तुष्टि मिलती है, दुःखी मनुष्य के पास गीता रहे तो उसे उतना ही उत्साह मिलेगा। महात्मा गान्धीजी ने भगवद्गीता को अपने जीवन का पथप्रदर्शक माना। इस कारण हमारे बुजुर्गों ने गीता के पारायण की व्यवस्था कर हर दिन उसे पढने पर जोर दिया। जो मनुष्य हर दिन गीता का पाठ करता रहेगा वह दानव से मानव बनेगा। मानव से माधव बनेगा। गीता की यही उल्लेखनीय विशेषता है। भगवान श्रीकृष्ण और मुनीन्द्र व्यास के हम आभारी हैं कि उन्होंने हमें ऐसा महान् ग्रन्थ प्रदान किया।

गीता का लक्ष्य शोक राहित्य एवं आनन्द की प्राप्ति है।

जो गाया जा सके वह गीता है। गाना आनन्द के समय ही संभव है दुःख के समय नहीं। इसलिए मुमुक्षुओं को सदा याद रखना चाहिए कि आनन्द ही गीता का प्रधान लक्ष्य है। 'अशोच्यान्' शब्द से शुरू होकर 'माशुचः' शब्द से गीता समाप्त हुयी है। शोकराहित्य और आनन्द की प्राप्ति ही गीता के लक्ष्य हैं। इसीलिए कितने ही दीन, दुःखी गीता की शरण में जाकर अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं। अब तक हम ने गीता की बाहरी विशेषताओं पर विचार किया। अब हम अन्दर प्रवेश कर उसका विवरण जानने का प्रयत्न

करण। गीता काल्पनिक ग्रन्थ नहीं है। वह एक ऐतिहासिक घटना है। श्रीकृष्ण और अर्जुन ऐतिहासिक पुरुष हैं न कि काल्पनिक। इस सत्य को समझ लें तो गीता पर हमारा विश्वास और बढ जाएगा।

गीता का अवतरण

पांडव और कौरव मिल जुल कर मैत्री भाव से दिन बिता रहे थे। उसी समय ईर्ष्या रूपी कीडे ने दुर्योधन के हृदय कुहर में प्रवेश किया। वह कीडा धीरे धीरे उसका विवेक ग्रसने लगा। फल स्वरूप उसने शकुनि आदि की सहायता से धोखे से जुए में पांडवों को हरा दिया। उनका राज्य हडप लिया। बारह वर्ष तक वनवास और एक वर्ष तक अज्ञातवास उनसे कराया। तब भी उनका राज्य वापस नहीं किया। उन्हें कई यातनाएँ दीं। आधा राज्य, पाव राज्य, पाँच गाँव, आखिर सुई की नोक भर की भूमि उन्हें देने से इनकार किया। फिर श्रीकृष्ण पांडवों के दूत बन कर गये। लेकिन फायदा कुछ नहीं हुआ। पांडवों की छोटी से छोटी इच्छा की पूर्ति के लिए भी दुर्योधन तैयार नहीं हुआ। उसका हृदय अहंकार से भर गया। लाचार हो कर पांडवों को धर्म युद्ध करना पडा। दोनों पक्षों के सैनिक युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। कुरुक्षेत्र में पांडवों और कौरवों के सैन्यदल कतार बान्धकर आमने सामने खडे हो गए। शंख बज उठे। धनुष पर तीर चढने लगे। उस समय अर्जुन की मांग के अनुसार सारथी श्रीकृष्ण ने उनके रथ को दोनों दलों के बीच में ले जाकर खडा किया। सैन्य दलों में भाई, जीजा, बहनोई, पिता, दादा, गुरु और साथी बडी संख्या में खडे थे। उन्हें देख कर अर्जुन का हृदय शोक संतप्त हो गया। उन्होंने कहा कि इन सब को मार कर राज करने से भीख मांग कर जीना अच्छा है। इन सब को मैं कैसे मारूँ? फिर वह कमज़ोर पड गया। गांडीव छोड दिया। रथ में नीचे बैठ गया। धर्म और अधर्म का निर्णय वह कर नहीं सका। श्रीकृष्ण के चरणों पर गिर पडा -

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्' मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी

शरण में हूँ। (कर्तव्य का बोध करा कर) ''मुझे शिक्षा दीजिए'' यह कह कर हाथ जोड कर दीन भाव से उनसे प्रार्थना की। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीतोपदेश की यह पूर्वकथा है। युद्ध के क्षेत्र में अहं, मम (मैं, मेरे) के रूप में अर्जुन का मोह (अज्ञान) जागृत हुआ और उसे कर्तव्य से च्युत कर दिया। श्रीकृष्ण का सारा बोध उस मोह के लिए गदाघात ही था। देहाभिमान से उत्पन्न अर्जुन की उस कृपणता को भगवान ने अपने आत्मज्ञान के उपदेश के द्वारा चूर चूर कर दिया। अंत में अर्जुन से उन्होंने कहलवा ही दिया कि मेरा अज्ञान दूर हो गया। आपके कहे अनुसार करूँगा।

इस प्रकार जिस गीता ने अर्जुन के अज्ञान को दूर किया वह गीता किसी के भी अज्ञान को दूर कर सकती है। एक के रोग को दूर कर सकने वाली दवा दूसरों के रोग को भी दूर कर सकती है। अर्जुन के बहाने श्रीकृष्ण ने सामान्य जनता को उपदेश दिया। इसका पारायण कर हर कोई अपने हृदय को टटोले, जन्म जन्मांतर से हृदय में छिपे काम क्रोध रूपी घने अंधकार को गीता की ज्ञान ज्योती से मिटा लें, बन्धमुक्त बनें, इसी जीवन में ब्रह्मानंद का अनुभव प्राप्त करें, यही हमारी अभिलाषा है।

गीता का अधिकारी कौन?

अब प्रश्न उठता है कि गीता पाठ का अधिकारी कौन है ? हम पूछते हैं कि पानी पीने का अधिकारी कौन है? जिसे प्यास लगे वही न? खाना खाने का अधिकारी कौन है ? जिसे भूख लगे वही न ? दवा लेने का अधिकारी कौन है? जो रोगी हो वही न? इस दृष्टि से जो भव के रोगों से पीडित हैं वे सब गीता पाठ के अधिकारी ठहरते हैं। यहाँ संदेह हो सकता है कि भव के रोगों से पीडित कौन हैं? इसका जवाब है कि जो जन्म लेते हैं वे सब भवरोगों से पीडित ही हैं। जनन मरण के चक्कर में फँसे सभी लोग किसी न किसी तरह से इस रोग से पीडित हैं। जिस प्रकार अपने को रोगग्रस्त समझनेवाला वैद्य के पास जाता है, उसी प्रकार भवरोग से ग्रस्त व्यक्ति ही गीता रूपी वैद्य की शरण

में जाएगा। वैद्य पर जिस रोगी को पूरा विश्वास होगा वही उसकी दवा से चंगा होगा। इसी तरह गीता एवं गीताचार्य पर जिसे अकुंठित विश्वास होगा वही गीता पाठ से उत्तम फल पाएगा। इसीलिए गीता में भगवान ने कहा है -

इदं ते नातपस्काय ना भक्ताय कदाचन,
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति। (१८-६७)

"हे अर्जुन! तुझे गीता का रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य को देना चाहिए, न भक्तिरहित को और न बिना सुनने की इच्छावाले को। जो मुझमें दोषदृष्टि रखता है उससे तो गीता का रहस्य कभी भी नहीं कहना चाहिये।"

इसलिए सभी श्रद्धावान विश्वासी लोग गीता पाठ के अधिकारी हैं। "मानवाः" शब्द का भगवान ने प्रयोग किया है। अतः स्पष्ट है कि जाति, कुल, धर्म, वर्ग एवं वर्ण के भेद के बिना समस्त विश्व की जनता गीता पारायण के अधिकारी हैं।

अब हम गीता के भीतर प्रवेश कर उसकी एक एक विशेषता का परिचय प्राप्त करेंगे।

गीता में अनुष्ठान की प्रधानता

लगता है कि सिद्धांतों के बताने पर गीताचार्य को उतना विश्वास नहीं जितना कि उसके अनुष्ठान पर। इसीलिए उन्होंने गीता में साध्यवस्तु परमात्मा के बारे में कम बता कर, उनके यहाँ पहुँचने की साधन संपत्ति के बारे में विस्तार से बताया है। दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ लक्षण, छठे अध्याय के योगभ्यास का विधान, बारहवें अध्याय के भक्ति के लक्षण, तेरहवें अध्याय के ज्ञान-गुण और सोलहवें अध्याय के दैवी संपदा का विवरण आदि इसके दृष्टांत हैं। भगवान स्पष्ट बताते हैं कि सिद्धांतों के प्रस्तुतीकरण से ज्यादा अनुष्ठान का निर्वाह ही श्रेष्ठ है। गीता ग्रन्थ के आरंभ से ही यह सत्य दृगोचर होता है। जिसका नैतिक पतन होता है, उसके हृदय में आध्यात्मिक तत्व

केलिए स्थान नहीं रहता। जिसका चित्त शुद्ध नहीं उस पर ज्ञान का प्रभाव नहीं पडता। ऊसर भूमि में फसल नहीं होती। इसलिए हृदय की निर्मलता के लिए साधन अत्यंत आवश्यक है। इसी पर ध्यान देकर गीताचार्य ने चरित्र निर्माण पर अधिक जोर दिया है।

साध्यवस्तु परमात्मा है। उसके प्रति जो प्रीति है उसका थोडा सा अंश भी साधन के रूप में काम में लाया जाय तो मोक्ष प्राप्त हो जाएगा। नहीं तो आत्मा और परमात्मा के बीच की खाई वैसी ही रह जाएगी। 'सत्व पुरुषयो: शुद्धि साम्ये कैवल्यम्' चित्त परमात्मा जैसी निर्मलता को प्राप्त करे तो वही मोक्ष है। यह पतञ्जलि का कथन है। इसलिए मुमुक्षु को चाहिए कि चित्त को निर्मल बनाने के लिए आवश्यक साधन जुटावे। लोगों को अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि हमारा भारतवर्ष अपना पुराना वैभव आज इसलिए प्राप्त नहीं कर पा रहा है कि लक्ष्य के प्रति उसे जो आसक्ति है वह लक्ष्य की प्राप्ति के साधनों के प्रति नहीं है। सिद्धान्त के प्रति जो प्रीति है आचरण के प्रति नहीं है। अनुष्ठान संबंधी वेदांत कम हो गया और 'वाचा' संबंधी वेदांत ज्यादा होगया है। यह पद्धति गीताचार्य को पसंद नहीं है। इसीलिए उन्होंने ज्ञेय के बारे में कम कह कर ज्ञान के बारे में ज्यादा कहा है। ध्येय के बारे में कम कह कर ध्यान के बारे में ज्यादा कहा है। साध्य के बारे में कम कह कर साधनों के बारे में ज्यादा कहा है। गीता शास्त्र में साधक को सब से पहले यह रहस्य अच्छी तरह समझलेना चाहिए। गीताशास्त्र आचरण प्रधान विज्ञान है। अत: हम चाहते हैं कि मुमुक्षु आचरण पर ज्यादा ध्यान दें और अपना जीवन धन्य बना लें।

गीता के व्यवहार को वेदांत के स्तर पर ले जाना

गीता घोषित करती है कि 'कर्म बुरा नहीं है। व्यवहार दूष्य नहीं है। अपनी दृष्टि को पवित्र बनाओ। तब तुम्हारा कर्म महायज्ञ का . . . [illegible] करेगा। अपनी भावना को शुद्ध बनाओ। तब तुम्हारा कर्म श्रेयोदायक होगा।'

काम किये बगैर मनुष्य क्षण भर भी नहीं रह सकता। इसलिए कर्म की निन्दा करते हुए, उसका निषेध करते हुए जो बातें बतायी जाती हैं वे साधारण मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होती। यदि उन बातों को अमल में लाएगा तो वह अकर्मण्य तथा जड बन जाएगा। उसका जीवन निरर्थक बनेगा। संसार में निन्यानवे फीसदी लोग गृहस्थ एवं ब्रह्मचारी हैं। वे कर्म को नहीं छोड सकते। सब कुछ छोड कर एकांत में रह कर तपस्या करनेवाले आज नहीं के बराबर हैं। इसलिए आज ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो सब के लिए उपयोगी सिद्ध हो। यही वजह है कि गीताचार्य ने व्यवहारों की निन्दा न करके, उन्हें पवित्र बनाने के उपायों पर ध्यान दिया। उसने स्पष्ट प्रकट किया कि उन व्यवहारों के द्वारा चित्त को परिशुद्ध बनावें, फिर क्रम से ज्ञान का अनुभव प्राप्त कर मोक्ष की प्राप्ति के अधिकारी बनें।

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः' (१८-४६)

भगवान ने कहा कि अपने स्वाभाविक कर्मों द्वारा परमेश्वर की पूजा करके मनुष्य मोक्ष पा सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण अर्जुन हैं। क्यों कि अर्जुन ने आरंभ में कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। मुझे राज्य नहीं चाहिए। झोली लेकर एकांत में जाऊँगा। भीख मांग कर उस भिक्षान्न पर जीवन बिताऊँगा।''

''श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके'' (२-५)

वही अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के गीता प्रबोध से प्रबुद्ध होकर युद्ध क्षेत्र में कूद पडे। निष्कामभाव से युद्ध कर्म कर भयानक संग्राम को पवित्र यज्ञ के रूप में बदल दिया। श्रीकृष्ण को आगे रख कर अर्जुन ने युद्ध रूपी व्यवहार चलाया। मोक्ष सोपान के रूप में व्यवहार को बदलने का उपाय यही है। भगवान का स्मरण करते हुए कर्म करना ही मुक्ति का मार्ग है।

''मामनुस्मर युध्य च'' मेरा स्मरण करते हुए युद्ध करो, यही कर्म का रहस्य है। फल को ईश्वर के हाथों समर्पित कर कर्म करना महान है। तब कर्म कर्म न रह कर योग बन जाएगा। तब एकांत में समाधिनिष्ठ योगी तथा

संसार में विविध कर्म करते रहनेवाले कर्मिष्ठ दोनों को एक ही फल मिलेगा दोनों को आत्मिक शान्ति मिलेगी। भगवद्गीता के द्वारा प्रबोधित तत्व यही है। संसार में कुछ शास्त्र कर्मों का निषेध करते हैं। वे निवृत्ति मार्ग का पोषण करते हैं। और कुछ शास्त्र प्रवृत्ति मार्ग का समर्थन करते हैं। परन्तु गीता ने निवृत्ति एवं प्रवृत्ति दोनों का मध्यमार्ग प्रशस्त किया है। वह मार्ग सब के लिए आचरण सुलभ है। गीता बताती है कि चाहे शरीर प्रवृत्ति में क्यों न लगा रहे, पर मन को निवृत्ति की ओर अग्रसर करो। इसी तत्व को हृदयंगम कर राजा जनकने राज्य किया। भगवान विष्णु ने तीनों लोकों का पालन किया। इस प्रकार गीताचार्य ने वेदांती जिन सांसारिक व्यवहारों के प्रति नफरत करते हैं, उन लोक व्यवहारों को नया रूप देकर परमार्थ का स्वरूप प्रदान किया। इसके पूर्व किसी ने ऐसे अपूर्व सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया। इसीलिए गीता एवं गीताचार्य को महान् ख्याति मिली।

गीता में सब योगों का समन्वय

आध्यात्मिक क्षेत्र में कर्म मार्गी, भक्तिमार्गी, योगमार्गी तथा ज्ञानमार्गी नामक विभिन्न साधक हैं। उनमें ज्यादातर साधक अपने ही मार्ग को उत्तम तथा दूसरे मार्ग को निकृष्ट मानते हैं। अपने तर्क के समर्थन में वे कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। स्वमत का समर्थन और परमत का खंडन देखकर उस प्रवृत्ति को दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के द्वारा सब धर्मों के तत्वों का समन्वित रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि मोक्ष की प्राप्ति के कर्म, भक्ति, ज्ञान एवं ध्यान चार साधन हैं। चार द्वार हैं। किसी भी द्वार से क्यों न जावें मुक्ति के सौध में जा सकते हैं। यह भी बताया कि जिस प्रकार सब नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती हैं उसी प्रकार ये सब मार्ग जीव को कैवल्यधाम पहुँचाते हैं। किसी भी द्वार से अंदर प्रवेश करना गलत नहीं हैं। गीता के द्वारा यह स्पष्ट होता है कि अपने अपने संस्कार के अनुसार उन उन मार्गों एवं तत्वों का अनुसरण जीव कर सकते हैं। इस विषय में वे स्वतंत्र हैं।

कुछ लोगों का चित्त सहजरूप से सक्रिय रहता है। वे निश्चितरूप से कर्ममार्ग का अनुसरण करते हैं। कर्म के आचरण एवं लोक सेवा में ही वे आनन्द पाते हैं। ऐसे साधकों को गीता संदेश देती है कि कर्मतत्त्व एवं कर्मरहस्य अच्छीतरह जान कर निष्काम कर्म करो। इसीलिए लगता है कि कर्मयोग शीर्षक का एक अध्याय ही गीता में स्थान पाचुका है। कुछ लोगों का हृदय जोश से भरा रहता है। उनका हृदय भक्तिपरक रहता है। ऐसे लोग भक्तिमार्ग का अनुसरण करते हैं। जप, पूजा, प्रार्थना, संकीर्तन तथा नामस्मरण आदि में लगे रहते हैं। ऐसे लोगों को गीता संदेश देती है कि भक्तिमार्ग का अनुसरण कर मोक्ष प्राप्त करो। इसीलिए ऐसे लोगों के उपयोगार्थ गीता में भक्तियोग शीर्षक का एक अध्याय स्थान पाचुका है। कुछ लोगों का मन उपासना में लीन रहता है। ऐसे लोग निरंतर ध्यान में लगे रहते हैं। बाहरी व्यवहारों से विमुख होकर सदा चित्त को अन्तर्मुखी बना कर ध्यान में लीन रहते हैं। उनके लिए गीता ने ध्यान योग या आत्मसंयम योग शीर्षक का अध्याय विशेषरूप से सुनिश्चित किया। इन तीनों के अलावा कुछ और ऐसे लोग हैं जो ज्ञानी कहलाते हैं। उनका चित्त हमेशा विचार विश्लेषण में लगा रहता है। वे सत्य-असत्य-आत्मा-अनात्मा और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ की विवेचना करते रहते हैं। उनकी धीशक्ति अमोघ होती है। ऐसे साधकों के लिए गीता में ज्ञान योग तथा क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग आदि अध्यायों में विशेष रूप से बहुत कुछ कहा गया है।

इस प्रकार गीताचार्य ने संसार के विभिन्न तत्ववालों को तृप्त करके सब के लिए मोक्षमार्ग प्रशस्त किया है। साथ साथ आपसी द्वेष विद्वेष को दूर कर यह साबित किया है कि आध्यात्मिक क्षेत्र के ये सभी सत्यमार्ग ही हैं। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में 'सब योगों का समन्वय तथा निष्कामकर्म' ये दोनों गीता के प्रमुख लक्षण हैं। यही कारण है कि सभी मार्गी गीता का बडा आदर करते हैं। अद्वैतमत के प्रवर्तक श्री शङ्कराचार्य ने गीता की प्रशंसा की। विशिष्टाद्वैत मत के प्रवर्तक श्री रामानुजाचार्य ने गीता की स्तुति की। द्वैतमत के

प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य ने उसे मान्यता दी। शैवधर्म के प्रवर्तक श्रीकंठशिवाचार्य ने उसकी प्रशंसा की। इस प्रकार सभी तत्वों, सभी योगों का समन्वय कर परंधाम रूपी लक्ष्य की ओर सब को उन्मुख करनेवाला ग्रन्थराज है गीता। सभी योगों के बीच में समता साध कर उन्हें समन्वित किया। आपसी द्वेष को दूर कर अहंकार को समूल मिटाने का संदेश गीता ने दिया। आत्मानुभूति पर जोर दिया। पाठकों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सब योगों, सब तत्वों एवं सब धर्मों में समन्वय लाकर सब में समरसता पैदा करना गीता की सब से बडी विशेषता है।

गीता में सभी भूतों पर दया का संदेश

गीता में जो कुछ है वह मौखिक वेदांत नहीं है। अनुष्ठानमूलक वेदांत है। हर छोटी बात में भी आचरण पर ही गीता ध्यान देती है। गीताचार्य का मत है कि हृदय जब तक परिपक्व नहीं होता तब तक किसी को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जब तक चित्त रजोगुण और तमोगुण से आवृत रहेगा तब तक जितनी भी पूजाएँ क्यों न करें, जितने भी स्तोत्र क्यों न सुनावें और जितने भी भजन-कीर्तन कयों न गावें जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरे प्राणी पर कृपा एवं दया की वर्षा करने पर ही योग, भक्ति, ध्यान और ज्ञान तरक्की करेंगे। भगवान पर भक्ति है परन्तु जीवराशि पर क्रोध है, द्वेष है तो उस भक्ति का कुछ भी अर्थ नहीं। वह भगवान का उपचार नहीं है, वह तो उनके प्रति अपचार ही है।

'सर्वजीव तिरस्कारः केशवं प्रतिगच्छति' के अनुसार किसी भी जीव का तिरस्कार किया जाय तो वह खुद भगवान का ही तिरस्कार होगा। क्योंकि समस्त जीवराशि भगवान के ही अंग हैं। एक भी अंग को धक्का लगेगा तो सारे शरीर को धक्का लगेगा। इसलिए सभी भूतों पर दया करना परम आवश्यक है। भगवद्गीता का संदेश भी वास्तव में यही है। समय समय पर भगवान ने जीव कारुण्य पर बल दिया।

१. अद्वेष्टा सर्व भूतानां

२. सर्वभूत हिते रताः

३. निर्वैरः सर्वभूतेषु

ऐसे विश्व प्रेम को सूचित करनेवाले कई वाक्य गीता में देखने को मिलते हैं। सर्वभूतः कहने से स्पष्ट होता है कि इसके अंतर्गत केवल मनुष्य लोक ही नहीं बाकी सारी सृष्टि भी आ जाती हैं। उन सब पर दया करनी चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने बार बार ऐसा क्यों कहा? केवल कर्म, भक्ति, ध्यान एवं ज्ञान के बारे में बता सकते थे। नहीं, भगवान ऐसा कैसे करेंगे ? केवल भगवान की भक्ति करके उनकी ही जीवराशि पर अत्याचार करें तो वे कैसे शांत रहेंगे ? दवा का सेवन कर, पथ्य पर ध्यान न दें तो क्या रोग कभी दूर हो सकेगा ? इसी तरह भगवान की तो पूजा करें, मगर भगवान के ही अंश जीवराशि से द्वेष करें तो भवरोग दूर कैसे होगा? इसलिए औषध एवं पथ्य दोनों आवश्यक हैं। इसी प्रकार सब योगों के साथ साथ भूतों पर दया करना भी बहुत जरूरी है। यह सत्य भगवान ने गीता के निम्न लिखित श्लोक में स्पष्ट किया है।

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥

अर्थात् - हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे लिये ही सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मों को करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैर भाव से रहित है वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझ को प्राप्त करता है।

बारहवें अध्याय के आरंभ में भक्त के बारे में बतलाते हुए कहा कि "अद्वेष्टा सर्वभूतानां" (समस्त प्राणियों से द्वेष न करना), यह भक्त का गुण है। इसका मतलब यही है कि भक्ति, योग एवं ज्ञान का वास्तविक स्वरूप समस्त प्राणियों में भगवत् स्वरूप के दर्शन करना ही है। भागवत में सुदामा ने श्रीकृष्ण

से तीन बातों की याचना की (१) मेरे चरणकमलों की सेवा (२) मेरे चरणों के अर्चकों के साथ स्नेह और (३) नित्य अपार भूतदया । भूतदया के कारण बाकी दोनों को बल मिलता है । अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि भूतदया पर अत्यधिक ध्यान दें । इसीलिए भगवान ने गीता में भूतदया पर ज्यादा जोर दिया है ।

गीता में समता

गीता का और एक प्रधान विषय है समता का बोध । जब मन निश्चल होकर समरूप प्राप्त करेगा तब आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार होगा । जिस तरह निश्चल और निर्मल जल में सूर्य का बिंब स्पष्ट दिखाई देता है, उसी तरह मन जब अचंचल रहेगा तभी ब्रह्मानुभूति होगी । आत्मानन्द प्राप्त होगा । इसीलिए भगवान ने गीता में मन की समस्थिति के बारे में बताते हुए कहा है कि मुमुक्षु को उस स्थिति का अवलंबन करना चाहिए। उन्होंने कहा कि योग का मतलब है चित्त को निश्चल रखना (समत्वं योगमुच्यते) । उन्होंने बतलाया-

१. समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते (२-१५)

२. सुखदुःखे समे कृत्वा लाभा लाभौ जयाजयौ
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ (२-३८)

३. सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते । (२-४८)

४. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः । (५-१९)

हे अर्जुन! सुख-दुःख, मान-अपमान, शीत-उष्ण, निन्दा-स्तुति, लाभ-अलाभ और जय-अपजय में समबुद्धि हासिल करो । समबुद्धिवाला धीर ही मोक्ष पा सकेगा । जिसका मन समत्व में स्थित रहेगा वह इस जिन्दगी में ही प्रकृति को जीत सकेगा । वही परमानन्द प्राप्त कर सकेगा । इस प्रकार कह कर गीताचार्य ने समत्वबुद्धि पर बार बार जोर दिया । लोग मोक्ष अवश्य चाहते हैं पर मोक्ष के लिए आवश्यक चित्त शुद्धि पर ध्यान नहीं देते । बंदर की तरह चपल होकर सांसारिक सुख दुःखों के शिकार होते रहते हैं । सुख मिले तो

फूले नहीं समाते, दुःख मिले तो कुंठित होते रहते हैं। ऐसे लोग परमार्थ कैसे पा सकेंगे? इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में समता तत्व का बार बार बोध कराया और उपदेश दिया कि किसी भी परिस्थिति में चित्त को समता के तत्व से डिगने नहीं देना चाहिए।

सारा विश्व भगवान का ही रूप है। यहां भिन्नता नहीं है। अज्ञान के कारण ही भिन्नता दृग्गोचर होती है। वास्तव में यह सत्य नहीं है। विश्वरूप के संदर्शन में यह रहस्य अच्छी तरह स्पष्ट किया गया है। सारा विश्व एक ही विराट् का स्वरूप है। यह एक ऐसा दैवीतत्व है जो विभाजित नहीं किया जा सकता। यह एक ऐसा वस्त्र है जिसके टुकडे नहीं किये जा सकते। इसीलिए गीता घोषित करती है कि चराचर जीवकोटि में किसी से द्वेष नहीं करना चाहिए। सभी के प्रति समदृष्टि रखनी चाहिए। शत्रु, मित्र सब के प्रति समान भाव रखना चाहिए। गीता संदेश देती है कि ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता तथा चांडाल सब के प्रति भी समान भाव रखना चाहिए। भगवान ने कहा-

विद्या विनय संपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥ (५-१८)

गीता की महत्ता इसी में है। केवल मानव को ही नहीं, बल्कि समस्त जीव कोटि को गीता ने प्यार से गले लगाया। गीताचार्य लोगों को आदेश देते हैं -

१. आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥ (६-३२)

२. सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषुः।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥ (६-९)

३. समलोष्टाश्मकाञ्चनः . . . (१४-२४)

४. समः शत्रौ च मित्रे च . . . (१२-१८)

"हे जीव! अपनी प्यार एवं दया को पुण्यात्माओं पर ही नहीं, अपितु,

पापात्माओं पर भी बरसाओ। मानव पर ही नहीं, बल्कि दानव पर भी बरसाओ। द्विपदों पर ही नहीं, बल्कि चतुष्पादों पर भी बरसाओ। तुम अपने को जिस प्रकार प्यार करते हो, उसी प्रकार अन्यों को भी प्यार करो। सुख एवं दुःख दोनों में दूसरों को भी समान मानो।''

आमतौर पर संसार में लोग कहा करते हैं कि सौभ्रातृत्व बहुत बडा सुगुण है। यह भी कहते हैं कि तुम जिस तरह अपने भाई को प्यार करते हो उस प्रकार दूसरों को भी प्यार करो। परन्तु गीता इस स्थिति से भी बहुत ऊपर चली गयी। विश्व सौभ्रातृत्व की स्थिति से ऊपर जाकर ''आत्मौपम्य'' की स्थिति तक वह पहुँच गयी है। वास्तव में वही अनुकरणीय है। क्यों कि भाई भाई में विवाद हो सकता है। पर मनुष्य अपने आप से विवाद या द्वेष नहीं कर सकता। इसलिए उत्तम धर्म यही है कि हम अपने ऊपर जितनी दया दिखाते हैं उतनी दया दूसरों पर भी दिखावें। इस प्रकार ''आत्मौपम्य'' की स्थिति का संदेश देनेवाले मत संसार में बहुत कम हैं। ज्यादातर मत विश्वसौभ्रातृत्व तक जा सके हैं। लेकिन हिन्दूधर्म ने उपनिषदों एवं गीता आदि सद्ग्रन्थों के द्वारा सन्देश दिया -

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥ (६-२९)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकात्मिकता की भावना से युक्त आत्मवाला और सब में समभाव देखनेवाला योगी आत्मा को संपूर्णभूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में स्थित देखता है। ''इस प्रकार भगवान ने प्रेम की परिधि को बढा दिया। दूसरे धर्मों ने बताया कि अपने साथी व्यक्ति को प्यार करे। ''पर उन धर्मों ने स्पष्ट नहीं किया कि क्यों प्यार करना चाहिए? इसीलिए वैज्ञानिकों एवं भौतिक शास्त्र के विशेषज्ञों को धर्म पर विश्वास नहीं होता। वे कहते हैं कि जो धर्म हेतुवाद (तर्क) का सामना नहीं कर सकता वह लंगडा है। उनका कहना है कि जो धर्म या संप्रदाय हेतुवादी प्रश्नों का संतोषजनक

उत्तर नहीं दे सकता वह उत्तम नहीं है। फलाना कार्य क्यों करना चाहिए ? फलाने धर्म का पालन क्यों करना चाहिए ? फलाने व्यक्ति के प्रति प्रेम क्यों प्रकट करना चाहिए ? इन प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार रहना चाहिए। भौतिक शास्त्र के विशेषज्ञों के ऐसे प्रश्नों का सामना भगवान श्रीकृष्ण ने किया। गीता में उनके प्रश्नों का उत्तर भगवान ने दिया। भगवान ने सीधे प्रश्न किया कि सब में जब एक ही आत्मा (आप ही) व्याप्त है, सब जीवों में जब आप ही भासित है तो अन्यों से द्वेष क्यों होगा ? इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में मुमुक्षुओं के लिए आवश्यक समत्व धर्म का प्रतिपादन कर साधकों का महोपकार किया।

गीता की नयी विशेषताएँ

यज्ञ आदि शब्दों का नया अर्थ -

गीता में कई नये मोड हैं। नई विशेषताएँ हैं। इसके पूर्व शास्त्रकारों ने जिन भावों को प्रकट किया, जिन शब्दों का प्रयोग किया उन्हें गीता में नया रूप दिया गया। इससे समाज में नई क्रांति हुयी। यज्ञ, त्याग, योग, सन्यास तथा तपस्या आदि शब्दों ने गीता में नया अर्थ ग्रहण किया। यहाँ हम विचार करें कि गीताचार्य ने इन शब्दों को किस तरह नया रूप दिया। यज्ञ याग आदि तक सामान्यजन पहुँच नहीं सकते थे। गीताचार्य ने उनका अर्थ लोगों को समझा कर उनका भार कम कर दिया। उन यज्ञ एवं सन्यास आदि को सर्वसुलभ बना दिया। अतः उन शब्दों एवं उनके अर्थों का विवरण जानना आवश्यक है।

यज्ञ - आमतौर पर यज्ञ कहते ही लोग समझते हैं कि यह मुश्किल काम है। हर कोई इसे नहीं कर सकता। अंगबल और अर्थबल जिनके पास होते थे वे ही महाराजा यज्ञ याग किया करते थे। यज्ञ के लिए होता, उद्गाता आदि, ऋत्विक पंडित और शास्त्रविद् आदि, धन-धान्य तथा क्रिया कलाप आवश्यक थे। काम्यकर्म होने के कारण उसका फल कम होता था। इससे शाश्वत मोक्ष नहीं मिलता था। इस पर काफी सोच बिचार कर भगवान श्रीकृष्ण

ने ऐसे यज्ञ का प्रतिपादन किया जो सब लोगों के लिए आचरण के योग्य है। जिसमें ज्यादा श्रम नहीं होता। पंडित-पामर, धनी-दरिद्र, स्त्री-पुरुष एवं ब्राह्मण-चांडाल सब के लिए सुलभ है। जिसके लिए धनबल तथा जनबल की भी आवश्यकता नहीं है। उसी को उन्होंने निष्कामकर्म कहा। कर्तृत्व की भावना के बिना जो भी बडा काम किया जाता है वह एक महायज्ञ ही है। भगवान के स्मरण करके जो कर्म किया जाता है वह यज्ञ क्रिया के रूप में बदलता है। भगवान के बताये इस सूत्र के अनुसार मनुष्य दैनिक जीवन में जो भी काम करता है उसे पावन बना सकता है। अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण को सामने रख कर उन्हीं का स्मरण करते हुए भीषण संग्राम को भी सात्विक यज्ञ बना लिया।

१. यज्ञानां जपयज्ञोस्मि (१०-२५)

२. स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः (४-२८)

इस प्रकार गीताचार्य ने जप, स्वाध्ययन तथा आहार संयम आदि सामान्य क्रियाओं को भी यज्ञ माना।

भगवान का यह यज्ञ हर कोई कर सकता है। पैसे का खर्च नहीं। श्रम जरूरी नहीं। लेकिन फल तो अपार है। इस यज्ञ में कर्म बंधन को तोडकर फेंकने की अपार शक्ति है। यज्ञ के रूप में न होकर किये जानेवाले बाकी सब कर्म जीव को बंधनों में बांध देते हैं। जैसे -

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। (३-९)

अतः भगवान के बताये मार्ग पर चल कर हर कोई दैनिक जीवन के सभी कर्म ईश्वर को समर्पित कर बिना कर्तृत्व भावना के करें तो कर्म के बंधन से छूट सकते हैं। नहीं तो जीवन भार स्वरूप बन जाएगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने यज्ञ शब्द को नया अर्थ एवं नया रूप प्रदान कर सभी जनों को तरने का मार्ग दिखाया। यज्ञ की क्रिया को भगवान ने सर्व सुलभ बना दिया।

त्याग और सन्यास -

लोग समझते थे कि त्याग का मतलब है सब कुछ छोड देना। सन्यास का मतलब है घर द्वार, पत्नी बच्चे, बन्धुबान्धव, एवं धनजायदाद सब को त्याग कर काषायांबर धारण कर जंगलों में चला जाना। इसीलिए लोगों को वे आसान नहीं लगते। परन्तु भगवान श्रीकृष्ण ने उन दोनों क्रियाओं का विस्तृत अर्थ बता कर उन्हें सर्व सुलभ बना दिया।

१. सर्व कर्म फलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः (१८-२)

२. यस्तु कर्म फलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ (१८-११)

ऐसे प्रमाणों के द्वारा गीताचार्य ने कहा कि कर्मफल ईश्वर को समर्पित कर दें तो वही त्याग है। इसलिए यह सर्व सुलभ बन गया।इसी प्रकार गीताचार्य ने सन्यास का भी सुंदर अर्थ बताया। जैसे -

१.अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ (६-१)

२. काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः। (१८-२)

अर्थात् - अग्निहोत्र को छोडना, कोई काम किये बगैर बैठे रहना सन्यास नहीं है। फल की अपेक्षा न करके कर्म करना ही सन्यास है। काम्यकर्म को छोडना ही सन्यास है।'' कितना सुलभ है यह सन्यास! घर द्वार को छोडने की जरूरत नहीं, पत्नी और बच्चों को छोडने की जरूरत नहीं, नौकरी को तिलांजलि देने की जरूरत नहीं, काषायांबर पहनने की जरूरत नहीं, दंड कमंडल लेने की जरूरत नहीं, जंगलों में जाने की जरूरत नहीं। जहाँ के लोग वहीं रह सकते हैं। क्रिया में कर्तृत्व की भावना छोड देनी चाहिए। काम्य बुद्धि का अंत करना चाहिए। गीताचार्य ने कहा कि यही सन्यास है। गीता के इस सन्यास को गृहस्थ भी आचरण में ला सकते हैं। स्त्रियाँ भी आचरण में ला सकती हैं। सभी आचरण में लाकर तर सकते हैं।

योग - योग का शब्द जब कानों में पडता है तब लगता है कि शायद

अष्टांगयोग या हठयोग है। लेकिन गीताचार्य ने योग का अर्थ सरल कर दिया। जैसे -

१. समत्वं योग उच्यते - (२-४८)

२. योगः कर्मसु कौशलम् - (२-५०)

श्रीकृष्ण ने कहा कि चाहे कर्म में सफलता मिले या न मिले चित्त की समस्थिति ही योग है। कर्म फल की अपेक्षा का त्याग ही योग है। "जीव का शिव से तादात्म्य होने में जो भी क्रिया सहायक बनती है वह योग ही है। (युज्यत इति योगः)। इस प्रकार कर्म, भक्ति, ध्यान तथा ज्ञान आदि सभी योग ही हैं। इसीलिए कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यान योग तथा ज्ञानयोग का उल्लेख किया गया। इससे योगाभ्यास का स्मरण कर किसी को डरने की जरूरत नहीं है। जो कर्म के फल की अपेक्षा नहीं करते, हृदय को शुद्ध एवं सम रखते हैं वे ही योगी हैं।

तपस्या - तपस्या का शब्द सुनते ही लोग डरते हैं। क्यों कि लोग समझते हैं कि तपस्वी को धूप, वर्षा एवं शीत में सिर नीचे एवं ऊपर करके खाना पीना सब छोड कर महीनों तक तपते हुए जप करते रहना ही तपस्या है। इसी डर से लोग तपस्या के प्रति उदासीन होते हैं। पर तपस्या के बिना पापों का नाश नहीं होता। ऐसे अवसर पर गीताचार्य ने तपस्या की नई परिभाषा देकर जगत् का उपकार किया। गीता के सत्रहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण ने आदेश दिया कि -

१. देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥ (१७-१४)

२. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥ (१७-१५)

३. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥ (१७-१६)

अर्थात हे मुमुक्षु ! मोक्ष के लिए तपस्या अत्यंत आवश्यक है। लेकिन वह क्लेश जनक भयंकर तपस्या नहीं है। वह सर्वसुलभ एवं आचरण के योग्य है। तपस्या शारीरिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार की है। देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर संबंधी तपस्या है। उद्वेग न करनेवाला, प्रिय, हितकारक एवं यथार्थ भाषण वाचिक तपस्या है। मन की प्रसन्नता, शान्तभाव, भगवच्चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्त:करण के भावों की पवित्रता मन संबंधी तपस्या है।'' भगवान के द्वारा प्रदत्त यह तपस्या यद्यपि सर्व सुलभ है, परन्तु इसकेलिए थोडा सा श्रम करना पडेगा। इन्द्रियों तथा मन को वश में रखना और संयमित रखना आवश्यक है। क्यों कि जन्म जन्मांतर की विषयवासनाओं की मलिनता को धोदेना ही तपस्या है। इन्द्रिय एवं मन को ज्ञान की अग्नि में जला कर उनमें जमी मलिनता को धो देना ही तपस्या है।

इस प्रकार गीताचार्य ने यज्ञ, तपस्या और योग जैसे शब्दों को सर्वसुलभ परिभाषा देकर लोगों को आध्यात्मिक क्षेत्र की तरफ आकर्षित किया। गीता का यह उपकार महान् है।

गीता का स्वरूप

गीता के अठारह अध्याय हैं। वेदों की तरह वह कांडत्र्यात्मक रूप में विभाजित है। वेद का प्रथम भाग कर्म को प्रतिपादित करनेवाली संहिता है। द्वितीय भाग उपासना को प्रतिपादित करनेवाला ब्राह्मण है। तृतीय भाग विज्ञान को प्रतिपादित करनेवाले उपनिषद् हैं। वेदों का सार ही गीता है। इसीलिए वह भी तीन भागों में विलसित है। इसके त्रिषट्क है। प्रथम षट्क कर्मयोग का, द्वितीय षट्क भक्तियोग का और तृतीय षट्क ज्ञानयोग का बोध कराते हैं। फिर भी कर्म षट्क में भक्ति एवं ज्ञान, भक्ति षट्क में ज्ञान एवं कर्म, ज्ञान षट्क में भक्ति एवं कर्म भी चर्चित हैं। यह केवल स्थूल विभाजन मात्र है। जिन्दगी के लिए ये तीनों योग (कर्म, भक्ति, ज्ञान) अत्यावश्यक हैं। जनक की

क्रियाशीलता, बुद्ध का आर्द्र हृदय तथा शङ्कर की मेधा शक्ति तीनों मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के आवश्यक साधन हैं। गीता में ये तीनों योग एक दूसरे से समन्वित हैं। अंत में ये तीनों जीव को परंधाम पहुँचाते हैं।

गीता का प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय के १० वें श्लोक तक का विषय पूर्व पीठिका कहा जाता है। गीता का बोध वास्तव में द्वितीय अध्याय के ११ वें श्लोक "अशोच्यानन्वशोचस्त्वं" से शुरू होता है। इसीलिए गीता के ग्यारहवें श्लोक का बडा महत्त्व है। इसी प्रकार अंत में १८ वें अध्याय के ७३ वें श्लोक तक का विषय उत्तर पीठिका माना जाता है। वह अर्जुन तथा सञ्जय के वाक्यों से युक्त है। इन दोनों को छोड कर बाकी सब भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निस्सृत ज्ञानामृत की धारा है। बीच बीच में अर्जुन के प्रश्न आते हैं। वे साधकों के संशयों के प्रतीक हैं। गीता का बोध संवादों के रूप में किया गया है। इसलिए प्रश्न और उत्तर के रूप में गहन विषय सुलभ कर दिया गया है।

यद्यपि गीता के सभी अध्यायों में भगवत्तत्व ही प्रतिपादित है, तथापि ११ वें अध्याय (विश्वरूप संदर्शन) में वह प्रत्यक्ष दर्शाया गया है। यह गीता की सब से बडी विशेषता है। तत्व का श्रवण ही नहीं अपितु उसका प्रत्यक्ष दर्शन तथा प्रत्यक्ष अनुभव भी आवश्यक हैं। स्कूलों की उच्च कक्षाओं में रसायनिक शास्त्र पढाते हुए आचार्य मौखिकज्ञान के साथ साथ अनुभवज्ञान भी कराते हैं। इसी तरह भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के मध्यभाग में अपना स्वरूप अर्जुन को प्रत्यक्ष रूप से दिखा कर अनुभवज्ञान की आवश्यकता पर जोर दिया।

गीता में यद्यपि कई योगों का बोध कराया गया है, मगर वे सब कर्मयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग एवं ज्ञानयोग के अंतर्गत लाये जा सकते हैं। उन उन योगों का अध्ययन करते समय लगता है कि गीता में यही बताया गया। भगवान इसी का समर्थन कर रहे हैं। कर्मयोग चाहनेवालों को लगता है कि

गीता में कर्मयोग का ही समर्थन किया गया है। इसके लिए उसमें कई प्रमाण भी मिलते हैं। भक्तियोग और ज्ञानयोग की भी यही बात है। वास्तव में भगवान ने सभी योगों का समर्थन एवं समन्वय करके स्पष्ट किया कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए सब आवश्यक हैं। अपने अपने संस्कारों के अनुसार गीता के ज्ञान को हृदयंगम कर साधक लोग तर सकते हैं। चूँकि एक एक योग में बाकी योगों का विषय भी निहित है, इसलिए एक योग का पाठ करनेवाले परोक्षरूप से दूसरे योगों के ज्ञाता भी बनते हैं। सब योगों का सम्मिश्रण तथा सर्वयोग समन्वय गीता के अद्भुत चमत्कारों में से एक है।

गीता के तात्पर्य का निर्णय

यद्यपि गीता में सभी योगों का समन्वय किया गया तथापि समीक्षकों ने गीता में प्रतिपादित मुख्य विषय का निर्धारण करने के लिए काफी प्रयास किया। एक दो विषयों का उल्लेख यहाँ किया जाएगा। आमतौर पर ग्रन्थ के तात्पर्य का निर्धारण करने केलिए छः साधन काम में लाये जाते हैं जो षड्विध लिङ्ग कहलाते हैं। वे निम्न प्रकार हैं - (१) उपक्रमोपसंहार (२) अभ्यास (३) अपूर्वत्व (४) फल (५) अर्थवाद (६) उपपत्ति। इन छः साधनों के आधार पर गीता के प्रधान आशय के निर्धारण का प्रयत्न किया गया। कुछ समीक्षकों के कथन के अनुसार उपर्युक्त षड्विध लिङ्गों की कसौटी पर कसने के बाद गीता का प्रधान तात्पर्य शरणागति (भक्ति) ही ठहरता है। उसका विवरण निम्न प्रकार है -

(१) (अ) **उपक्रम** -

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (२-७)

अर्थात् - "हे कृष्ण! मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरण में हूँ। मुझको शिक्षा दीजिए।" इस तरह गीता का आरंभ शरणागति से हुआ।

(आ) **उपसंहार** -

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' (१८-६६)

अर्थात् - "सब विषयों को छोड कर मेरी शरण में आ जा।" इस तरह गीता शरणागति से ही समाप्त हुयी।

गीता के मध्य भाग में 'अनन्याश्चिन्तयन्तोमां . . . योगक्षेमं वहाम्यहम्" - वाले श्लोक के द्वारा भी शरणागति का ही बोध कराया गया। इस तरह गीता के आदि, मध्य तथा अंत में शरणागति (भक्ति) को ही प्रोत्साहन मिला।

(२) **अभ्यास** -

१२ वें अध्याय के "मय्येव मन आधत्स्व . . . न संशय:" तथा "अद्वेष्टा सर्व भूतानां . . . क्षमी" आदि श्लोकों और ७, १०, ११, १५ वें अध्यायों के कुछ और श्लोकों से भक्ति तथा शरणागति से संबंधित अभ्यास मिलता है।

(३) **अपूर्वत्व** - यद्यपि गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान के बारे में कई जगहों पर कहा गया है तथापि ज्ञान एवं कर्म सहित भक्ति का ही प्रतिपादन ज्यादा किया गया। यही उसका अपूर्वत्व है।

(४) **फल** -

भगवान की आज्ञा का पालन फल है। "करिष्ये वचनं तव" भगवान की आज्ञा के अनुसार भक्त कार्य करता है। यहाँ भक्ति की ही प्रधानता है।

(५) **अर्थवाद** -

(१) "स्वल्प मप्यस्य" ईश्वर को अर्पित कर भक्ति के साथ जो क्रिया होती है या जो शरणागति होती है वह (थोडा सा ही सही) भवभय से मुक्ति प्रदान करती है।

(२) जनक आदि का दृष्टांत - भगवान को सर्वस्व समर्पित कर उन्होंने कर्म किये।

(६) **उपपत्ति (युक्ति)** -

'मय्यावेश्यमनोयेमां' आदि श्लोकों के द्वारा भक्ति से संबंधित उपपत्ति

(युक्ति) का बोध अच्छी तरह कराया गया।

इस प्रकार षड्विध लिङ्गों के द्वारा कुछ समीक्षकों ने शरणागति को ही गीता का प्रधान विषय माना है। दृष्टांत के लिए निम्न लिखित श्लोकों का भी उल्लेख किया जाता है -

१. भक्त्या मामभिजानाति . . . (१८-५५)
२. नाहं वेदैर्न तपसा . . . (११-५३)
३. भक्त्यात्वनन्यया शक्य . . . (११-५४)
४. तेषामहं समुद्धर्ता . . . (१२-७)
५. अहं सर्वस्य प्रभवो . . . (१०.८)
६. मत्तः परतरं नान्यत् . . . (७-७)
७. भजस्व माम् . . . (९-३३)

और कुछ समीक्षक निष्काम कर्म को ही गीता का प्रधान विषय मानते हैं। उनका निर्णय है कि गीता के बोध की समाप्ति के बाद अर्जुन ने जो कुछ किया वही गीता का प्रधान विषय है। अकर्मण्य होकर जो अर्जुन रथ में बैठ गया वही अर्जुन गीता बोध के बाद उत्साहित होकर ''करिष्ये वचनं तव'' कह कर युद्ध क्षेत्र में कूद पडा। फल की अपेक्षा किये वगैर अर्जुन ने कर्म किया। इसलिए निष्काम कर्म का बोध ही गीता का प्रधान विषय है। इसके लिए गीता के निम्न लिखित कई श्लोकों का भी उल्लेख किया जाता है।

१. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर। (३-१९)
२. नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। (३-८)
३. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (२-४७)
४. तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते। (५-२)
५. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। (३-२०)
६. असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः। (३-१९)

और कुछ समीक्षक ज्ञान को ही गीता का प्रधान तात्पर्य मानते हैं। अर्जुन के

मोह का कारण क्या है ? अज्ञान ही तो है। मोह ही तो है। वह कैसे दूर हुआ ? अर्जुन कैसे कह सका कि "नष्टो मोहः, मोहोऽयं विगतो मम" (मेरा अज्ञान दूर हो गया।) ज्ञान के कारण कह सका। ज्ञान से ही अज्ञान दूर होता है। और किसी तरह भी अज्ञान दूर नहीं होता। अंधेरा केवल प्रकाश से ही दूर होता है और किसी से नहीं। अर्जुन शोकाकुल हुआ। वह शोक आत्मज्ञान से ही दूर हो सका। उपनिषदों के अनुसार 'तरति शोक मात्मवित्' अर्थात् आत्मविद् ही दुःख को तर सकता है। इसीलिए गीताचार्य द्वितीय अध्याय से ही अखंड आत्मज्ञान का उपदेश देने लगे। गीताचार्य ने मुँह खोलते ही कर्म के बारे में नहीं कहा। भक्ति का प्रतिपादन नहीं किया। ध्यान का वर्णन नहीं किया। स्वस्वरूप की स्थिति का वर्णन किया। जनन मरण रहित आत्मा के बारे में बताया। वे बार बार कहते रहे कि हे अर्जुन! तू नश्वर पांच भौतिक देह पंजर नहीं है। विश्वव्याप्त अखंड आत्मा की चेतनता है। यही वजह है कि भगवान श्रीकृष्ण ने आरंभ में ही आत्मज्ञान की विशेषता का वर्णन किया। आगे चलकर ज्ञान तथा उसकी महिमा का वर्णन कई श्लोकों में किया। जैसे -

(१) सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते। (४-३३)

(२) न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। (४-३८)

(३) . . . ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। (७-१८)

(४) ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति। (४-३९)

ऐसे कितने ही दृष्टांत गीता में भरे पडे हैं। गीता के अंत में भगवान का उपसंहार संबंधी वाक्य निम्न प्रकार हैं।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥ (१८-७०)

अर्थात् - "जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवादरूप गीताशास्त्र को पढेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानयज्ञ से पूजित होऊँगा।" ग्रन्थ के अंत में भगवान ने अपने सारे बोध को ज्ञानयज्ञ कहा। इससे स्पष्ट है कि गीता का प्रधान विषय ज्ञान का

बोध ही है। गीताचार्य ने ७ वें अध्याय के १८ वें श्लोक में कहा कि 'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' अर्थात् ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है। इससे स्पष्ट है कि ज्ञान और ज्ञानी को गीताचार्य ने बडी प्रधानता दी। इसके अलावा हमें अर्जुन के जीवन पर ध्यान देना चाहिए। गीता बोध के बाद अर्जुन ने युद्ध किया, यह तो ठीक है। परन्तु धीरे धीरे वे आत्मज्ञानी बने। अंत में सर्वस्व त्याग कर सन्यासाश्रम स्वीकार किया। निर्विकल्प ध्यान के लिए एकांत में चले गये। यह बात महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व से स्पष्ट होती है। तभी जीव पूर्ण लक्ष्य तक पहुँच सकेगा जब कि उसका मन अंतर्मुखी होकर आत्मा में स्थिर होगा। निम्न लिखित श्लोक में भगवान ने स्पष्ट कहा कि -

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। (६-२५)

अर्थात् धैर्ययुक्त बुद्धिद्वारा मन को परमात्मा में स्थित करके, परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे।''

अतः ज्ञान ही मुख्य है। ज्ञान ही दुःखराहित्य एवं परमानन्द की प्राप्ति कराता है। भगवान ने कहा कि -

तेषां सतत युक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (१०-१०)

अर्थात् जो भक्त निरंतर मेरे ध्यान में लगे रहते हैं, प्रीति के साथ मेरा भजन करते रहते हैं उन्हें मैं बुद्धियोग (ज्ञान) प्रदान करता हूँ जिससे वे मुझको प्राप्त होते हैं।''

इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति, निष्कामकर्म तथा ध्यान आदि ज्ञान के उद्भव के लिए सहायक बनते हैं। ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। अपने स्वरूप को जानना ही मोक्ष है। जानने की शक्ति ही ज्ञान है। वह शक्ति सब में नहीं होती। भगवदनुग्रह से ही वह प्राप्त होती है। वह अनुग्रह सब को प्राप्त नहीं होता। जो निष्कामकर्म, भजन, कीर्तन, जप, तप तथा परोपकार आदि के द्वारा परमात्मा की अर्चना बहुत समय तक करते हैं उन्हीं को भगवदनुग्रह प्राप्त होता है।

महापुरुषों ने कहा है कि -

भगवद्भक्ति युक्तस्य तत्प्रसादात्मबोधतः ।
सुखं बन्ध विमुक्तिः स्यादिति गीतार्थ संग्रहः ॥

जिसमें भगवद्भक्ति होती है उसी को भगवदनुग्रह प्राप्त होता है। जिसे आत्मज्ञान प्राप्त होता है उसे बंध मुक्ति आसानी से मिलती है। यही गीता का सार है।

एक महानुभाव से पूछा गया कि गीता का सार क्या है ? उन्होंने जवाब दिया कि W है। अर्थात् W x W x W - work, worship, wisdom कर्म, भक्ति और ज्ञान। कर्म से भक्ति, भक्ति से ज्ञान, और ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति, यही उसका अर्थ है।

उपर्युक्त विषयों का विश्लेषण करने पर यही समीचीन लगता है कि ज्ञान ही गीता का प्रधान विषय है। कर्म, भक्ति एवं ध्यान आदि सब साधन चित्तशुद्धि के द्वारा ज्ञान के विकास में सहायक बनते हैं। मोक्ष का प्रधान साधन ज्ञान ही है। बाकी सब ज्ञान के उत्कर्ष के महान साधन हैं।

गीता बोध

मानव को देवता के रूप में परिवर्तित करने की शक्ति गीता बोध में निहित है। नहीं तो अर्जुन जैसा साधारण मनुष्य क्या महात्मा बन सकता था? श्रीकृष्ण ने अमृत की धारा बहा दी। अर्जुन ने उस अमृत का पान कर कृतकृत्य बन गया। ऐसे गीताबोध के माहात्म्य पर ध्यान देना आवश्यक है।

पाठशाला में अध्यापक जिस प्रकार विद्यार्थी को एक एक विषय अच्छी तरह समझाता है, उसी प्रकार करुणामय भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन का हाथ पकड कर सीढी दर सीढी चढा कर अंत में मोक्ष धाम पहुँचा दिया। "**मां नमस्कुरु**" (मुझे प्रणाम करो) जैसी छोटी सी साधना से शुरू कर 'तत्वमसि' जैसे महावाक्य तक के साधनाक्रम भगवान ने प्रेम से अर्जुन को

बता दिया। गीता का मातृहृदय है। सांसारिक सागर में गिर कर गोते लगा रहे जीवों पर दया करके गीतामाई ने उन्हें अच्छा मार्ग दिखाया। पहले कर्म का बोध कराया। तृप्त न होने पर भक्ति का प्रतिपादन किया। तब भी तृप्त न होने पर ध्यान की पद्धति सिखायी। तब भी तृप्त न होने पर ज्ञान का बोध कराया। इस प्रकार सभी योगों का प्रतिपादन कर जीव केलिए मोक्ष का मार्ग गीतामाई ने प्रशस्त किया। अब हम गीता में प्रतिपादित चार योगों का विश्लेषण करेंगे।

गीता का कर्मयोग

गीता सन्यासियों के लिए नहीं अपितु गृहस्थों के भी काम आती है। विविध धंधों में लगे व्यक्तियों के लिए भी गीता उपयोगी है। इसमें अन्य योगों के साथ साथ कर्मयोग का विवरण दिया गया है। लोग समझते हैं कि वेदान्त सामान्य जीवन से परे है। परन्तु गीताचार्य ने स्पष्ट किया कि यह विचार ठीक नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया कि सांसारिक कार्यों को दैवी भावना से कर सकते हैं। भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में समन्वय साधा जा सकता है। उन्होंने प्रवृत्ति में निवृत्ति का मार्ग सुझाया। संसार में रह कर कर्म करते हुए सन्यास निभाने का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने कहा कि - ''योगस्थः कुरु कर्माणि।'' चित्त को ईश्वर में स्थित कर अपने काम करो। ईश्वर को फल समर्पित कर, कर्तृत्व त्याग कर कर्म करो। इससे कर्म में नहीं बंधोगे। गणित शास्त्र का एक सिद्धांत है - Infinity + anything = Infinity अनंत के साथ कुछ भी जोडो अनंत ही बचेगा। दैव अनंत है। ज्ञान अनंत है। इसलिए दैवीदृष्टि से आत्मज्ञानी बन कर जो भी कार्य किया जाय, अंत में दैव ही शेष बचेगा। अतः कर्म बंध नहीं होगा। यही गीता के कर्मयोग का रहस्य है। ईश्वर को भूल कर, फल की आशा से जो भी काम किया जाय वह जीव को बद्ध करेगा। तब जीव कर्म बंध में बंध जाएगा।

एक महानुभाव ने कहा कि Work divorced of spirituality is artificial flower which has neither life nor fragrance दैवदृष्टि

रहित कार्य, परमार्थ एवं पवित्रता से रहित क्रिया गंध तथा जीवरहित कृत्रिम पुष्प जैसा है। अतः कर्म बडा नहीं है। कर्म करने की विधि बडी है। गीता यह नहीं बताती कि कौन सा कर्म करना चाहिए। गीता बताती हैं कि कर्म कैसे करना चाहिए। इस सूत्र के अनुसार अलग अलग आश्रमों तथा संप्रदायों वाले अपने धर्मों और कर्मों का पालन कर सकते हैं। व्यापारी व्यापार कर सकता है। अफसर नौकरी कर सकता है। किसान खेती बाडी कर सकता है। भंगी अपना काम कर सकता है। पुरोहित परोहिताई कर सकता है। क्षत्रिय युद्ध कर सकता है। परन्तु गीता आदेश देती है कि ईश्वर का स्मरण करते हुए, फल की अपेक्षा न कर ईश्वरार्पण बुद्धि से सभी को अपना अपना कर्म करना चाहिए। तब कर्म से संबंधित बंधन दूर होगा। कर्म करने की क्रिया पवित्र बनेगी। व्यवहार में परमार्थ के प्रयोग की यह कला गीता की विशेषता है। गीता को विश्व व्याप्त बनानेवाली प्रक्रिया यही है। गीता बताती है कि ज्ञान की प्राप्ति के बाद निवृत्ति अनिवार्य नहीं है। अर्जुन का जीवन ही इसका अच्छा दृष्टांत है। मोह (अज्ञान) दूर हुआ, तब भी अर्जुन ने प्रवृत्ति नहीं छोडी। संसार नहीं छोडा। कुछ लोगों की यह धारणा बिल्कुल गलत है कि बच्चे गीता पढ कर जंगलों को भाग जायेंगे। अर्जुन ने ही ऐसा नहीं किया तो दूसरे ऐसा क्यों करेंगे ? अतः सब को गीता का आश्रय लेकर लाभ उठाना चाहिए। ज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। चित्तशुद्धि के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होगा। निष्कामकर्म किये बिना चित्त शुद्ध नहीं होगा। इसलिए सभी साधकों को पहले कर्मयोग अत्यंत आवश्यक है।

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारण मुच्यते। (६-३)

उपर्युक्त श्लोक में भगवान ने यही बात स्पष्ट रूप से बतायी है। भगवान ने कहा कि योग में आरूढ होने की इच्छा रखनेवाले मननशील पुरुष केलिए योग की प्राप्ति में निष्कामभाव से कर्म करना ही चाहिए। यह उसका मुख्य अंश है। कर्म को छोड कर कोई रह नहीं सकता। परन्तु कर्म को पवित्र बना लेने की

पद्धति अवश्य सीखनी चाहिए। यही श्रीकृष्ण का बताया मंत्र है। फल की अपेक्षा न कर कर्म करना ही कर्म को पवित्र बनाने की पद्धति है। इसी को कर्मयोग कहते हैं। कुछ वेदान्तियों ने जिस कर्म को असंगत माना उसी को स्वीकार कर गीता ने उसे निष्काम कार्य बता कर मोक्ष के लिए उपयोगी बना दिया। गीता के आविर्भाव के पूर्व संसार में दो वर्गों के लोग थे। कर्म करते हुए फल चाहनेवाले एक वर्ग में थे तो कर्मों को पूर्ण रूप से त्यागनेवाले दूसरे वर्ग में थे। गीता ने तीसरे और एक वर्ग का सृजन किया। कर्म करते हुए उसके फल की अपेक्षा न करनेवाले इस वर्ग में आ गये। ऐसे लोग कर्म के बंधन में नहीं बंधते। अत: हम चाहते हैं कि गीतामाई के द्वारा प्रतिपादित इस तीसरी पद्धति को अपना कर लोग अपना कर्मक्षेत्र शुद्ध बना लें, अपने हृदय को पुनीत बना लें, फिर ज्ञान के आविर्भाव से परमानन्द का अनुभव करें।

गीता का भक्तियोग

यद्यपि गीता में भिन्न भिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया तथापि उन सब में एक ही विचार धारा योग का संचार हुआ। सिद्धांत को आचरण में लाने का तरीका ही योग है। वह एक कला है। लोगों के विचारों तथा प्रवृत्तियों में भिन्नता होने के कारण सिद्धान्तों में भी भिन्नता आ गयी। रोग बढ गया तो उसके लिए दवाएँ भी ज्यादा तेज हो गयीं। यही वजह है कि गीता में विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख करना पडा। जैमिनी के कर्म सिद्धान्त, नारद के भक्ति सिद्धांत, पतञ्जलि के योग सिद्धांत तथा वेदव्यास के ज्ञान सिद्धांत, सब का प्रतिपादन गीता में किया गया। गीता ऐसी दूकान है जहाँ सब चीजें मिलती हैं। वहाँ हर कोई जा सकते हैं। इच्छित चीजें पा सकते हैं। यद्यपि विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन गीता में किया गया तथापि उन सब में सुंदर समन्वय लाने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया। यह गीता की बडी विशेषता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए कर्म, भक्ति, ध्यान एवं ज्ञान सब की आवश्यकता है। इनमें से एक भी छोडा नहीं जा सकता। कर्म से पवित्रता, भक्ति एवं ध्यान से प्रकाश और ज्ञान

से एकता की प्राप्ति होती है। जिस तरह घर के निर्माण के लिए गारा, ईंटें और लकडी आदि की आवश्यकता है, जिस प्रकार रोटी बनाने के लिए आटा, घी और आग की आवश्यकता है उसी प्रकार कैवल्य की प्राप्ति के लिए कर्म, भक्ति, ध्यान तथा ज्ञान की आवश्यकता है। इनमें से एक साधन की भी कमी हो जाय तो लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। इसीलिए महापुरुष अपने जीवन में सभी साधन जुटा कर लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। परन्तु हाँ, उन उन महानुभावो की प्रवृत्ति के अनुसार उनमें एक एक साधन का आधिक्य हो सकता है। फिर भी लक्ष्य एक ही है। वह है अहंकार का त्याग।

अब भक्ति मार्ग पर विचार करेंगे। भगवान के प्रति प्रीति ही भक्ति है। भक्ति की तन्मयता में लीन व्यक्ति भगवान को ही सब कुछ मानता है। भगवान से कहेगा कि मेरा कुछ नहीं है। सब कुछ तुम्ही हो। तुम ही पिता हो। माता हो गुरु हो। सखा हो। अर्जुन ने भी ऐसा ही किया। लेकिन सामान्य भक्ति से गीता तृप्त नहीं, वह अनन्य भक्ति चाहती है। गीता में अनन्य शब्द का प्रयोग कई बार किया गया। जैसे -

१. अनन्याश्चिन्तयन्तो मां . . . . (९-२२)
२. अनन्येनैव योगेन . . . (१२-६)
३. अनन्यचेताः सततं . . . (८-१४)

जहाँ अन्यभाव नहीं वहाँ अनन्य भाव ही रहता है। भगवान ने कहा कि ऐसी अनन्य भक्ति, ऐसी अव्यभिचारिणी भक्ति जिसकी होती है वह मेरा अत्यंत प्रीत पात्र है। भवसागर से उसका उद्धार मैं करूँगा। किसी कारण वश मन भगवान पर केन्द्रित न होने तो अभ्यास करके मन को उस पर केन्द्रित करना चाहिए। क्यों कि संसार में अविनाशी वस्तु परमात्मा को छोड दूसरी कुछ नहीं है। बाकि सब चीजें अशाश्वत हैं। अस्थिर हैं। उनका विश्वास करें तो शान्ति एवं सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसीलिए मायातीत परमेश्वर का आश्रय मायांतर्गत जीव को लेना चाहिए। इसी आश्रय को भक्ति कहते हैं।

क सर्वेश्वर एवं सद्गुरु का अनुग्रह नहीं होगा तब तक जीव भयंकर भवसागर र नहीं कर सकेगा। यह एक परम रहस्य है। इस रहस्य को न जानने के कुछ लोग प्रकृति पर विजय पाने का प्रयत्न कर असफल होते हैं। में प्रकृति परमेश्वर के ही अधीन है। जो परमात्मा के आश्रय में नहीं कृति उनके वश नहीं होती। रुकावटें दूर नहीं होतीं। भगवान भक्ति के न हैं। जो भक्ति से भगवान की आराधना करते हैं, जो भगवान पर चित्त न्द्रित करते हैं उन पर वे अनुग्रह करते हैं। उनकी आपदाएँ दूर करते हैं।

१. मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (१८-५८)
२. तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥ (९-२२)

उपर्युक्त वाक्यों द्वारा भगवान श्रीकृष्ण ने इसी बात को स्पष्ट किया।

मोक्ष का मुख्य साधन ज्ञान है। भक्ति के बिना ज्ञान की प्राप्ति संभव है। शास्त्र घोषित करते हैं कि "भक्त्या ज्ञानं प्रजायते", याने भक्ति से ही का आविर्भाव होता है। भक्ति रूपी पुष्प जब विकसित होगा तब ज्ञान फल फलेगा। गीता के विभूतियोग में कहा गया कि जीव की भक्ति से होकर भगवान ही ज्ञान फल याने बुद्धियोग को उसे प्रदान करते हैं।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ (१०-१०)
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (१०-११)

गीताचार्य ने प्रारंभिक भक्ति से तृप्त न होकर पराभक्ति के बारे में भी है। फल पुष्पादि से भगवान की अर्चना करना सामान्य पूजा है। क्योंकि ल पुष्प ईश्वर के द्वारा निर्मित हैं। वे मानव के द्वारा निर्मित नहीं हैं। न की दी हुयी वस्तु फिर भगवान को ही अर्पित करना सामान्य विषय

है। जीव अपने हृदय रूपी उद्यान में स्वयं पैदा कर सुगुणरूपी पुष्प एवं दैवी संपत्ति रूपी पुष्पराशि को भगवान के चरण कमलों पर अर्पित करे तो भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं। यही परापूजा है। इसी को पराभक्ति भी कहते हैं। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने भक्तियोग (१२ वाँ अध्याय) में छोटी छोटी पूजाओं की चर्चा न करके मैत्री, करुणा आदि पैंतीस सुगुणों का वर्णन किया। ऐसे सद्गुण रूपी कुसुमों से जो अपना हृदय क्षेत्र अलंकृत करेगा वही सच्चा भक्त माना जाता है। इसलिए भक्तियोग में लीन महानुभावों को अत्यंत जागरूक रहना चाहिए। सामान्य पूजाओं के साथ मैत्री आदि सुगुणों को भी अपना कर भगवान की कृपा के पात्र बनना चाहिए। तभी भक्तियोग परिपूर्ण होगा।

अन्य सभी योगों में से भक्तियोग सर्वसुलभ है। हर व्यक्ति उसे पासकता है। कठोर साधन इसके लिए जरूरी नहीं हैं। भगवान के प्रति निष्कलंक प्रेम बना रहे तो काफी है। लगभग हर अध्याय में भक्तियोग का कुछ न कुछ विवरण मिलता है। अखंड ज्ञानयोग संबंधी १४ वें अध्याय के अंत में भगवान ने बताया।

मांच योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ (१४-२६)

अर्थात् - जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोग द्वारा मुझको भजता है वह त्रिगुणातीत होकर सच्चिदानन्द ब्रह्म के साक्षात्कार के लिये योग्य होता है।

विश्वरूप संदर्शन के समय भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यंत रहस्य प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा -

भक्त्यात्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ (११-५४)

अर्थात् - इस प्रकार विश्वरूप को समझना या देखना या उसमें प्रवेश करना अनन्यभक्ति से ही संभव है। अन्य किसी से नहीं।''

इससे स्पष्ट होता है कि भगवान के दर्शन तथा भगवान में तल्लीनता

के लिए भक्ति ही प्रधान साधन है। अक्षर परब्रह्म योग में कहा गया है कि -

पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ (८-२२)

अर्थात् - जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्वभूत हैं और जिस सच्चिदानन्दघन परमात्मा से यह सब जगत् परिपूर्ण है वह सनातन अव्यक्त परम पुरुष अनन्य भक्तियोग से प्राप्त होता है।''

इससे स्पष्ट है कि भक्ति की कितनी अलौकिक शक्ति है। इसलिए हम चाहते हैं कि भगवान के कथन पर विश्वास कर सर्व सुलभ भक्तियोग का सब लोग आश्रय लें और ब्रह्मानन्द सागर में गोतें लगावें।

गीता का राजयोग

सूर्य किरणों में सात रगं हैं। सातों मिल कर श्वेत रंग में दिखाई पडते हैं। इन्द्र धनुष में यह सत्य दृग्गोचर होता है। पुष्प एवं ओषध अपने लिए आवश्यक रंग सूर्यकिरणों से स्वीकार कर तरक्की करते हैं। सूर्य किरणों में एक ही रंग होता तो ओषध एवं पुष्पों में इतने रंग नहीं होते। इसी प्रकार गीता के अठारह अध्यायों में विभिन्न योग प्रतिपादित हुए हैं। उनमें से अपनी इच्छा के अनुसार हर कोई योग स्वीकार कर सकते हैं। ब्रह्म साक्षात्कार केलिए गीता में अनेक योग बताये गये हैं। उनमें राजयोग एक है। इसी को ध्यान योग कहते हैं। आत्मसंयम योग भी कहते हैं। महर्षि पतञ्जलि ने इस योग का विस्तार से वर्णन किया। राजयोग आठ अंगों से विलसित हैं। अष्टांगयोग इसी को कहते हैं। वे आठ अंग निम्न प्रकार हैं। (१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारण (७) ध्यान (८) समाधि। इनका स्पष्टीकरण गीता में किया गया है। गीता में जहाँ जहाँ उनका विवरण दिया गया वहाँ वहाँ का विवरण नीचे दिया जाता है।

१. **यम** - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह इन पांच गुणों का संगम ही यम है।

१. अहिंसा	-	अहिंसा क्षान्ति रार्जवम् (१३-८)
		अहिंसा समता तुष्टिः (१०-५)
		ब्रह्मचर्यमहिंसा च (१७-१४)
२. सत्य	-	सत्यं प्रियहितं च यत् (१७-१५)
		अहिंसासत्यमक्रोधः (१६-२)
३. अस्तेय	-	अनपेक्षः शुचिर्दक्षः (१२-१६)
४. ब्रह्मचर्य	-	ब्रह्मचर्यमहिंसा च (१६-१४)
		यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति (१८-११)
		ब्रह्मचारिव्रते स्थितः (६-१४)
५. अपरिग्रह	-	कामं क्रोधं परिग्रहम् - विमुच्य (१८-५३)

२. **नियम** - शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, ये पाँचों गुणों का संगम नियम है।

१. शौच	-	तेजः क्षमा धृतिः शौचं . . . (१६-३)
		आचार्योपासनं शौचं . . . (१३-८)
		देव द्विज गुरु प्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम् (१७-१४)
२. संतोष	-	संतुष्टः सततं योगी (१२-१४)
		संतुष्टो येन केनचित् (१२.१९)
३. तप	-	शारीरं तप उच्यते (१७-१४)
		वाङ्मयं तप उच्यते (१७-१५)
		तपो मानस मुच्यते (१७-१६)
		तपो दानं यशोऽयशः (१०-५)
४. स्वाध्याय	-	स्वाध्यायस्तप आर्जवम् (१६-१)
		स्वाध्यायाभ्यसनं चैव (१७-१५)

५. ईश्वर प्रणिधान - मामेकं शरणं व्रज (१८-६६)
तमेव शरणं गच्छ (१८-६२)

३. **आसन** - स्थिर मासन मात्मनः (६-११)

४. **प्राणायाम** - प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामं परायणाः (४-२९)
प्राणापानौ समौकृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणा (५-२७)

५. **प्रत्याहार** - शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा (१८-५१)
बाह्यस्पर्शे ष्वसक्तात्मा (५-२१)
यतो यतो निश्चरति (६-२६)
यदा संहरते चायं (२-५८)

६. **धारण** - आत्मसंस्थं मनःकृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् (६-२५)
मय्येवमन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय (१२-८)

७. **ध्यान** - ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति (१३-२५)
ध्यान योग परो नित्यं (१८-५२)
उपविश्यासने युञ्ज्येद्योग मात्मविशुद्धये (६-१२)

८. **समाधि** - समाधावचला बुद्धिः (२-५३)
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां . . . समाधौ न विधीयते (२-४४)
प्रशान्तमनसं हयेनं . . . ब्रह्मभूत मकल्मषं (६-२७)
सुखमात्यन्तिकं यत्तत् . . . न चैवायं स्थितिश्चलति तत्वतः
(६-२१)

इस प्रकार गीता में राजयोग के अष्टांगों का अच्छीतरह पोषण किया गया। गीता के छठे अध्याय में बताया गया कि ध्यान में लीन योगी को किस स्थल पर, किस प्रकार, किन नियमों के अनुसार किन पद्धतियों पर चल कर ध्यानादि को आचरण में लाना चाहिए। गीताचार्य ने साधकों को बताया कि आहार, निवास तथा अनुष्ठान संबंधी नियमों के विषय में निष्ठा के साथ रह कर उनका पालन करना चाहिए। साधना के बारे में छोटी से छोटी बात का भी स्पष्टीकरण करना गीता की विशेषता है। साधकों को गीता की शिक्षा पर

ध्यान देकर साधना संबंधी नियमों का पालन करना चाहिए। त
लक्ष्य तक पहुँच सकेगा।

योग माने क्या है ? पतञ्जलि ने कहा कि चित्तवृत्तियों
करना ही योग है। (योग श्चित्तवृत्ति निरोधः) कई जन्मों से अर्जित
प्रभाव से इन्द्रिय, और मन बाह्य संसार के प्रति आकर्षित होते
वासनाओं की ओर दौडते हैं। उन्हें रोकना चाहिए। कछुआ जिस त
अंगों को अंदर की ओर खींच लेता है उसी तरह इन्द्रिय एवं मन
स्पर्श आदि से मोड कर अंतर्मुखी बनाना चाहिए। उन्हें आत्मा
करना चाहिए।

बाह्य संसार संबंधी विषय वासनाएँ जब विचारों के बल
वैराग्य से रोके जाते हैं तब मन अपने आप ही आत्मा में स्थित ह
क्रिया को राजयोग कहते हैं। राजयोग के सार को भगवान श्रीकृ
लिखित श्लोक में स्पष्ट किया -

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्। (६-२५)

अर्थात् मन को आत्मा में स्थित करके बाह्य विषयों का चिंतन न
चाहिए। यहाँ दो साधन सूचित किये गये। (१) विषयों का विस्म
आत्मस्मरण। केवल विषयों का विस्मरण काफी नहीं है, आत्म
जरूरी है। प्रारंभिक स्थिति में मन किसी भी चिंता के बिना नहीं रह
इसलिए दैवचिंतन या आत्मविचार के आश्रय में पहले जाना चाहि

ज्यों ज्यों साधना तेज होगी त्यों त्यों मन अतिसूक्ष्म हो कर
स्थिति में पहुँचेगा। तब स्वस्वरूप की स्थिति को छोड कोई भी दूस
नहीं रहेगा। अतः पहले दुःसंकल्प से मन को मोड कर सत्संकल्प
लगाना चाहिए। फिर वहाँ से निःसंकल्प की स्थिति को ही समाधि
वास्तव में यह स्थिति सुलभ नहीं है। क्यों कि मन चंचल है। अर्जुन
कि हवा को रोकना जितना कठिन है उतना ही कठिन है मन को

वासनाओं के बल के अनुसार मन की चपलता रहती है। अतः हर दिन मन को विषय वासनाओं की ओर जाने से रोकते हुए साधक को साधना करनी चाहिए। इससे जल्दी ही मन वश में हो जाएगा। श्रीकृष्ण ने कहा -

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। (६-३५)

इसी सिद्धान्त का स्पष्टीकरण वेदांतशास्त्र ने दूसरे ढंग से किया। उसने कहा कि वासनाक्षय, मनोनाश तथा तत्वज्ञान, इन तीनों से जीव ब्रह्म साक्षात्कार कर सकता है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए मन का नियंत्रण आवश्यक है। मन के नियंत्रण के लिए वासनाओं का क्षय आवश्यक है। वासनाओं के क्षय के लिए तत्वविचार आवश्यक है। इसलिए अभ्यास, वैराग्य, तत्वचिंतन, ध्यान की निष्ठा आदि के द्वारा किसी न किसी तरह मन को काबू में कर लेना चाहिए। तभी भवसागर को तर सकते हैं। राजयोग का निष्कर्ष यही है।

गीता का ज्ञानयोग

बताइए कि जीव को दुःख किसकी वजह से होता है ? शरीर से। शरीर किसकी वजह से प्राप्त होता है? कर्म से। कर्म किसकी वजह से प्राप्त होता है? राग आदि से। राग आदि किसकी वजह से होते हैं? अज्ञान से। वह अज्ञान कैसे दूर होगा ? ज्ञान से। अतः दुःख से छुटकारा ज्ञान से ही प्राप्त होता है। अपने स्वरूप को भूलने से जीव बंधन में बंधता है। अपने स्वरूप के स्मरण से मोक्ष प्राप्त करता है। स्वस्वरूप के संधान को ही विज्ञ लोग ज्ञान कहते हैं। जो साधक मोक्षरूपी परमशान्ति पाना चाहता है उसे उस प्रकार का ज्ञानानुभव प्राप्त करना चाहिए। गीताचार्य यही सत्य निम्न लिखित श्लोक के द्वारा स्पष्ट करते हैं -

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि गच्छति। (४-३९)

गीता के चौथे अध्याय में ज्ञानयोग का स्पष्टीकरण कई रीतियों से किया गया। जैसे -

१. ज्ञान तपस्या - ज्ञान रूपी तपस्या से कई लोग पुनीत हुये।

२. ज्ञान यज्ञ - धन आदि के यज्ञ से ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है।

३. ज्ञान-नाव - पाप समुंदर को ज्ञान की नाव के द्वारा पार कर सकते हैं।

४. ज्ञान की आग - ज्ञान की आग सभी कर्म एवं लकडियों को जला कर भस्म कर सकती है।

५. ज्ञान खड्ग - अज्ञान से जनित संशय को ज्ञानरूपी खड्ग से काटना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ज्ञान की श्रेष्ठता के बारे में ऐसे कितने ही उपमान प्रकट कर चुके हैं। पांचवें अध्याय में भी ज्ञान का वर्णन सूर्य के रूप में किया। जैसे -

१. बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः। (४-१०)
२. श्रेयान्द्रव्य मयाद्यज्ञाज्ज्ञान यज्ञः परंतप। (४-३३)
३. सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि। (४-३६)
४. ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा। (४-३७)
५. तस्मादज्ञान संभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः। (४-४१)
६. छित्त्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत। (४-४२)

भगवान ने फिर पाँचवें अध्याय में ज्ञान की उपमा सूर्य से दी। जैसे -

तेषामादित्य वज्ज्ञानं प्रकाशयतिः तत्परम्। (५-१६)

फिर दसवें अध्याय में ज्ञान की उपमा प्रकाशवान् दीप से दी। जैसे -

नाशयात्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥ (१०-११)

ज्ञान के महत्व को प्रकट करने केलिए भगवान श्रीकृष्ण ने इतने उपमान प्रस्तुत किये। भगवान ने बताया कि हे जीव! ज्ञान की तपस्या कर पवित्र बनो। ज्ञान का यज्ञ संजोकर मुक्ति प्राप्त करो। ज्ञान की नाव के द्वारा पाप समुंदर को पार करे। ज्ञान की आग से कर्म रूपी काष्ट जला दो। ज्ञान के खड्ग से सभी संशयों को काट दो। ज्ञान रूपी सूर्य के तेज से अज्ञानरूपी अंधकार को दूर कर दो। ज्ञान का दीप जला कर अमृतमय कांति पुंज चारों ओर फैला दो। इससे स्पष्ट

को अपने जीवन में ज्ञान अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

अब हम विचार करें कि ज्ञान माने क्या है ? प्रकृति और पुरुष के कल ही जगत् है। इस जगत् में आत्मा-अनात्मा, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, एक सा अज्ञानी को दिखायी देते हैं। इनका विभाजन करना ही विभाजन कर जड को जड और चैतन्य को चैतन्य के रूप में ज्ञान है। इसीलिए 'विभाग' योग के नाम से कुछ अध्याय गीता में में बताये गये हैं। जैसे - क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग, गुणत्रय विभाग भाग का मतलब है मिले हुये को विभाजित करना। बुराई को त्याग में होनेवाली आम बात है। पका हुआ केला दिया जाय तो छोटा छिलका फेंक देगा और केला खाएगा। गृहिणियाँ सूप में चावल भर से कंकड चुन चुन कर निकाल देती हैं। इसी प्रकार आत्मा एवं मिले जुले इस दृश्य जगत् में उन्हें अलग कर आत्मा में ही चित्त करके अनात्मा के प्रति विरक्त होना चाहिए। यही ज्ञान है। क्षेत्र से अलग करना चाहिए। अपने को क्षेत्रज्ञ समझ कर क्षेत्र के प्रति होकर रहना चाहिए। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम तथा रूप नामक हर वस्तु में होते हैं। इनमें से आरंभीय तीन पदार्थों को सत्य और को असत्य मानना चाहिए।

अब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के बारे में विचार करेंगे। पंच महाभूत, अहंकार, अव्यक्त, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, शब्द स्पर्श आदि विषय, इच्छा, द्वेष, सुख, देह-इन्द्रिय-समूह, अन्तःकरण प्रवृत्तियाँ आदि सब क्षेत्र माने इन्हें जानने की प्रज्ञा ही चैतन्य है। वर चैतन्य ही क्षेत्रज्ञ है। भगवान

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत (१३-२)

हे अर्जुन! सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ। यह बात जान ले।'' इससे साक्षात् परंधाम, वैकुंठनाथ, विश्वव्यापक चिन्मूर्ति, हर प्राणी के

हृदयांतराल में विद्यमान है। हर जीव के मन में ईश्वर है। इससे विश्वास पैदा होता है कि प्रयत्न करने पर जीव ईश्वर को पा सकता है। यहाँ 'सर्व क्षेत्रेषु' कहा गया। इससे स्पष्ट है कि जाति, कुल, धर्म, वर्ग एवं वर्ण के भेदभाव के बिना समस्त चराचरों में क्षेत्रज्ञ परमेश्वर विद्यमान हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय पंचकोशों को अलग कर देखें तो उनके अन्दर साक्षीभूत आत्मा विद्यमान है। वह आत्मानुभूति ही ज्ञान का फल है। वही मोक्ष है।

ज्ञानी मनुज का हर कर्म पवित्र होता है। ज्ञान के परे स्थित परमात्मा को जाननेवाला, और उस स्थिति को प्राप्त करनेवाला महापुरुष देह, इन्द्रिय समूह तथा अंतःकरण को साक्षी के रूप में देखता है। तब वह कर्ता नहीं रहता। देह और इन्द्रिय आदि अपने अपने काम करते रहते हैं। वह उनके कार्यों में नहीं बंधता। विनाशरहित परब्रह्म में स्थित होकर स्वस्वरूप का अनुभव पाता है। लोकहित के लिए ज्ञानी पुरुष कर्म करता भी है तो निरासक्त मन से ही करता है। तब वह कर्म परम पुनीत बन जाता है। ज्ञानी तथा अज्ञानी के कर्मों में यही अंतर है। अज्ञानी देह एवं इन्द्रियों के समूह से मिल कर समझता है कि मैं ही देह हूँ। इसी भावना से कर्मों के प्रति आसक्त रहता है। परन्तु ज्ञानी की स्थिति अलग होती है। वह कभी भी अपने को देह नहीं समझता। वह समझता है कि मैं अजर, अमर आत्मा हूँ। नश्वर देह नहीं हूँ। तब वह घमंड रहित होकर ममता रहित हृदय से कर्म करके मुक्त होता है। यह बात अच्छी तरह समझनी चाहिए कि कर्म करने के पूर्व उसमें कुशलता कैसे पायी जाय! कर्म कुशलता ज्ञान से ही हासिल होती है।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने दूसरे अध्याय के आरंभ में ही ज्ञान का उपदेश दिया। कर्मकुशलता प्राप्त करने का रहस्य बताया। इसके बाद कर्मयोग का आरंभ किया। उपदेश दिया कि "योगस्थः कुरु कर्माणि"। (आत्मा में स्थिर हो कर अनासक्त बुद्धि से कर्म करो।) इसीलिए महाज्ञानियों के कर्म

सामान्य जनो के कर्मों से विलक्षण एवं अद्भुत होते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के बाद अपने संस्कारों के अनुसार कुछ महापुरुष निवृत्ति को अपनाते हैं तो कुछ महापुरुष प्रवृत्ति को अपनाते हैं। प्रवृत्ति को अपनाने पर भी उन्हें निवृत्ति का ही फल मिलता है। श्रीकृष्ण, जनक, इक्ष्वाकु आदि चक्रवर्ती, और शङ्कराचार्य, विवेकानन्द आदि सन्यासी वगैरह ने ज्ञानी बनने के बाद लोक हित के कई कार्य किये। फिर भी ज्ञान के प्रभाव के कारण उन्हें कर्म बंधित नहीं कर सका। अतः चाहे निवृत्ति हो, चाहे प्रवृत्ति हो, उसे निभाने के लिए ज्ञान की प्राप्ति बहुत जरूरी है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा -

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते (४-३८)

अर्थात् ज्ञान के बराबर पवित्र वस्तु इस संसार में दूसरी कुछ नहीं है। मगर अपरोक्ष ज्ञान का उदय हृदय में होना है तो गीता के १३ वें अध्याय के कथन के अनुसार अमानित्व आदि ज्ञान के गुणों का अभ्यास साधक को अच्छी तरह करना चाहिए।

भगवद्गीता के सातवें अध्याय में चार प्रकार के भक्तों का उल्लेख हुआ है। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी एवं ज्ञानी। भगवान ने कहा -

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। (७-१८)

अर्थात् - "यद्यपि वे सब उदार हैं तथापि ज्ञानी तो साक्षात् मेरा स्वरूप ही है, ऐसा मेरा मत है।" इससे स्पष्ट है कि ज्ञानी साक्षात् भगवान ही है। भगवान और ज्ञानी में कोई अंतर नहीं है। द्वैत साधन सब क्रमशः जीव को अद्वैत में ले जाते हैं। वहाँ भक्ति एवं भगवान में अंतर नहीं रहता। वही जीवन की चरम स्थिति है। वही जीवन्मुक्ति की स्थिति है। ज्ञान का यही महत्व है। अतः हर जीव का कर्तव्य है कि वह ऐसी अमोघ ज्ञान शक्ति प्राप्त करे और अपने जन्म को सार्थक बनावे।

गीता में वर्णित साधना

हमने अब तक गीता में प्रतिपादित विभिन्न योगों तथा विचारों का विश्लेषण किया। अब हमें जानना चाहिए कि उन योगों को आचरण में किस प्रकार लाया जाय। इसके साधन क्या हैं ? गीताचार्य अनुष्ठान पर ज्यादा जोर देते हैं। इसीलिये उन्होंने उन साधनों के कई रहस्यों का उल्लेख गीता में किया। साधनों के मार्ग के अडचनों पर ध्यान देकर, उन्हें दूर करने के उपायों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। गीता में साधना के विभिन्न पहलुओं का विवरण देकर गीताचार्य ने जगत् का महोपकार किया।

१. दुर्बलता का निवारण -

साधना शुरू करते समय अधीरता, कायरता, दुर्बलता तथा निरुत्साह आदि को पास पटकने नहीं देना चाहिए। गीता आदेश देती है कि कायरता सूचक शब्दों को नहीं बोलना चाहिए। महर्षियों ने मोक्ष प्राप्त किया। हम नहीं कर सकते। हमारा चित्त उनकी तरह शुद्ध कैसे होगा? हम गृहस्थ हैं। बाल बच्चोंवाले हैं। सब कुछ छोड छाड कर जंगल नहीं जा सकते। सन्यास ग्रहण नहीं कर सकते। पारिवारिक जंजाल से छुटकारा नहीं पा सकते। ऐसे हमें मोक्ष कैसे प्राप्त होगा? ये वाक्य ही दुर्बलता के प्रतीक हैं। भगवान ने कहा -

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यकत्वोत्तिष्ठ परंतप। (२-३)

अर्थात् "हे अर्जुन! तुच्छ हृदय की दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जा। इस प्रकार अर्जुन के बहाने भगवान श्रीकृष्ण समस्त जगत् को सचेत करते हैं। फिर आदेश देते हैं कि धैर्य एवं उत्साह से काम लो। कार्य सिद्ध हो या न हो परवाह मत करो। समबुद्धि एवं विवेक से कर्तव्य का पालन करो।" गृहस्थाश्रम में रहनेवालों को डरने की कोई जरूरत नहीं। उनका यह समझना कि सन्यासी ही मोक्ष पा सकते हैं, ठीक नहीं है। क्यों कि अर्जुन गृहस्थ थे। जनक गृहस्थ थे। वे ही जब मोक्ष पा सके तो हमें संकोच क्यों करना चाहिए? कोई शास्त्र नहीं मानता कि फलानी जाति या फलाने कुल या

फलाने धर्म के लोग ही मोक्ष पा सकते हैं, बाकी नहीं। गीता शास्त्र ऐसी बातें किसी भी हालत में नहीं मानता। परन्तु साधक को कर्तव्य के पालन का बीडा उठाना चाहिए। तभी मोक्ष मिल सकता है। अतः हर साधक को चाहिए कि वह निरुत्साहित न हो। अडचनों और रुकवटों का सामना करे। सर्वेश्वर एवं सद्गुरु पर विश्वास रख कर परमार्थ के पथ पर आगे बढे।

२. मध्यमार्ग का अवलंबन -

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए लालायित होना तो ठीक है मगर उस प्रयास में जल्दबाजी ठीक नहीं। यदि मन अधीर हो जाय तो साधना में सफलता नहीं मिल सकती। शांति एवं गंभीरता से व्यवहार करनेवाला ही सफलता प्राप्त करता है। अति सर्वत्र वर्जयेत् 'यह बडों की सलाह है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा -

१. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन॥ (६-१६)

२. युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥ (६-१७)

अर्थात् - ज्यादा नहीं खाना चाहिए। खाये बिना नहीं रहना चाहिए। ज्यादा सोना नहीं चाहिए। सोये बिना नहीं रहना चाहिए। मिताहार, मितनिद्रा, मिताचरण आवश्यक हैं। तभी योग का निर्वहण संतोषजनक रूप से होगा। किसी भी चीज़ का उपयोग ज्यादा करें तो वह जल्दी खराब हो जाएगी। उपयोग बिलकुल न करें तो भी खराब हो जाएगी। देह, इन्द्रिय एवं मन ये तीनों मनुष्य को भगवान की देन हैं। उनका सदुपयोग करके भवसागर को पार करना चाहिए। शक्ति से बढ कर उन चीजों का उपयोग किया जाय तो वे बीच समुंदर में हमें डुबोएँगी। योग की जगह रोग हमें पकड लेगा। कई साधक प्राणायाम ज्यादा कर उपवास आदि से शरीर को ज्यादाश्रम देकर अपने प्रयास में असफल हो रहे हैं। इसीलिए गीताचार्य ने साधना के लिए मध्यमार्ग सूचित किया।अतः मुमुक्षुओं को भगवान के कहे अनुसार शनैः शनैः मध्यमार्ग

का अवलंबन कर विजय के पथ पर चलना चाहिए।

३. अभ्यास न छोडें, वैराग्य को अपनावें -

अनेक जन्मों से मन एक विकृत पथ (प्रकृति की दासता) पर चल रहा। अब उसे दूसरे मार्ग(दैवत्व) पर चलाना पडा। भोग से योग की मोडना पडा। इसलिए सहज रूप से वह विद्रोह कर बैठेगा। प्रतिक्रिया अ होगी। जन्म जन्मों से सुख भोग में लीन मन को विरक्ति एवं परमार्थ की मोडना आसान नहीं है। पर साधक को निराश नहीं होना चाहिए। हर अभ्यास करते हुए आगे बढना चाहिए। अंत में मन अवश्य वश में हो जा गीता के छठे अध्याय में अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि बहुत चपल एवं चंचल है। उसका निग्रह करना मुश्किल हो रहा है। दयालु भगवान ने जवाब दिया कि "इसके लिए मैं क्या कर सकता अभ्यास के द्वारा तुम्हीं उसे अपने वश में कर लो। दूसरा कोई मार्ग नहीं वैराग्य की भी सहायता लो।" भगवान श्रीकृष्ण के निकट के बन्धु, सखा, भक्त तथा आप्त मित्र अर्जुन को भी मनोनिग्रह केलिए अभ्यास की शरण में जम जाना पडा तब साधारण लोगों की बात ही क्या है? अतः निग्रह के लिए अभ्यास करना चाहिए। गीता के १२ वें अध्याय के भक्ति में श्रीकृष्ण ने कुछ साधनों को सूचित किया। पहले कहा कि मुझ में मन स्थि करो। ऐसा करोगे तो तुम मुझ में ही निवास कर सकोगे। "फिर भगवान कहा कि -

अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥ (१२-९)

अर्थात् "यदि तू मन को मुझ में स्थापित करने के लिए समर्थ नहीं है अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझ को प्राप्त करने की इच्छा कर।" इससे ला है कि भगवान ने कर्म योग, भक्तियोग, ज्ञानयेग आदि के बराबर 'अभ्या योग' सृजित किया। अभ्यास योग शब्द गीता के ८ वें अध्याय में मिलता जैसे -

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसानान्यगामिना। (८-८)

अर्थात् अक्षरपरब्रह्म की प्राप्ति के लिए ध्यान रूप अभ्यास ही शरण्य है।''

अतः मनोनिग्रह एवं भगवत्प्राप्ति के लिए अभ्यास के सिवा दूसरा मार्ग नहीं हैं। चाहे कर्मयोग हो, चाहे भक्ति योग हो, चाहे ज्ञानयोग हो, अभ्यास योग के बिना वे परिपक्व नहीं हो सकते।

प्रश्न उठता है कि अभ्यास कब करना चाहिए। माया महा ठगिनी है। साधक थोडा भी असावधान रहे तो तुरन्त माया डस लेती है। इसीलिए उससे बचने के लिए भगवान का निरंतर स्मरण ही एक मात्र उपाय है। गीता में ''सतत'' शब्द का प्रयोग ज्यादा किया गया। जैसे -

१. तेषां सतत युक्तानां (१०-१०)

२. सततं कीर्ति यन्तोमां (९-१४)

आरंभ में साधक अभ्यास के लिए समय निश्चित कर सकता है। परन्तु धीरे धीरे उसे बढा कर निरंतर भगवान के ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। अंतिम सांस तक अभ्यास का आदेश गीता ने दिया। अब प्रश्न उठता है कि मनोनिग्रह कैसे किया जाय? गीता में कहा गया -

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥ (६-२६)

अर्थात् जब जब मन चपल होकर बाहर की ओर दौड पडता है तब तब उसे समझा बुझा कर धीरे से अन्दर ले आकर आत्मा में स्थिर करना चाहिए। मन और इन्द्रियों को अच्छी तरह समझाना चाहिए कि बाह्य पदार्थ सब पांच भौतिक हैं। जड हैं। क्षणिक हैं। शाश्वत नहीं हैं। सुखदायक नहीं हैं। अभ्यास कराते जाने पर वे उनके जाल से छूटते हैं। इसीलिए साधक के लिए विषय के प्रति विरक्ति आवश्यक है। ऐसा न होकर मन बार बार विषय वासनाओं में आसक्त होता रहे तो भगवान ने कहा -

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृत चेतसाम्।

व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ (२-४४)

अर्थात् वाणी द्वारा हारे हुए चित्तवाले तथा भोग और ऐश्वर्य में आसक्तिवाले उन पुरुषों के अन्तःकरण में निश्चयात्मक बुद्धि नहीं होती। इसलिए साधक को प्रयत्न करके पहले विषयों के प्रति विरक्ति का अभ्यास करना चाहिए। मन को उनसे विमुख करना चाहिए। फिर धीरे धीरे मन को आत्मा में स्थिर करना चाहिए। अतः अभ्यास एवं वैराग्य को कभी छोडना नहीं चाहिए।

४. श्रद्धा विश्वास पर दृढ रहें, संशय को दूर करें -

परमात्मा के अस्तित्व एवं जगत् के मिथ्यात्व के बारे में कभी संशय को मन में स्थान न दें। क्यों कि शास्त्रों ने उनके बारे में अपना निश्चय प्रकट किया। शास्त्रों के उन निर्णयों में जरा भी सन्देह नहीं करना चाहिए। कहा गया कि संशयात्मा विनश्यति। फिर कहा गया कि श्रद्धावान लभते ज्ञानं। इन दोनों वाक्यों को गीता का वरदान मानना चाहिए। दैवी कार्यों तथा आध्यात्मिक सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा एवं विश्वास को बढावा देना चाहिए। हृदय से संशय को निकाल देना चाहिए।

'श्रद्धा' शब्द का प्रयोग गीता में कई बार हुआ। जैसे -

१. श्रद्दधाना मत्परमा . . . (१२-२०)
२. श्रद्धया परया तप्तं . . . (१७-१७)
३. श्रद्धया परयो पेताः . . . (१२-२)
४. श्रद्धयार्चितुमिच्छति . . . (७-२१)
५. श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो . . . (३-३१)
६. श्रद्धावाननसूयश्च . . . (१८-७१)
७. श्रद्दावान्भजते यो मां . . . (६-१७)
८. श्रद्दा विरहितं यज्ञं . . . (१७-१३)

कहा गया कि देवता, तीर्थ, ब्रह्मनिष्ठ, मित्र, ज्योतिषी, औषध तथा गुरु के प्रति मनुष्य के हृदय में जो श्रद्धा जो भावना तथा जो विश्वास रहते हैं उसे उसी मात्रा में फल भी मिलता है। अतः भगवान के प्रति पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। श्रद्धा एवं भक्ति से अडचनों को दूर करना चाहिए। आध्यात्मिक क्षेत्र में साधक को आगे बढना चाहिए।

गीता में निषिद्ध आचार विचार

जो साधक भगवान का साक्षात्कार करना चाहते हैं उन्हें सही पथ पर चलना चाहिए। अपसव्य पथ पर चलने से लक्ष्य तक पहुँच नहीं सकते। उन्हें चित्त शान्ति नहीं मिलती। गीताचार्य ने कुछ दुराचारों का उल्लेख करके सचेत किया कि मुमुक्षुओं को उनसे बचना चाहिए। उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

१. काम्य बुद्धि से यज्ञ आदि करना।

२. अकर्मण्यता।

३. चार्वाकमत।

४. भौतिकवाद।

५. शारीरिक क्लेशवाला दांभिक तपस्या।

६. मिथ्याचार।

इन छः दुराचारों का स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

१. काम्यबुद्धि से यज्ञ आदि करना -

विषय वासनाओं और पारमार्थिक जीवन का नाता नहीं जुडता। दोनों एक दूसरे के विरोधीतत्व हैं। भोग के प्रति आसक्त व्यक्ति कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इहलोक तथा परलोक दोनों के भोग बराबर ही हैं। इनमें स्वर्गिक भोग कुछ बढिया हो सकते हैं। परन्तु दोनों मोक्ष की प्राप्ति के लिए अनुकूल नहीं हैं।

अतः जीवन-मरण, आवागमन तथा गतागत के मूल में जो काम्यकर्म एवं समवर्गभोग जनक सकामयज्ञ आदि हैं उन का गीताचार्य ने गीता में निषेध किया। स्वर्ग सुखों के लिए लालायित लोगों को गीताचार्य ने अविपश्चित (अविवेकी) कह कर उनके कार्यों का खंडन किया। गीता के दूसरे अध्याय के निम्न लिखित श्लोकों में ऐसे भाव का स्पष्टीकरण किया गया -

१. कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। (२-४३)
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥

२. भोगैश्वर्यप्रसक्तानां समाधौ न विधीयते। (२-४४)

भगवान प्रश्न करते हैं कि क्रिया बाहुल्य से युक्त, विक्षेपजनक एवं चित्त चांचल्य के कारणभूत सकाम यज्ञों के आचरण से मोक्षदायक जप यज्ञ, स्वाध्यय यज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ आदि का आचरण क्यों नहीं करना चाहिए? अतः मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे सकामकर्मों के पीछे न पडे, निष्काम कर्म ही करें।

२. अकर्मण्यता -

कुछ लोग समझते हैं कि कोई काम न करें तो ठीक है। वैसा करना वैराग्य का चिह्न है। लेकिन यह विचार सरासर गलत है। जब तक वासनाओं तथा संस्कारों का प्रभाव रहता है, तब तक स्थूल देह से कर्म न करने पर भी जीव भवबंधनों से नहीं छूटता। उसके मन में उनका संचार होता ही रहता है। कोई काम किये बिना बैठे रहनेवाले या तो तमोगुणी होते हैं या विशुद्ध सत्वमयी निर्विकल्प समाधिस्थ होते हैं। दूसरे प्रकार के लोग संसार में नहीं के बराबर हैं। ऐसे व्यक्ति परमपूज्य हैं। क्यों कि उनके हृदय वासनारहित और निर्मल होते हैं। वे कर्म करें या न करें बंधनों से मुक्त रहते हैं। बाकी लोगों की स्थिति वैसी नहीं है। उन्हें कर्म करना ही पडेगा। क्यों कि तमोगुण से रजोगुण, रजोगुण से सत्वगुण और सत्वगुण से विशुद्ध सर्वगुण या गुणातीत स्थिति की ओर उन्हें यात्रा करनी है। ऐसी हालत में कोई कर्म किये बगैर निठल्ले बैठे रहना मूर्खता ही है। इससे जीवन भ्रष्ट हो जाएगा। इसीलिए भगवान कहते हैं-

कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। (३-८)

अर्थात् - कर्म न करने से कर्म करना ही श्रेष्ठ है।

तयोस्तु कर्मसन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते। (५-२)

अर्थात् उन दोनों में कर्मत्याग से कर्मयोग ही श्रेष्ठ है। इस तरह गीता में अकर्मण्यता पर आक्रमण किया गया। कुंभकर्ण से रावणासुर अच्छा है।

तमोगुण से रजोगुण अच्छा है। रजोगुण से सत्वगुण अच्छा है। इसलिए कोई भी कर्म किये बिना समय को व्यर्थ गंवाने से कुछ न कुछ कर्म करते रहना ही उत्तम है। धीरे से वह परिवर्तित होकर निष्काम कर्म बन जाएगा। इससे चित्त शुद्ध होगा और ज्ञान प्राप्त होगा। अंत में मोक्ष की प्राप्ति होगी। अतः साधकों को चाहिए कि वे अकर्मण्यता को दूर भगा दें, आध्यात्मिक उन्नति में सहायक सत्कर्म करते हुए अपना जन्म सार्थक बना लें।

३. चार्वाकमत -

चार्वाकों के विचार के अनुसार जो दिखायी देता है वह सत्य है। पुनर्जन्म है ही नहीं। इसलिए जितने दिन जिन्दा रहेंगे उतने दिन खूब खा पीकर सुखी रहे, भोग विलास का अनुभव करें। स्थूल देह का पोषण ही परमार्थ है। गीताचार्य ने इन विचारों का खंडन किया। गीता के १६ वें अध्याय में ऐसे नास्तिकों की विचार धारा का गीताचार्य ने खंडन किया। चार्वाकों के अनुसार शौच, आचार एवं सत्य कुछ नहीं है। ईश्वर ने ऐसी सृष्टि का सृजन नहीं किया। उनका मत है, स्त्री पुरुष के संयोग से जगत् का सृजन हुआ। अदम्य काम को तृप्त करना चाहिए। भोग ही चरम लक्ष्य हैं। इसके लिए धनार्जन करना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा कि इस प्रकार की विचारधारा त्याज्य है। ऐसे नराधमों के लिए नरक ही योग्य है। नीच योनियों में वे जन्म लेंगे। अतः मुमुक्षुओं को ऐसे चार्वाकमत से दूर रहना चाहिए। उन्हें अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि ब्रह्म सत्य है। देह आदि भौतिक वस्तु असत्य हैं। भोग की आसक्ति को कम करके योग की आसक्ति को बढाना साधकों का कर्तव्य है।

४. भौतिकवाद -

भौतिकवाद कहता है कि प्रकृति (Nature) से ही सब चलता है। पुरुष की जरूरत नहीं है। कार्य कारण रूप यह चराचर जगत् प्रकृति के अधीन है। प्रकृति स्वयं चैतन्यमय है। शक्ति से समन्वित है। ''इस भौतिकवाद को

गीता स्वीकार नहीं करती। यद्यपि गीता प्रकृति की व्यावहारिक सत्यता को स्वीकार करती है, तथापि वह कहती है कि प्रकृति पुरुष के अधीन है। स्वयं वह जड है। पुरुष से चेतनता को उधार में लेकर कार्य में प्रवृत्त होती है। जैसे-

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। (९-१०)

अर्थात् चैतन्यवान परमात्मा के सान्निध्य से प्रकृति स्थावर जंगमात्मक समस्त जगत् को उत्पन्न करती है। जगत् रूपी सभा के अध्यक्ष भगवान हैं। वे प्रकृति के संचालक हैं। अध्यक्ष के बिना जिस प्रकार सभा शोभा विहीन होती है और उस सभा का कोई स्वरूप नहीं होता, उसी प्रकार भगवान रहित जगत् की भी स्थिति होती है। परमात्मा प्रकृति का आधारभूत अंग है। आधार के बिना आधेय नहीं टिकता। 'सूत्रे मणि गणा इव' की तरह इस ब्रह्मांडरूपी मणिहार में सूत्र की तरह परमात्मा व्याप्त है। जिस तरह सूत्र न हो तो मणि तितर बितर हो जाते हैं उसी तरह पुरुष के बिना स्त्री का अस्तित्व नहीं रहता। भगवान ने कहा -

क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत। (१३-३३)

अर्थात् क्षेत्रज्ञ परमात्मा समस्त क्षेत्र (प्रकृति) को प्रकाशवान बना रहा है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति या क्षेत्र जड है। वह स्वतः प्रकाशवान नहीं है। क्षेत्रज्ञ पुरुष (परमात्मा) ही क्षेत्र रूपी प्रकृति को प्रकाशित कर रहा है। इस तरह भौतिकवाद के सिद्धांत का जिसके अनुसार प्रकृति ही अपनी शक्ति से सब कार्य कर रही है, खंडन गीता कर चुकी है। गीता का मत है कि पंचभूत अस्थिर हैं। चपल हैं। विकारयुक्त हैं। नश्वर हैं। उनका भरोसा करें तो जीव का पतन होता है। घूमनेवाले स्तंभ को पकडें तो स्तंभ के साथ घूमनेवाला भी गिर जाता है। अतः जगत् में न घूमनेवाली वस्तु एक ही है। वह है परमात्मा। वह सर्वसाक्षी है। उस वस्तु पर जो विश्वास करता है उसका पतन नहीं होता। भौतिकवस्तुओं पर विश्वास करनेवाला धोखा खाता है। पहले इस तरह के कई लोगों का पतन हो गया है। मृग मरीचिका के पीछे दौडनेवालों को निराश

होना पडता है । अतः प्रकृति का भरोसा छोड कर पुरुष पर विश्वास करके आध्यात्मिक दृष्टि से अपने जन्म को सार्थक बनावें यही गीता का आदेश है। भगवान ने स्पष्ट कह दिया कि 'मामेकं शरणंव्रज'। अतः मुमुक्षु भौतिकवाद को तिलांजलि दे दें और अध्यात्मवाद के भरोसे पर रह कर अपने हृदय में स्थित परमात्मा का साक्षात्कार कर परमानन्द का अनुभव करें।

५. देह को पीडा पहुँचानेवाली तपस्या -

मोक्ष के मार्ग में रोडा अटकानेवाली चित्त में विद्यमान विषय वासनाएँ हैं। दुष्ट संकल्प हैं। दुष्ट संस्कार हैं। देह इसके लिए जिम्मेदार नहीं है। देह भोली भाली है। उसे पीडा पहुँचाने पर मोक्ष की प्राप्ति की आशा करना पागलपन है। वल्मीक पर जितना भी मारें पर साँप नहीं मरता। इसी तरह जन्म जन्मों से हृदय में जमी विषय वासनाएँ शरीर के शोषण से नष्ट नहीं होतीं। इसलिए महापुरुष चित्त की वासनाओं और इन्द्रियों की कामनाओं को कठोर संयम एवं निग्रह के द्वारा दूर कर लेते हैं। वास्तव में चित्त को राग द्वेष आदि से बचाना चाहिए। देह को सुखा सुखा कर पीडा पहुँचाने से कुछ नहीं मिलता। इस बारे में भगवान श्रीकृष्ण ने १७ वें अध्याय में अच्छी तरह सचेत किया -

१. अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकार संयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ (१७-५)

२. कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥ (१७-६)

अर्थात् "हे अर्जुन ! जो मनुष्य शास्त्र विधि से रहित मनोकल्पित घोर तप से तपते हैं, वे दम्भ और अहंकार से युक्त हैं, जो शरीररूप से स्थित भूतसमुदाय और अन्तःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को कृश करते हैं, वे अज्ञानी हैं। उन्हें आसुरी स्वभाववाले जान।"

उसी अध्याय में गीताचार्य ने शारीरिक, वाचिक तथा मानसिक तपस्या का स्पष्टीकरण किया जो हर व्यक्ति के लिए आचरणयोग्य हैं। परन्तु देह के स्वास्थ्य के लिए एकादशी आदि पर्व दिनों में उपवास आदि किये जा

सकते हैं परन्तु घोर तपस्या के द्वारा शरीर को शोषित करने से कोई सत्फल नहीं मिलेगा। अतः मुमुक्षुओं को सात्विक तपस्या करते हुए परमार्थ की सिद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

६. मिथ्याचार -

कुछ लोग कर्मेन्द्रियों के द्वारा कुछ भी न करते हुए, यों ही बैठे रहते हैं, परन्तु मन से तीनों लोकों की छान बीन करते रहते हैं। ऐसे लोग यद्यपि शारीरिक अवयवों के द्वारा कर्म नहीं करते तथापि मन के द्वारा कर्म करते रहते हैं तो कर्मबद्ध ही बनते हैं भगवान ने कहा -

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ (३-६)

अर्थात् जो मूढ बुद्धिवाला पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से रोक कर, इन्द्रियों के भोगों का चिन्तन मन से करता रहता है वह दम्भी एवं मिथ्याचारी है। इसलिए पहले मन की मरम्मत करना बहुत जरूरी है। विषय वासनाओं से उसे छुडा लेना चाहिए। सांसारिक संकल्पों को पास नहीं आने देना चाहिए। जब मन विषयवासनाओं में लीन नहीं रहता, तब कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्म करने पर भी मनुष्य बंधनों में नहीं बंधता। भगवान ने कहा -

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ (३-७)

अर्थात् - "जो पुरुष मन इन्द्रियों को वश में करके अनासक्त भाव से कर्मेन्द्रियों के द्वारा कर्मयोग का आचरण करता है वह श्रेष्ठ है।

अतः साधकों को गीताचार्य के इस आदेश पर ध्यान देना चाहिए। मिथ्याचारों को छोडना चाहिए। ध्यान के समय में चित्त को निर्मल एवंशुद्ध रखना चाहिए। दैवी भाव से चित्त को भर देना चाहिए। आरंभ में यद्यपि सफलता तुरंत नहीं मिलेगी, मगर धीरे धीरे अभ्यास करते रहने से सफलता मिल जाएगी। केवल कर्मेन्द्रियों को रोक रखने से फायदा नहीं होगा। मन को पूर्ण रूप से वश में कर लेना चाहिए। यही गीता का सन्देश है। उसी मार्ग पर साधकों को चलना चाहिए।

पाठकों के प्रश्न एवं उनका समाधान

१. प्रश्न – कुरुक्षेत्र के युद्ध के अल्पसमय में इतनी बृहद्गीता का बोध श्रीकृष्ण कैसे करा सके ?

उत्तर –

१) वास्तव में ऐसा कोई काम नहीं जो श्रीकृष्ण नहीं कर सकें। वे प्रवीण थे। मायाधीश थे। अपनी योगमाया से बडी बडी लीलाएँ करके लोकों को चकित कर दिया। ऐसे भगवान श्रीकृष्ण के लिए अल्प समय में बृहद्गीता का बोध कराना मुश्किल काम नहीं दीखता।

२) संभव है कि युद्ध के आरंभ में भगवान श्रीकृष्ण संक्षेप में गीता का सन्देश अर्जुन को दे चुके हों और बाद को वेदव्यास उसे छन्दोबद्ध कर बृहद्रूप दे चुके हों।

३) युद्ध के आरंभ में दोनों सैन्य दल आमने सामने कतार बांध कर खडे हो गये। परन्तु युद्ध का तुरन्त आरंभ नहीं हुआ। दो तीन छोटी घटनाएँ हुयीं। धर्मराज पैदल शतृदल की तरफ चले। भाइयों ने उनका अनुसरण किया। भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य और शल्य के पास जाकर उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। फिर धर्मराज ने घोषणा की कि अगर शतृदल से कोई बीर आकर हमारे दल में शामिल हों तो उनकी रक्षा की जाएगी। तब युयुत्सु कौरवदल को छोड कर पाण्डवदल में आमिले। इस प्रकार की दो तीन घटनाएँ हुयीं। इससे स्पष्ट है कि युद्ध के आरंभ में कुछ विलंब अवश्य हुआ। उसमें भी युद्ध का वह प्रारंभिक दिन था। अतः युद्ध के आरंभ में कुछ समय लगा होगा। उस अवधि में गीता का सन्देश भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया। इसमें सन्देह करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

४) युद्धनीति के अनुसार संग्राम में हर किसी के कुछ कर्तव्य निश्चित थे। उनमें एक निर्णय था कि शतृपक्ष का कोई वीर हथियारों के बिना खडा हो या शोकाकुल हो तो शतृपक्ष के वीरों को उस पर आक्रमण नहीं करना चाहिए।

दोनों दलों में युद्धनीति का पालन करने वाले अनेक योद्धा थे। युद्ध के आरंभ में अर्जुन शोकाकुल हो गये। धनुष बाण छोड दिये। अर्जुन पांडवों के दल के बहुत बडे योद्धा थे। ऐसे व्यक्ति को निहत्थे देख कर उन पर कौन हथियार चलाता ? अत: कौरवपक्ष के वीर तब तक चुप रहे होंगे जब तक श्रीकृष्ण का बोध पूरा नहीं हुआ और अर्जुन उत्साहित होकर धनुष बाण हाथ में लेकर युद्ध के लिए सन्नद्ध नहीं हुये।

उपर्युक्त सभी कारणों के आधार पर स्पष्ट कहा जा सकता है कि युद्ध के क्षेत्र में गीता का बोध अवश्य हुआ। जब तक वह पूरा नहीं हुआ तब तक युद्ध का आरंभ नहीं हुआ।

२. *प्रश्न :- श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों सखा थे। बाल्यकाल से मिलते रहते थे। कई बार दोनों में बातें भी होती थीं। किसी प्रशांत समय श्रीकृष्ण गीता का बोध करा सकते थे। परन्तु श्रीकृष्ण ने ऐसा नहीं किया। जब चारों ओर युद्ध का कोलाहल छाया हुआ था तब गीता का सन्देश सुनाने वे क्यों तैयार हुए? उसी मुहूर्त को उन्होंने क्यों चुना?*

१) हर हमेशा कई काम समय पर करने से ही सफल होते हैं। परमार्थ के क्षेत्र में यह सूत्र अच्छी तरह काम आएगा। लोहा जब खूब जल जाता है तभी लुहार उसे झुकाने का प्रयत्न करता है। नींव जब पक्की बनती है तभी उस पर घर का निर्माण किया जाता है। रोग के समय ही वैद्य आवश्यक दवा देता है। भूमि जब उपजाऊ बनती है तभी किसान उसमें बीज बोता है। इसी प्रकार जब युद्ध के क्षेत्र में अर्जुन का हृदय वैराग्य से पूरित हो गया तब ज्ञान के बोध के लिए अनुकूल समय मिल गया। श्रीकृष्ण ने इसे परख लिया और तत्वोपदेश का कार्य शुरू किया। जीवन में अर्जुन की ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं हुयी। इसीलिए इसके पूर्व श्रीकृष्ण ने ज्ञान का बोध नहीं किया। इसके अलावा युद्ध क्षेत्र में अर्जुन की स्थिति पर भी

ध्यान देना आवश्यक है। तब अर्जुन धर्माधर्म का निर्णय नहीं कर पा रहे थे। ज्ञानोपदेश के लिए उनका मन लालायित था। इसके पहले कभी भी इतना तीव्र परिताप, इतनी तीव्र धर्म जिज्ञासा और ज्ञान की ऐसी आकांक्षा उन्हें नहीं हुयी। युद्ध क्षेत्र में कदम रखने के बाद उन्हें ज्ञान की तीव्र पिपासा हुयी। तुरन्त श्रीकृष्ण ने ज्ञानामृत की वर्षा की। अर्जुन की प्यास बुझा दी।

२) जीवन एक युद्ध क्षेत्र है। हर समय मनुष्य के हृदय क्षेत्र में धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य और न्याय और अन्याय के बीच संघर्ष चलता रहता है। ऐसे युद्ध का प्रतिरूप ही पांडव कौरव का युद्ध कहा जा सकता है। पांडव सद्गुणों एवं कौरव दुर्गुणों के प्रतिरूप थे। श्रीकृष्ण ने सद्गुणों का पक्ष लेकर पांडवों का समर्थन किया। उन्हें प्रोत्साहित किया। दुर्गुणों पर विजय पाने में उनका साथ दिया। इससे लगता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र के उस संग्राम के अवसर को गीता के बोध के लिए उचित मान लिया और जगत् को पावन संदेश दिया कि दुर्गुणों का अंत करना, सद्गुणों की रक्षा करना और सद्गुणों को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। हर व्यक्ति का यह कर्तव्य है।

३. *प्रश्न - जब भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य, धर्मराज भीम तथा कर्ण जैसे महान् वीर थे तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ही गीता का संदेश क्यों दिया ?*

उत्तर - अर्जुन साधारण व्यक्ति नहीं थे। नरनारायणों में से थे। नारायण श्रीकृष्ण के रूप में पैदा हुये तो नर पार्थ के रूप में पैदा हुए। भगवान ने गीता में कहा कि "पांडवानां धनञ्जयः" अर्थात् पांडवों में मैं अर्जुन हूँ। इससे स्पष्ट होता है कि अर्जुन कितना शक्तिवान था। एक बार घोर तपस्या करके अर्जुन ने शिवजी को प्रसन्न किया और उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त किया। इसी तरह कई देवताओं को प्रसन्न कर उनसे कई अमोघ अस्त्र शस्त्र प्राप्त किये। उत्तर गोग्रहण

के अवसर पर अकेले अर्जुन ने भीष्म पितामह के साथ कौरव सेना के सभी वीरों को हरा कर भगा दिया। चरित्र पर ध्यान दें तो स्वर्गलोक में ऊर्वशी के मोह जाल में न फंस कर वे बाहर निकल पडे। श्रीकृष्ण के मित्र और सखा थे। लेकिन युद्ध के आरंभ में अर्जुन ने कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ। आपकी शरण में हूँ। मुझे ज्ञान की शिक्षा दीजिए। इस तरह सख्यभाव के साथ भक्तिभाव को भी मिला लिया। इसीलिए भगवान ने कहा कि "भक्तोऽसि मे सखा चेति" अर्थात् तू मेरा सखा ही नहीं, भक्त भी है। इसीलिए तुझे अत्यंत गोपनीय ब्रह्मरहस्य की शिक्षा मैं ने दी है। अर्जुन का भक्तितत्व ही भगवान की प्रीति का पात्र बना। इस तरह भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति से संपन्न होकर अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के बहुत ही निकट के हो गये। इसीलिए कहा जा सकता है कि भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के उपदेश केलिए अर्जुन को ही योग्य माना।

४. प्रश्न - अर्जुन से कहा गया कि युद्ध करो। क्या इससे स्पष्ट नहीं होता कि गीता के द्वारा हिंसा को प्रोत्साहित किया गया ?

उत्तर - नहीं, गीता ने कभी भी हिंसा को प्रेरित नहीं किया। अहिंसा को ही प्रोत्साहित किया। जैसे -

१. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः . . . (१६-२)
२. अहिंसा समता तुष्टि . . . (१०-५)
३. ब्रह्मचर्य महिंसा च . . . (१७-१४)
४. अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च (१२-१३)

दुष्कर्म करनेवालों, समाज के द्रोहियों तथा देश द्रोहियों को दण्ड न दिया जाय तो देश तथा समाज का अनिष्ट होगा। अराजकता फैलेगी। अशांति एवं हिंसा का बोलबाला होगा। ऐसे कीडों का नाश न किया जाय तो वे सारे पेड को नष्ट कर देंगे। आपरेशन कर यदि फोडे को हटा न दिया जाय तो वह सारे शरीर को नष्ट कर देगा। आपरेशन करना हिंसा नहीं है। वह अहिंसा ही है।

चोर हैं। डाकू हैं। हत्यारे हैं। पुलिस इनको पकडती है। अदालतों में उनको दण्ड दिया जाता है । कुछ कसूरवारों को फांसी की सजा भी दी जाती है। यदि उनके जुर्मों के मुताबिक दण्ड न दिया जाय तो सामाजिक शांति नष्ट हो जाती है। दोषियों को दण्ड देना हिंसा नहीं, अहिंसा ही है।

दुर्योधन आदि आततायी बन गये। पांडव उनके भाई ही थे। उन्हें राज्य देना न्यायोचित था। परन्तु दुर्योधन ने कहा कि सुई की नोक भर जमीन भी उन्हें नहीं दी जाएगी। श्रीकृष्ण स्वयं दूत बन कर कौरवों के यहाँ गये। उन्हें बहुत समझाया। युद्ध को टालने का प्रयत्न किया। कोई फायदा नहीं हुआ। मजबूर होकर पांडवों को युद्ध करना पडा। इस प्रकार युद्ध अनिवार्य हो गया। लोकरक्षा के लिए दुष्टों को दण्ड देना, शिष्ट जनों की रक्षा करना राजाओं का कर्तव्य था। क्षत्रियां का कर्तव्य था। अर्जुन क्षत्रिय थे। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को क्षात्र धर्म का संदेश दिया। हिंसा और अहिंसा के बारे में विशाल दृष्टि से विचार करना चाहिए, न कि संकुचित दृष्टि से। इसी दृष्टि से गीता ने हिंसा का विरोध किया। अहिंसा का समर्थन किया। अत: यह कहना कि गीताचार्य ने हिंसा का समर्थन किया ठीक नहीं है। न्यायाधीश गुनाहगार को सजा देता है तो क्या वह निंद्य है ? क्या वह हिंसा है ? नहीं। इसी प्रकार अर्जुन का युद्ध करना भी हिंसा नहीं, अहिंसा ही है। इससे स्पष्ट है कि गीता ने हिंसा का विरोध किया और अहिंसा का समर्थन किया।

गीता और योग वासिष्ठ

योग वासिष्ठ का आध्यात्मिक वाङ्मय में महत्वपूर्ण स्थान है। वह बहुत प्रचलित एवं प्रामाणिक ग्रन्थ है। योग वासिष्ठ और गीता में कई समानताएँ हैं। साधकों के लिए उनकी जानकारी आवश्यक है। अत: संक्षेप में उसका विवरण यहाँ दिया जाता है। त्रेतायुग में महर्षि वाल्मीकि ने बत्तीस हजार श्लोकोंवाला योग वासिष्ठ शीर्षक बृहद्ग्रन्थ की रचना की। गीता और योगवासिष्ठ में निम्न लिखित समानताएँ हैं।

१. गीता में जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने अर्जुन को तत्व का उपदेश दिया उसी प्रकार योग वासिष्ठ में श्री वसिष्ठ ने श्री रामचन्द्र को तत्व का उपदेश दिया। दोनों संवादों के रूप में है।

२. युद्ध के क्षेत्र में मोह के वशवर्ती होकर अर्जुन तीनों लोकों के साम्राज्य को तिनके के बराबर मान कर छोडने को तैयार हुआ और युद्ध करने से इनकार कर रथ में बैठ गया। तब श्रीकृष्ण ने उसे गीता का उपदेश देकर युद्ध के लिए प्रोत्साहित किया। इसी प्रकार जब श्रीरामचन्द्र सोलह बरस की उम्र में दृश्य जगत् की अनित्यता जान कर भोग विलासों से विमुख होकर विरक्त सा हो गये, तब कुलगुरु वसिष्ठ ने उन्हें धीरज बंधाते हुए योग वासिष्ठ का पारमार्थिक संदेश दिया।

३. जिस प्रकार श्रीकृष्ण के दिव्य प्रबोध से अर्जुन मोह की निद्रा से जागृत होकर कर्म क्षेत्र में कूद पडे उसी प्रकार श्री वसिष्ठ के अखंड आत्मोपदेश से श्रीरामचन्द्र शोकरहित होकर अकर्मण्यता से छूटकर कर्तव्य के पालन में लग गये।

४. श्री योगवासिष्ठ त्रेतायुग का था। गीता शास्त्र द्वापरयुगांत का था। दोनों के बीच में करीब दो युगों का व्यवधान रहा। तो भी योग वासिष्ठ में गीता में उल्लिखित विषयों का काफी विवरण है। योगवासिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में वही विवरण है जो श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच हुआ। श्रीवसिष्ठ मुनीन्द्र की त्रिकालज्ञता की यह महानता ही है। गीता के कुछ श्लोक भी हू ब हू उसमें हैं। योग वासिष्ठ जैसे महान् ग्रन्थ में एक उपाख्यान गीता में है। इससे स्पष्ट है कि गीता का विषय प्राचीन काल से ही भारत में प्रचलित रहा

दैनिक जीवन में गीता का उपयोग

संसार में अनगिनत ग्रन्थों का प्रकाशन हर दिन हो रहा है। उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, काव्य तथा साहित्यिक ग्रन्थ आदि कई देखने में आते हैं। लोग उन्हें एक बार पढते हैं, फिर भूल जाते हैं। पर उनमें से एक ग्रन्थ का महत्व सदा रहता है जिसे लोग अवश्य पढते हैं। वह है निघंटु (Dictionary)। निघंटु को कोई छोड नहीं सकता। श्रीमद्भगवद्गीता भी निघंटु की तरह मूल्यवान है। उसकी आवश्यकता मनुष्य को हर दिन, हर पल पडती है। जो धार्मिक ग्रन्थ दैनंदिन जीवन में काम नहीं आते उन्हें कोई नहीं पढता। परन्तु भगवद्गीता वैसी नहीं है। मानव जीवन की कितनी ही जटिल समस्याओं का समाधान गीता में मिलता है। अब हम विचार करें कि जन जीवन में गीता का उपयोग किस प्रकार से हो रहा है।

१. जब गुस्सा आता है तब -

गुस्सा एक मानसिक लहर है। पहले वह लहर मामूली हवा की तरह चलती है। फिर तेज होने पर आन्धी का रूप धारण करती है। अंत में जीव को खाई में ढकेल देती है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (२-६३)

अर्थात् क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है। अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित होती है। इससे बुद्धि अर्थात् ज्ञान शक्ति का नाश होता है। अंत में जीव अधोगति को प्राप्त होता है। क्रोध मानव को दानव बना देता है। इसीलिए क्रोध के बारे में साधकों को बहुत सतर्क रहना चाहिए। क्रोध शराब जैसा है। शराब पीकर आदमी जिस तरह अपने आप को भूल जाता है उसी प्रकार क्रोधी आदमी बेखबर हो जाता है। उचित अनुचित का ख्याल नहीं करता। रजोगुण से क्रोध उत्पन्न होता है। रजोगुणवाले को सुख नहीं मिलता। शांति नहीं मिलती। इसीलिए भगवान ने कहा कि 'रजसस्तु फलं दुःखं'। फिर

भगवान ने क्रोध को असुर गुण कहा। अतः लोगों को सतर्क होकर अपने हृदय में क्रोध को स्थान नहीं देना चाहिए। क्रोध दुष्ट अतिथि है। घर में उसे आने ही नहीं देना चाहिए। अन्दर कदम रखने से पहले ही उसे दूर भगा देना चाहिए।

२. जब भोग विलास पर मन आसक्त होता है तब -

श्रीवसिष्ठ ने कहा कि 'भोगा भवमहारोगाः'। यह वाक्य त्रेतायुग में कहा गया। द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण ने उसे मान कर कहा कि 'भोगा दुःखयोनय एव ते (५-२२)। अनुभवी लोग सब ऐसा ही कहते हैं। शास्त्र एवं उपनिषद् भी इसी की घोषणा करते हैं। फिर भी सांसारिक जीव भोग विलासों के पीछे पडते हैं। भोग विलासों में जो आकर्षण है वह कृत्रिम हैं। यथार्थ नहीं है। इनसे मनुष्य कभी सच्ची शांति नहीं पा सकता। थोडा बहुत सुख यद्यपि उनसे मिलता सा लगता है, मगर हिमालय सदृश दुःख उनसे जीव को प्राप्त होते हैं। इसीलिए बार बार गीता घोषणा करती है कि इन भोग विलास रूपी सांसारिक जंजाल से जीव को बचना चाहिए। भोग विलास में डूबे लोगों की ध्यान के प्रति निष्ठा या एकाग्रता नहीं रहती। भगवान ने कहा -

भोगैश्वर्य प्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ (२-४४)

भगवान ने इस के बारे में और कहा -

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ (५-२२)

अर्थात् - इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्नहोनेवाले जो भोग हैं वे दुःख के हेतु हैं। अतः विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। यहीं नहीं, भगवान ने स्पष्ट कहा है कि वास्तविक सुख अन्दर ही है बाहर नहीं है। वह अंतःसुख अक्षय है।

बाह्य स्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तत्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ (५-२१)

भोगों की क्षण भंगुरता के बारे में भगवान ने और भी दो तीन वाक्य कहे । वे निम्न प्रकार हैं ।

१. इन्द्रियार्थेषु वैराग्यं (१३-९) शब्द स्पर्शादि विषय भोगों को त्यागना चाहिए।
२. शब्दादीन्विषयां स्त्वकत्वा (१८-५१) शब्दादि विषय भोगों को त्यागना चाहिए।
३. कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः (१६-११)
आसुरी प्रवृत्ति वाले काम आदि विषय भोगों को ही परम पुरुषार्थ समझते हैं। यह गलत है।
४. निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो - (६-१८) सभी विषयों और आशाओं से छूटने पर ही साधक मुक्त होगा।

इस प्रकार गीता में भोगों को त्यागने के बारे में कई विवरण हैं। जब जब चित्त भोगों के प्रति आसक्त होगा तब तब उन श्लोकों का पाठ करना चाहिए। चित्त को भोगों से विमुख कर लेना चाहिए।

३. जब मरण का भय होता है तब -

जितने भी भय हैं उनमें मरण भय सब से बडा है। पंडित - पामर, अमीर - गरीब, ब्राह्मण - चांडाल सब के सब मृत्यु से डरते हैं। परन्तु गीता में सिद्ध किया गया कि इस तरह मृत्यु से डरना हास्यास्पद है। मरण माने देह का त्याग है। सचमुच देह ही जीव है तो देह के त्यागने पर रोना उचित है। लेकिन वास्तव में जीव देह नहीं है। पुराने कपडों को छोडते समय कोई भी नहीं रोता। इसी तरह देह के शिथिल होने पर किसी को दुःख नहीं करना चाहिए। क्योंकि जीव देह नहीं, आत्मा है। आत्मा अखंड है।

भगवान ने कहा -

न त्वेवाहं जातु नाशं न त्वं ने मे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ (२-१२)

अर्थात् - हे अर्जुन! मैं, तू, ये राजा सब शाश्वत हैं। हम पूर्वकाल में थे। आगे भी रहेंगे। किसी जीव को अपने तथा अपने बन्धु मित्रों के मरण के बारे में यदि भय लगे तो गीता के निम्न लिखित वाक्यों का स्मरण बार बार कर लेना चाहिए, ताकि मरण का भय दूर हो। जैसे -

१. अच्छेद्योऽयमदाह्यो ऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ (२-२४)

आत्मा अच्छेद्य है। अदाह्य है। अक्लेद्य है। अशोष्य है। आत्मा नित्य है। सर्व व्यापक है। अचल है। स्थिर रहनेवाला है। सनातन है।

२. देहीनित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ (२-३०)

हे अर्जुन! देह का हनन किया जा सकता है, पर आत्मा का हनन संभव नहीं। हर व्यक्ति के लिए यह सत्य लागू होता है। अतः किसी के बारे में शोक मत कर।

३. न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ (२-२०)

आत्मा कभी पैदा नहीं होता और कभी नहीं मरता। ऐसी बात नहीं है कि पहले न हो, अब हो, अब न हो पहले हो। वह अजन्मा है। नित्य है। स्थिर रहनेवाला है। पुराण पुरुष है। यद्यपि शरीर मारा जाता है, परन्तु आत्मा मारा नहीं जाता।

ऐसे प्रमाण गीता में बहुत हैं। उनका पाठ नित्य किया जाय तो मृत्यु का भय नहीं होगा। जीव को बार बार स्मरण करते रहना चाहिए कि मैं देही हूँ, देह नहीं हूँ। मैं क्षेत्रज्ञ हूँ, क्षेत्र नहीं हूँ। मैं त्रिगुणातीत हूँ त्रिगुण नहीं हूँ। जीव समझे कि मैं ही देह हूँ तो मृत्यु का भय उसे नहीं छोडेगा। इसके विरुद्ध आत्मा

ंथी भावना को दृढ कर लेना चाहिए। गीता का यही आदेश है। इससे मृत्यु भय दूर हो जाएगा। जनता के लिए, गीता का यह महान् उपकार है।

जब काम आदि विकारों का प्रकोप बढता है तब - साधक का 'काम' प्रबल विरोधी है। ज्ञानरूपी रत्न को लूट कर ले जानेवाला काम ही है। काम जब हृदय में कदम रखता है तब उसके साथ क्रोध एवं मोह आदि बाकी फौज़ भी अन्दर पहुँचती है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में काम के बारे में साधकों को सचेत किया। यदि मनुष्य 'काम' के बारे में सावधान नहीं रहेगा तो वह उसे आध्यात्मिकता के उन्नत शिखर से नीचे गिरा देगा। जब जब काम आदि विकारों का प्रकोप हृदय में बढ जाएगा तब तब निम्न लिखित श्लोकों का स्मरण करना अत्यंत आवश्यक है।

ध्यायते विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ (२-६२)

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ (२-६३)

विषयों का चिन्तन करने से उनमें आसक्ति पैदा होती है। फल स्वरूप क्रोध, मूढभाव, भ्रम और ज्ञानशक्ति का नाश आदि दुर्गुणों का प्रभाव बढ जाता है। अंत में पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है। अतः ऐसे विचार को हृदय में स्थान नहीं देना चाहिए।

१. शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥ (५-२३)

जो साधक इस मनुष्य शरीर में, शरीर का नाश होने से पहले ही काम-क्रोध से उत्पन्न होनेवाले वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है वही पुरुष सुखी रहता है। वही वास्तव में योगी है।

२. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ (१६-२१)

काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरक के द्वार आत्मा का नाश करनेवाले हैं। अतः इन तीनों को त्याग देना चाहिए। गीता के इससे संबंधित और भी कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं। इनका स्मरण साधक को करना चाहिए।

१. काम एष क्रोध एष . . . . (३-३७)
२. काम क्रोध वियुक्तानां . . . . (५-२६)
३. कामं क्रोधं परिग्रहम् विमुच्ये . . . . (१८-५३)
४. जहि शतृं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् . . . . (३-४३)
५. काम संकल्प वर्जिताः (४-१९)
६. कामात्मानः स्वर्गपराः . . . (२-४३)
७. कामैस्तै स्तै हृतज्ञानाः . . . (७-२०)

जब जब 'काम' अपने दल बल के साथ साधक के हृदय पर आक्रमण करेगा तब तब साधक को गीता के उपर्युक्त श्लोकों का स्मरण करते हुए उक्त विकारों का सामना करना चाहिए। उन्हें चित्त से जड सहित उखाड कर फेंक देना चाहिए।

५) जब दूसरों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होते हैं तब -

यह संसार यद्यपि विभक्त दीखता है तथापि वास्तव में वह अविभक्त है। जिस तरह तरंग, बुद्बुद तथा फेन में एक ही जल व्याप्त है उसी तरह समस्त जीव कोटि में एक ही चेतनता व्याप्त है। गीता प्रश्न करती है कि ऐसी स्थिति में दूसरों के प्रति ईर्ष्या और द्वेष की आवश्यकता ही क्या है? गीताचार्य घोषित करते हैं कि "अद्वेष्टा सर्व भूतानां . . ." किसी भी प्राणी से द्वेष मत करो। उससे करुणा एवं मैत्री भाव से व्यवहार करो। वही मेरा भक्त है।" यही नहीं उन्होंने आदेश दिया कि तुम सभी को अपने समान मानो। सभी में जो आत्मा है वह एक ही है। अतः दूसरे से द्वेष करने का मतलब अपने से द्वेष करना ही है। भगवान के इस विशाल दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर आचरण करें तो कोई दुर्गुण चित्त के पास पहुँच नहीं सकेगा।

[illegible] सांसारिक वैभवों के कारण घमंड होता है तब

[illegible] अनंत कोटि ब्रह्मांड में छोटे से इस भूगोल का महत्व क्या है ? [illegible] में हमारे देश का क्या महत्व है ? इस देश में हमारे गाँव, हमारे [illegible] और हमारी संपत्ति का क्या महत्व है ? इस दृष्टि से एक बार ही सही हम [illegible] तो हमारे चित्त का सारा भ्रम दूर हो जाएगा।

[illegible]ष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेनस्थितो जगत् ॥ (११-४२)

मैं इस संपूर्ण जगत् को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र पर धारण किया हुआ हूँ। भगवान का यह वाक्य कितना विशाल एवं गंभीर है। पुरुष सूक्त बताता है कि इन सभी ब्रह्मांडों को एक कदम में भगवान समा चुके हैं। और भी तीन [illegible] भगवान के हैं, जो इनसे अतीत हैं। इतने महान भगवान की विराट [illegible] के सामने हम और हमारे गाँव आदि बहुत ही लघु हैं। अर्जुन जैसे महा[illegible], लौकिक शक्तियों से समन्वित राजाधिराज, भगवान के विश्वरूप दर्शन के बाद अत्यंत विनम्र हो गया। गीता के ११ वें अध्याय से इस बात का पता लगता है।

> [illegible] पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
> नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
> अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं
> सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ (११-४०)

हे अनन्त सामर्थ्यवाले ! आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार। हे सर्वात्मन् ! आपके लिए सब ओर से ही नमस्कार। क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप सब संसार को व्याप्त किये हुए हैं, इससे आप ही सब कुछ हैं।

अतः जब जीव के चित्त में घमंड पैदा होता है तब गीता के विभूतियोग तथा विश्वरूप संदर्शनयोग दोनों का स्मरण करना चाहिए। तुरन्त विकार [illegible] भाग जाएँगे। भगवान ने १६ वें अध्याय में साधकों को सचेत किया [illegible]

आढ्योऽभिजनवानस्मिकोऽन्योऽस्ति सदृशोमया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ (१६-१५)
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ (१६-१६)

"मैं बडा धनवान हूँ । कुटुम्बी हूँ । मेरे समान दूसरा कौन है ? मैं यज्ञ करूँगा ।" दान दूँगा । हर्ष प्राप्त करूँगा । लोग इस प्रकार के अज्ञान से मोहित हैं । इसलिये वे अज्ञानीजन मोह जाल में फँसे हुए हैं । वे अपवित्र नरक में गिरते हैं । भगवान के द्वारा दी गयी यह चेतावनी लोगों को जागृत करे, सचेत करे, यही हमारी अभिलाषा है । एक बार गहराई तक जाकर विचार करें तो स्पष्ट होगा कि सभी दृश्यवस्तु क्षर हैं । गीता का वाक्य है - "जातस्य हि धृवो मृत्युः" जन्म लेनेवाले का मरण निश्चित है ।

भगवान ने कहा है -

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ (८-१६)

ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाववाले हैं । पर मैं अक्षर हूँ । मुझको प्राप्त होकर किसीका पुनर्जन्म नहीं होता । इसलिए आवागमनवाले, नश्वर, जननमरण के हेतुभूत सांसारिक भोग विलासों के पीछे पड कर घमंड करने की क्या आवश्यकता है ? अतः सांसारिक व्यवहारों से मुक्त होकर अक्षर परमात्मा के आश्रय में सभी जीव जावें और अपने जीवन को धन्य बनावें, यही हमारी सलाह है ।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जब जब चित्त में विकारों का आविर्भाव हो तब तब गीता के उन उन श्लोकों का पाठ किया जाय । रोग के आने तक लोग बैठ न रहें, पहले से ही उपचार कर लें तो निरोग बन सकते हैं । भवरोगों से मुक्त होने, आत्मज्ञान से विलसित होने और भवबन्धनों से छूटने के लिए जीव गीता शास्त्र का आश्रय लें और अपने जीवन को धन्य बना लें यही हमारी सलाह है ।

हमारा कर्तव्य

अब तक हमने गीता की कई विशेषताओं पर ध्यान दिया। इस तरह गीता के बारे में कहते जायँ तो उसकी सीमा नहीं रहेगी। क्यों कि वह अनंत है। उसका थोडा सा भी अंश हम आचरण में ला सकें तो हमारा बडा उपकार होगा। गीता पारायण मनुष्य को पुण्य एवं उसका अनुष्ठान मोक्ष प्राप्त कराएगा। कहा गया है कि "गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।" गीता ज्ञान रूपी गंगाजल का सेवन कर जनन मरण के भवबंधन को तोडना चाहिए। मुमुक्षुओं को जानना चाहिए कि गीता आदि सद्ग्रन्थों का मिलना भी पुण्य विशेष ही है। क्यों कि मनुष्य जन्म की प्राप्ति, मोक्ष के बारे में जिज्ञासा का उत्पन्न होना, मोक्ष की प्राप्ति के लिए महापुरुषों के संदेश सुनने और उनके सद्ग्रन्थों के अध्ययन का मौका मिलना पुण्य विशेष ही है। श्री शंकराचार्य जैसे महापुरुष का यह मत है। भगवान श्रीकृष्ण की वाणी गीता की सेवा करने का सौभाग्य जिन्हें मिलता है वे धन्य हैं। जिन्हें वह मौका नहीं मिलता उन्हें इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। दिया के बुझने के पहले ही घर द्वार को संभालना जरूरी है। मानव शरीर बार बार मिलनेवाला नहीं है। अत: इसी जन्म में गीता जैसे सद्ग्रन्थों का अध्ययन कर, उसके संदेशों को अमल में लाकर इस जन्म को सार्थक बनाना हर मनुष्य का कर्तव्य है।

हर दिन नियमानुसार जिस तरह भोजन करते हैं उसी तरह सर्व वेदांतसार भगवद्गीता का पाठ अवश्य करना चाहिए। मनुष्य को समझना चाहिए कि भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को नहीं, उसी को गीता का बोध करा रहे हैं। अर्जुन ने जिस तरह अपने रथाश्वों के बागडोर श्रीकृष्ण के हाथों सौंप कर अपने कर्तव्य का पालन किया उसी तरह भगवान की शरण में जाकर अपने जीवन की जिम्मेदारी भी भगवान पर छोडनी चाहिए। तब श्रीकृष्ण ही हमारे जीवन रथ को सही मार्ग पर चला कर लक्ष्य तक पहूँचाएँगे।

गीता प्रचार

मनुष्य स्वयं तरे, दूसरों को भी पार पहुँचावे, यह हमारा ... धर्म है। स्वयं जिस परमानन्द को पाता है, उसे दूसरों में भी वितरित ... चाहिए। जिस गीता के पारायण से मनुष्य अपने जीवन को धन्य बनाता, उस गीता के ज्ञान से दूसरों को भी परिचित कराना चाहिए। जो लोग सां... विषय वासनाओं के जाल में फंस कर दुःख भोग रहे हैं उनकी रक्षा कौन सकते हैं ? क्या धनी लोग कर सकते हैं ? क्या बली लोग कर सक... नहीं, ज्ञानी ही उनकी रक्षा कर सकते हैं। हर प्रबुद्ध व्यक्ति का कर्तव्य ... वह गीता का नित्य पारायण करे, उसके संदेशों को आचरण में लावे, ... साथ दूसरों को भी इसके लिए प्रोत्साहित करे। वही ज्ञानदान है। वही ... है। भगवान ने स्वयं कहा कि सभी दानों में ज्ञानदान श्रेष्ठ है।

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप। (४-३३)

शास्त्र भी सब दानों से ज्ञानदान को ही श्रेष्ठ मानते हैं। जलदान, अ... गोदान, भूदान, वस्त्रदान, सुवर्णदान तथा घृतदान आदि दानों से ज्ञानदा... उत्तम है। इसलिए गीता के पढने के साथ साथ उसका प्रचार भी खूब क... चाहिए। गीता के अंत में स्वयं श्रीकृष्ण ने बताया भी है कि "प्रियकृत... अर्थात् गीता को व्याप्त करनेवाला मेरा प्रीतिपात्र है। अतः हर नागरिक... कर्तव्य है कि वह खुद सुधरे दूसरों को भी सुधारे। लोग हर गाँव और हर ... में गीता संघों की स्थापना करें, गीता भवनों का निर्माण करें, गीता का ... प्रचार करें। पाठशालाओं में गीता पाठ अनिवार्य बनाया जाय। घर ... गीता का संदेश गूँज उठे। गीता मुरली का मधुर मंजुल नाद दशों दिशाओं ... व्याप्त हो। जहाँ गीता पाठ होगा वहाँ श्रीकृष्ण का वास होगा। जहाँ कृष्ण ... वास होगा वहाँ विजय का वास होगा। ऐश्वर्य का वास होगा। नीति ... प्रशस्त होगा। सञ्जय के शब्दों में -

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिमम॥ (१८-७८)

उपसंहार

अब तक गीता से संबंधित कई विवरण पाठकों के उपयोगार्थ दिये गए हैं। उन सब का एक बार सिंहावलोकन कर इस लेख को समाप्त करना चाहता हूँ। गीता प्रत्यक्षरूप से भगवान का स्वरूप है। गीता की सेवा स्वयं भगवान की ही सेवा है। गीता पाठ स्वयं भगवान का ही स्मरण है। गीता के श्लोक स्वयं नारायण के ही दिव्यमंत्र हैं। शाक्कर के पकवान को कहीं भी दांतों से काट कर स्वाद लें तो मीठा ही मीठा लगेगा। इसी तरह गीता पाठ कहीं से भी करें ब्रह्मानन्द ही ब्रह्मानन्द मिलता है। गीता धर्ममय है। धर्मतरु है। इसमें कोई संदेह नहीं कि गीता तरु के हर फल पके हैं। अब प्रश्न उठता है कि गीता में इतनी अद्भुत शक्ति कैसे भर गयी ? इसका एक मुख्य कारण है। वह है इसका बोध करानेवाला व्यक्ति षोडशकलाप्रपूर्ण अवतारपुरूष है। संसार में कई प्रसिद्ध धर्म हैं। उन धर्मों के प्रवर्तकों में से कुछने कहा कि मैं ईश्वर का कुमार हूँ। और कुछ प्रवर्तकोंने अपने को भगवान का भृत्य कहा है। लेकिन गीताचार्यने अपने को भगवान कहा है। अतः यह साक्षात् भगवान की वाणी है। परंपरागत देवता की वाणी नहीं है। इसीलिए गीता प्रचंड आध्यात्मिक शक्ति से विराजित है। अर्जुन का मोह हिमालय पर्वत के समान बहुत बडा था। परन्तु वह गीताबोध के पूरा होते होते संपूर्ण रूप से लुप्त हो गया। जैसे -

अर्जुन उवाच

........................मोहोऽयं विगतो मम॥(११-१)

बडा विचित्र विषय है। गीता की अलौकिक शक्ति के लिए इससे बढ कर दृष्टांत और क्या चाहिए ? गी-गान करनेवालों को, त- तरनेवाला है गीता शास्त्र। जो उसके आश्रय में जाते हैं उनकी वह कल्पवृक्ष की तरह रक्षा करता है। निस्सहायों का वह सहायक है। अंधे का नेत्र है। लंगडे का पैर है। निर्बल का बल है। विषय वासना रूपी अग्नि के लिए वह बारिश है। वह क्षणभर में अज्ञानी को ज्ञानी बनाता है। कायर को शेर बनाता है। मरनेवाले

को अमर बनाता है। भवरोगों के लिए वह रामबाण जैसा दिव्य औषध है। मानव समाज की उत्तम संपत्ति है। जो गीता शास्त्र के अश्रित हैं उन्हें वह हाथ पकड कर उठाता है। सीढी दर सीढी चढाता है। उनकी कमियों को दूर करता है। उनकी आत्मा में निद्रित तेजस्विता को उज्वल बनाता है। निद्रित शक्ति को जागृत करता है। धीरे धीरे कैवल्य रूप परंधाम तक उन्हें पहुचाता है।

कर्म, भक्ति एवं ज्ञान रूपी तीन पुण्य धाराओंका वह संगम है। पावन तीर्थ है। ऐसी त्रिवेणी में स्नान करनेवाले धन्य हैं। कर्म, भक्ति, ध्यान एवं ज्ञान - ये चारों ऐसी चीजें है जो अलग नहीं की जासकतीं। एक दूसरी से मिली हुयी हैं। किसी भी व्यक्ति में किसी कारणवश एक तत्व की प्रधानता यद्यपि दिखाई पड सकती है, परन्तु बाकीतत्व भी उसमें अवश्य रहते हैं। जो यह रहस्य नहीं जानते वे ही आपस में झगडा करते रहते हैं। गीता ने सब का समन्वय किया है। किसी से कोई विवाद नहीं। उसने बताया कि अहंकार एवं त्याग का परित्याग ही सभी मार्गों का प्रधान लक्ष्य है। गीता की कई व्याख्याएं प्रकट हुईं। मगर सब से बडी महत्वपूर्ण व्याख्या स्वयं भगवान श्रीकृष्ण की जिन्दगी ही है। कर्म, भक्ति, ध्यान और ज्ञान को श्रीकृष्ण के जीवन नें समुचित स्थान मिल चुका है। उनका आदर्शजीवन है। उन्होंने अनुष्ठान वेदांत का अनुसरण किया। उनका जीवन गीता प्रबोध का मूर्तरूप है। क्योंकि श्रेष्ठ निष्कामकर्म का आचरण कर श्रीकृष्ण ने संसार को दिखाया। गीता ज्ञान का आश्रय लेकर तीनों लोकों का पालन किया। निरंतर निष्काम कर्म में रत रह कर निरतिशय शांति प्राप्त की। यह उनके जीवन की बडी विशेषता है। दूसरा तत्व है भक्ति। अपने गुरु महर्षि सांदीप एवं अन्यान्य बड़ों के प्रति श्रीकृष्णने बडी भक्ति प्रकट की। धर्मराज के राजसूययाग के अवसर पर भक्तों के चरण धोकर विनय का परिचय दिया। योग के बारे में विचार करें तो श्रीकृष्ण स्वयं योगेश्वर हैं। ज्ञान के बारे में विचार करें तो श्रीकृष्ण स्वयं ज्ञान के मूर्तरूप हैं। उन्होंने योग का बोध सूर्य को पहले ही कराया। इस प्रकार कर्म, भक्ति, योग

न के समन्वित रूप भगवान श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार अपने को गीतामय बनाया, उसी प्रकार हर जीव को चाहिए कि वह गीता द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनावे। यही गीता का संदेश है। गीता र एक विशेषता है। उसने अपनी बात मानने को किसी पर जोर जबर्दस्त । अनिवार्य नहीं बनाया। गीता बोध की समाप्ति पर श्रीकृष्णने अर्जुन

विमृश्यैतदशेषेन यथेच्छसि तथा कुरु ॥ (१८-६३)

अर्थात् 'इस रहस्ययुक्त ज्ञान को अच्छी तरह विचार कर। जैसे ता है वैसे इसे अपना।' भगवानने स्पष्ट रूप से कह दिया कि जो कुछ ना था सब कह दिया। यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह खाई है, यह चट्टान यह अमृत है, यह जहर है। यह श्रेष्ठ है यह प्रेय है। यह बंधन है, यह मोक्ष यह पुण्य है, यह पाप है। अब तुम जो चाहते हो उसे अपना सकते हो। पुरूष दूसरों को धर्म का बोध कराते हैं। बुद्धिमान शिष्य गुरु का इशारा ले लेते हैं, उनके द्वारा बोधित धर्म को हृदय से स्वीकार करते हैं। अर्जुन ने ही किया। फलस्वरूप उसका अज्ञान दूर हो गया।

गीता के बोध के सार के रूप में चार बातें यहाँ कहना चाहता हूँ। हर घनीभूत आत्म स्वरूप है न कि शारीरिक स्वरूप। लेकिन चित्त शुद्धि के में मनुष्य को उस ज्ञान का बोधनहीं होरहा है। इसलिए चित्त शुद्धि के से निष्काम कर्म करना चाहिए। ईश्वर को अर्पित कर निष्काम भाव से करते रहें तो थोडे समय में चित्त निर्मल बन जाएगा। निर्मल दर्पण में सूर्य बिंब जिस तरह प्रतिबिंबित होता है, साफ कपडे को जिस तरह रंग लग है, उसी तरह निर्मल चित्त में आत्मज्ञान उद्‌भूत होता है। इसीलिए गीता की निर्मलता एवं चित्त की शुद्धि के लिए आवश्यक कई साधन बताये । वास्तव में जीव माया के अंतर्गत है। वह जल्दी माया को जीत नहीं । इसलिए मायातीत परमेश्वर का आश्रय लेना बहुत जरूरी है। इसके

लिए भक्ति आवश्यक है। निर्मल भक्ति से भगवान का नाम संकीर्तन , जप, पूजा एवं प्रार्थना करते रहना चाहिए। भगवान ने कहा-

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ (९-२९)

अर्थात- जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। ' इससे स्पष्ट है कि जो साधक भक्ति से ईश्वर को भजते हैं उन पर वे अनुग्रह करते हैं। भगवान के अनुग्रह से साधक को बुद्धियोग की प्राप्ति होती है। इसीको आत्मज्ञान कहते हैं। मोक्ष आत्मज्ञानी के अति समीप रहता है। पुण्य कार्यों का आचरण, निष्काम कर्म और अचंचल भक्ति आदि आत्म ज्ञान की प्राप्ति में जीव की सहायता कहते हैं। घर में दीप जलता रहता है। पर खिडकी से थोडी सी भी हवा अंदर पहुँचे तो दीप बुझ जाता है। इन्द्रिय रूपी द्वारों से होकर विषय वासनाएं अंदर ह्रदय में पहुँचें तो ज्ञान का दीप बुझ जाता है। इसलिए इन्द्रिय निग्रह एवं विषय वासनाओं के प्रति विरक्ति का अभ्यास आरंभ से करते रहना चाहिए। इन्द्रिय निग्रह पर भगवान ने जहाँ तहाँ स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। कहा है-

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ। (३-४१)

यहाँ "आदौ" (पहले पहल) शब्द का प्रयोग किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि यह कार्य आरंभ से ही करना चाहिए। इस इन्द्रिय निग्रह को ही राजयोग कहते हैं। इन सब के सहयोग से चित्त के भयंकर दोषों को दूर कर लेना चाहिए। आत्मतत्व के विश्लेषण के क्षेत्र में प्रवेश करना चाहिए। प्रश्न कर लेना चाहिए कि मैं कौन हूँ ? धीशक्ति से पंचकोशों को अलग कर लेना चाहिए। ह्रदय में स्थित स्वयंज्योती के स्वरूप को अनुभव में लाना चाहिए। तब चित्त का तीसरा दोष 'आवरण ' दूर होगा। तब जीव मेघों में से बाहर निकलनेवाले सूर्य की तरह आत्म तेज से उज्वल बनेगा। वही मोक्ष है। इस शारीरिक स्थिति में ही उसे प्राप्त करना चाहिए। गीता का सार यही है। गीता पाठ के लिए काल का कोई नियम नहीं हैं। फिर भी सामान्य रूप से सबरे

जाग कर स्नान कर के गृह या तीर्थस्थल में पवित्र आसन पर बैठकर गीता का पारायण किया जाता है। इसी तरह अन्य अवसरों पर भी किया जाता है। जो भी हो गीता पाठ करते समय अंतःशुद्धि के साथ बाह्य शुद्धि भी आवश्यक है। गीता में 'शुचैदेशे' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि साधना की जगह शुद्ध होनी चाहिए। हर दिन एक अध्याय का पारायण करना चाहिए। समय रहे तो और भी ज्यादा अध्यायों का पारायण किया जासकता है। गीता पारायण की विधि पहले बतायी गयी है । पारायण के बाद गीता माहात्म्य के एक दो श्लोकों का पाठ अवश्य करना चाहिए। गीता पारायण के बाद भावार्थ का भी पठन करना अवश्यक है। श्लोकों के पठन के साथ उसके भावार्थ का भी पठन करने से विषय पाठकों की समझ में आएगा। इससे हृदय में स्थित विषय वासनाओं को दूर करने में मदद मिलेगी। जब भावार्थ ठीक तरह से समझ में न आवें तो श्लोक के पूर्व एवं बाद के श्लोकों का भी भाव जानकर संदेह को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे-

" प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति "(३-३३)

अर्थात् "लोग अपने अपने संस्कारों के अनुसार चेष्टा करते हैं। फिर इसमें किसी का हठ क्या करेगा ? "यहाँ संस्कारोंके प्रभाव की प्रबलता के बारे में बताया गया है। इन्द्रिय निग्रह के विरुद्ध नहीं कहा गया है। ३४ वें श्लोक पर ध्यान दें तो इस बात का स्पष्टीकरण हो जाएगा। भगवानने कहा-

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ (३-३४)

अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों में राग द्वेष छिपे रहते हैं। मनुष्य को उनके वश में नहीं होना चाहिए। क्यों कि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्ग में विघ्न डालनेवाले प्रबल शत्रु हैं। " यहाँ भगवान ने स्पष्टरूप से आदेश दिया कि इन्द्रिय निग्रह का अभ्यास हर एक को करना चाहिए। किसी श्लोक के भावार्थ में क्लिष्टता हो या संदेह हो तो उस श्लोक के आगे और पीछे के

श्लोकों का भावार्थ भी पढ कर संदेह को दूर कर लेना चाहिए। इस तरह हर दिन गीता का पाठ कर हृदय को पावन बनाना चाहिए। आजकल युग पश्चिमी सभ्यता के मोह से प्रभावित है। जो लोग यह समझते हैं कि पश्चिमी सभ्यता के अनुसार शारीरिक भोग विलास ही वास्तविक सत्य है उनके लिए गीता का पाठ दवा के रूप में काम करता है। गीता स्पष्ट करती है कि वा[illegible]विकता, ऐहिकभोगों में नहीं, वह तो आत्मा के विकास एवं उसकी आ[illegible] में है।

कुछ लोगों का कहना है कि गीता का पाठ अनपढ [illegible] कैसे कर सकेंगे ? ऐसे लोगों के बारे में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के [illegible] श्लोकों में बताया है। जैसे-

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ (१३-२५)

अर्थात् ''जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं वे तत्व के जानने[illegible] सुन कर ही तदनुसार उपासना करते हैं। श्रवणपरायण वाले वे पु[illegible] संसार सागर को निःसन्देह तर जाते हैं। ''विद्यावान होना [illegible] विद्यावान न हों तोभी तात्विकों से आध्यात्मिक विशेषताओं [illegible] उसके अनुसार आचरण कर लोग तर सकते हैं। महात्मा गांधी[illegible] एक बार सलाह दी कि गीता पाठ के लिए ही सही, संस्कृत सी[illegible]

गीता समाप्त हो गयी। श्रीकृष्ण ने दिव्य औषध का प्रयोग किया। अर्जुन की व्याधि दूर हुयी। वैद्य ने पूछा कि तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा ? श्रीकृष्ण ने वही प्रश्न अर्जुन से पूछा। तुरन्त अर्जुन ने जवाब दिया 'नष्टो मोहः'। अर्जुन ने उत्साह के साथ कहा कि 'महात्मन्! मेरा अज्ञान दूर हो गया है। मानसिक व्याधि दूर हुयी। मेरा जीवन धन्य हुआ। यह सब आपके अनुग्रह का ही फल है।' गीता रूपी वैद्य का प्रथम प्रयोग मोहरूपी व्याधि से ग्रस्त अर्जुन पर सफल हुआ। तुरन्त सञ्जय भी उस औषध का सेवन कर "हृष्यामि च पुनः पुनः हृष्यामि च मुहुर्मुहुः'' कहते हुए आनन्द से नाचने लगे। भगवान के साथ

फल दो हैं। (१) शोक राहित्य (२) अतिहर्ष। ये दोनों अर्जुन की तरह सञ्जय को भी प्राप्त हुए। इस तरह वैद्य के गीता रूपी औषध का प्रयोग दूसरे व्यक्ति (सञ्जय) पर भी सफल हुआ। जब अर्जुन एवं सञ्जय जैसे दो महापुरुष गीता के श्रवण से तर गये तो दूसरे लोग भी क्यों तर नहीं सकते ? परन्तु इसके लिए गीता पाठ एवं श्रवण अत्यंत आवश्यक हैं। गीता पाठ तभी सफल होगा जब कि पाठक या श्रोता का हृदय श्रद्धा से भरा रहे।

गीताशास्त्र अर्जुन एवं सञ्जय के अलावा समस्त प्राणि जगत् को शांति प्रदान कर रहा है। गीता रूपी कल्पवृक्ष शाखाओं तथा उपशाखाओं से विस्तरित होकर प्राणि जगत् को छाया एवं फल प्रदान कर रहा है। पवित्र गीता मकरंद का पान कर भक्त जन मोक्ष धाम पहुँच कर परमानन्द का अनुभव क्यों न करें ? गीताध्ययन रूपी उत्तम ज्ञान यज्ञ कर निर्वाण सुख प्राप्त क्यों न करें ? हम हृदय से चाहते हैं कि सर्वेश्वर की कृपा से परम करुणार्द्र महर्षियों की अनुकंपा से जन जन में गीता पाठ की आसक्ति बढे। गीता शास्त्र के पठन एवं श्रवण के पुण्य प्रताप से लोगो के सांसारिक बन्धन तुड जावें। गीता के परमार्थ रूपी पीयूष की वर्षा से जनता का हृदय क्षेत्र सस्य श्यामल बने और निर्वाण रूपी फसलों का उत्पादन हो। गीता का शंखारव दशों दिशाओं में गूँज उठे। वह लोगों को अज्ञान की निद्रा से जगावे। गीता गंगा में गोते लगा कर भक्त जन सांसारिक बाधाएँ रूपी मैल धो लें और निरतिशय पारमार्थिक सुख का अनुभव करें। भगवान के अनुग्रह से गीता तत्व की अनुभूति प्राप्त कर लोग अपने हार्दिक तमःपटल को विच्छिन्न करें और ब्रह्मानन्द के सागर में गोते लगा कर अपना जीवन धन्य बनावें।

-- ॐ तत् सत् --

ॐ श्री कृष्णार्पणमस्तु।

श्रीकृष्ण परब्रह्मणेनमः
श्री सद्गुरु परमात्मनेनमः - सर्व महर्षिभ्यो नमः

गीतामकरंद व्याख्या सहित
श्रीभगवद्गीता

अथ प्रथमोऽध्यायः

पहला अध्याय

अर्जुन विषादयोगः
अर्जुन - विषाद - योग

अध्याय का शीर्षक -

'अर्जुन - विषाद - योग'। योग का मतलब है मेल। जीवात्मा परमात्मा का मेल या मिलाप योग कहा जाता है। वह संयोग या मिल निष्कामकर्म या भक्ति या ध्यान (आत्मसंयम) या ज्ञान से होता है। इसीलि उन मार्गों या साधनों का उपयोग करने के अनुसार उनके कर्मयोग, भक्तियो ध्यानयोग और ज्ञानयोग के नाम हुए। प्रश्न उठता है कि क्या विषाद भी ए योग है? विषाद का मतलब है दुःख। दुःख कैसे योग हो सकता है? सांसारि वस्तुओं तथा भोग भाग्य के लिए दुःख हो तो वह योग नहीं है। पर दैव या धर्म के लिए दुःख हो तो वह योग ही है। क्यों कि अर्जुन ने तीनों लोकों के राज्य का तिनके के बराबर माना। सांसारिक सुखों की परवाह नहीं की। धर्म के लिए तीव्र गति से परिताप किया। ऐसी स्थिति मुमुक्षुओं के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अर्जुन को जो वैराग्य भाव हुआ धर्म जिज्ञासा हुयी और तीव्र परिताप हुआ वह ज्ञान प्राप्ति एवं परमात्मा के संयोग के लिए उपयोगी है। इसलिए अर्जुन का विषाद एक योग के रूप में वर्णित हुआ है। उसीका विवरण इस अध्याय में दिया गया है। इसलिए इस अध्याय का नाम अर्जुनविषादयोग पड़ा।

इस अध्याय के प्रधान विषय -

(१) दोनों सैनिक दलों के प्रधान वीरों का वर्णन (१ से ११ तक)

(२) उन उन सैनिक दलों के शंखनाद (१२ से १९)

(३) अर्जुन के सैन्य दलों के निरीक्षण का विवरण (२० से २७ तक)

(४) मोहग्रस्त अर्जुन के विषाद से भरे वचन। (२८ से ४७ तक)

पूर्व के इतिहास से इस अध्याय का संबंध -

महाभारत युद्ध का आरंभ हुआ। दस दिन बीत गये। भीष्म युद्धरंग में गिर गये। यह समाचार तुरन्त सञ्जय ने धृतराष्ट्र को सुनाया। धृतराष्ट्र ने शोक किया। उन्होंने सञ्जय से कहा कि जब से युद्ध का आरंभ हुआ, तब से अब तक जो कुछ हुआ, उसका समस्त विवरण सुनाओ। तब सञ्जय ने दोनों दलों के सैनिकों का युद्ध के लिए सन्नद्ध होना, रणक्षेत्र में भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को ज्ञानोपदेश का दिया जाना आदि सभी विषयों का सविस्तार विवरण धृतराष्ट्र को सुनाया। वही यह गीताशास्त्र है।

अवतारिका - युद्ध के बारे में धृतराष्ट्र सञ्जय से प्रश्न कर रहे हैं।

१. धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥

शब्दार्थ - धृतराष्ट्र उवाच = धृतराष्ट्र बोले। सञ्जय = हे सञ्जय! धर्मक्षेत्रे = धर्मभूमि रूपी। कुरुक्षेत्रे = कुरुक्षेत्र में। युयुत्सवः = युद्ध करने के विचार से तत्पर। समवेता = इकट्ठे हुए। मामकाः = मेरे संबंधी। पाण्डवाश्चैव = पाण्डव। किम् = क्या। अकुर्वत = किया?

भावार्थ - धृतराष्ट्र बोले - हे सञ्जय! धर्मभूमि कुरुक्षेत्र में एकत्रित, युद्ध की इच्छावाले मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया ?

व्याख्या - धर्म शब्द से गीता का आरंभ हुआ। वह मंगलदायक शब्द है। धर्म शब्द का प्रयोग आरंभ में करके श्री महर्षि व्यास ने गीता के मंगलाचरण

का श्रीगणेश किया। क्योंकि भगवान धर्मस्वरूप हैं। धर्म शब्द के उच्चारण से भगवान के नाम का व्यासजी ने स्मरण व गान किया। गीताशास्त्र का लक्ष्य एवं सारांश इस प्रथम शब्द के द्वारा स्पष्ट कर दिया गया है। वह है धर्म की स्थापना और उसकी रक्षा। इसी के लिए परमात्मा लोक में अवतरित होते रहते हैं। इसीलिए कहा गया है ''धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे (४-४) धृतराष्ट्र का अर्थ है राष्ट्र को धारण करनेवाला, जो अपना नहीं, उस राष्ट्र को अपना समझनेवाला। यह शरीर ही विश्व है। इन्द्रिय, बुद्धि और मन आदि दिखायी नहीं देते। वास्तव में वे उसके अपने नहीं हैं। आत्मा ही उसका अपना देह और अंग आदि दृश्य पदार्थ है। अज्ञानी पुरुष जो अपना नहीं, आत्मेतर है उस देह आदि दृश्य पदार्थ रूपी राष्ट्र को अपना समझता है। उस पर ममता एवं अहंभाव दर्शाता है। इसीलिए वह धृतराष्ट्र है। अज्ञान से भरे सभी व्यकित धृतराष्ट्र ही हैं। हर मनुष्य का परम कर्तव्य है कि गीता शास्त्र के श्रवण से उस अज्ञान के अंधकार को दूर करे। 'कुरुक्षेत्र' बडा पुण्यक्षेत्र है। पंजाब के 'अंबाला' नगर के दक्षिण और दिल्ली महानगर के उत्तर में हरियाणा राज्य में यह आबाद है। महाभारत के वनपर्व के ८३ वें अध्याय एवं शल्यपर्व के ५३ वें अध्याय में इस कुरुक्षेत्र की महिमा का विस्तृत वर्णन है। पुराने जमाने में ब्रह्मदेव, इन्द्रदेव तथा अग्निदेव ने यहाँ तप किया। कौरव तथा पाण्डवों के मूलपुरुष महाराजा कुरु ने उस जगह पर कई धर्म कार्य किये। एक समय में कुरु भूपाल ने उस प्रदेश में हल चलाया था। इसलिए उस क्षेत्र का नाम कुरुक्षेत्र पडा। इन्द्र ने कुरु भूपाल को वर दिया था कि जो व्यक्ति उस जगह तप करेगा या मृत्यु का वरण करेगा वह उत्तमलोक प्राप्त करेगा। पूर्वकाल में परशुराम ने वहीं पर पिता को तर्पण दिया। कितने ही महानुभावों ने उस जगह पर कई धर्मकार्य किये। इसलिए वह धर्मक्षेत्र कहलाया।

धृतराष्ट्र ने सोचा होगा कि ऐसे धर्मक्षेत्र में पदार्पण करने पर अपने पुत्र दुर्योधन आदि के हृदय में दया आदि सद्गुणों का उदय हुआ हो, धर्मराज

आदि के हृदय में अहिंसा आदि सद्गुण उमड पडे हों जिससे युद्ध विरमण का संकल्प उन लोगों ने किया हो। इसी भाव से धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया होगा कि युद्ध में उन्होंने क्या किया ?

धृतराष्ट्र ने 'मामकाः' अर्थात् मेरे, शब्द का प्रयोग कौरवों के लिए विशेष रूप से किया। इससे स्पष्ट है कि आत्मीयजन होने पर भी पाण्डवों के बारे में धृतराष्ट्र के दिल में पक्षपात की भावना काम कर रही है। 'सञ्जय' सम्यक जयवाला ही सञ्जय है। मतलब है कि इन्द्रियों को उसने अपने वश में भलीभांति कर लिया। सञ्जय के वचन स्पष्ट करते हैं कि इन्द्रियों को जीतने वाले पवित्र हृदयवाले ही गीताज्ञान का श्रवण करने, उसे आचरण में लाने और उसे समझाने के योग्य हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि निम्न कुल (सूत कुल का होने पर भी) में जन्म लेने पर भी अपनी योग्यता, अपने हृदय की शुद्धता के बल पर व्यास आदि महर्षियों के अनुग्रह के पात्र बनकर उसने प्रत्यक्ष रूप से गीता श्रवण एवं विश्व रूप के दर्शन का महाभाग्य प्राप्त किया। अतः स्पष्ट है कि आत्मोन्नति के मार्ग में जात-पांत एवं कुल-धर्म आदि अवरोध नहीं हैं।

दुर्योधन की विजय के बारे में जानने के लिए धृतराष्ट्र ने प्रश्न किया "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे . . . किमकुर्वत सञ्जय"। प्रश्न के रूप में किये गये गीता के इस प्रथम श्लोक के जवाब में सञ्जय "यत्र योगेश्वरः कृष्णो . . . धृवा नीतिर्मतिर्मम" (१८-७८) (जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन रहेंगे वहाँ विजय निश्चित है) वाले गीता के अंतिम श्लोक के रूप में संभव है जवाब देना चाहते हों पर उस भाव के पोषण केलिए सहायक वृत्तांत (दृष्ट्वातु पाण्डवानीकं . . . वगैरह श्लोकों के द्वारा) सुनाने लगे।

सम्बन्ध - धृतराष्ट्र के प्रश्न के जवाब में सञ्जय कहते हैं।

सञ्जय उवाच -

२. *दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा।*
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥

शब्दार्थ - सञ्जय उवाच = सञ्जय ने कहा । तदा = तब । राजा = राजा । दुर्योधन = दुर्योधन । व्यूढं = व्यूहों के रूप में संगठित । पाण्डवानीकं = पाण्डव सेना को । दृष्ट्वातु = देख कर । (इस के बाद) आचार्यं = द्रोणाचार्य के । उपसङ्गम्य = समीप पहुँच कर । वचन = वाक्य । (जो बोलना चाहता था) अब्रवीत = बोला ।

भावार्थ- सञ्जय बोले - उस समय राजा दुर्योधन ने व्यूहरचनायुक्त पाण्डवों की सेना को देखकर और द्रोणाचार्य के पास जाकर यह वचन कहा ।

व्याख्या - पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न ने युद्ध शास्त्र के अनुसार अपनी सेना का संगठन वज्र नामक व्यूह के रूप में किया । संभव है कि पाण्डवों की सेना की इस अद्भुत व्यूह रचना को देख कर दुर्योधन विस्मित हो गये हों और उससे भी बढ कर अद्भुत रूप में अपनी सेना की व्यूह रचना कराना चाहते हों, इसीलिए झट यह समाचार गुरु द्रोणाचार्य को उन्होंने दिया ।

दुर्योधन राजा था । उनका पद सर्वाधिकार संपन्न सर्वोत्कृष्ट था । यहाँ संदेह हो सकता है कि ऐसे सर्वोत्कृष्ट पद पर विराजमान राजा दुर्योधन को निम्न पद पर आसीन एक सेनानी के पास खुद जाने की क्यों आवश्यकता हुयी ? इसके निम्न कारण होंगे -

१. पाण्डवों की सेना को, उसमें भी प्रधान रूप से भीम आदि को देख कर दुर्योधन संभव है भयभीत हो गया हो (आरंभ में ही राजा का धीरज खोना अशुभ सूचक है)

२. द्रोणाचार्य सेनापतियों में से एक हैं । उन्हें अपने स्थान से बुलाएँ तो संभव है कि सेना तितर बितर हो जाय ।

३. द्रोणाचार्य वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध थे । इसके अलावा वे उनके गुरु भी थे । ऐसे व्यक्ति के प्रति विनम्रता दर्शाना आवश्यक था ।

४. किसी न किसी तरह द्रोणाचार्य को अपने अनुकूल बना कर संभव है कि उनका उपयोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए करना चाहते हों । उपर्युक्त

सभी कारणों को दृष्टि में रख कर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य को अपने पास बुला नहीं भेजा। स्वयं आचार्य के यहाँ जाकर समाचार दिया।

सम्बन्ध - दुर्योधन द्रोणाचार्य के यहाँ पहुँच कर इस प्रकार कहते हैं -

३. *पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम्।*
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥

शब्दार्थ - आचार्य = हे गुरुश्रेष्ठ। तव = आपका। शिष्येण = शिष्य। धीमता = बुद्धिमान, दृपद पुत्रेण = राजा द्रुपद के पुत्र के द्वारा। व्यूढाम = व्यूहाकार में रचित। पाण्डुपुत्राणाम = पाण्डुओं का। एताम् = यह। महतीम = बडी चमूम् = सेना को। पश्य = देखिये।

भावार्थ - हे आचार्य ! आपके बुद्धिमान् शिष्य द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नद्वारा व्यूहाकार खडी की हुई पाण्डुपुत्रों की इस बडी भारी सेना को देखिये॥

व्याख्या - इन श्लोकों में "दुर्योधन उवाच" होना चाहिए था। लेकिन वैसा प्रयोग नहीं हुआ। पापी होने के कारण उनका नाम पुण्यात्मा गीता पाठकों के द्वारा उच्चिरित न कराने के उद्देश्य से संभव है कि ऐसा प्रयोग नहीं किया गया हो। दुर्योधन राजनीति में चतुर था। कार्य साधने के लिए राजा होकर भी खुद एक सेनापति के यहाँ जाकर (गुरु द्रोणाचार्य से) बात ही नहीं की, बल्कि उन्हें क्रुद्ध करने का भी प्रयत्न किया। उन्होंने कहा कि दृपद के पुत्र आपके शिष्य धृष्टद्युम्न ने पाण्डव सेना को भलीभांति संगठित किया। अपने इन वचनों के द्वारा उन्होंने दृपद की शतृता का स्मरण दिलाया। इसके अलावा यह कह कर कि आपका शिष्य ही शत्रुपक्ष का नेतृत्व स्वीकार कर आप जैसे गुरूजी पर तलवार उठा रहा है, गुरु द्रोणाचार्य को उत्तेजित करने का भी प्रयत्न किया। विपक्ष एवं उसके सेनानायक के बारे में बढा चढा कर कहने का आशय अपने पक्ष के नायक के दिल में बदला लेने की भावना को बल पहुँचाना था। दुर्योधन ने धीमता शब्द का प्रयोग किया। इससे स्पष्ट है कि धृष्टद्युम्न व्यूह की रचना में बड़ा चतुर है एवं विज्ञ है। इसीलिए पाण्डवों ने उसे अपना

सेनापति बनाया।

सम्बन्ध - पाण्डव-सेनाकी व्यूहरचना दिखलाकर अब दुर्योधन तीन श्लोकों द्वारा पाण्डव-सेना के प्रमुख महारथियों के नाम बतलाते हैं -

४. *अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि।*
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥

५. *धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्।*
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥

६. *युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्।*
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥

शब्दार्थ - अत्र = इस पाण्डव सेना में। महेष्वासाः = बडे धनुर्धर। युधि = युद्ध में। भीमार्जुन समाः = भीमार्जुन के समान। शूराः = शूर। (सन्ति = हैं)। (वे इस प्रकार हैं) युयुधानः = युयुधान। विराटश्च = विराट। महारथः = महारथी। दृपदश्च = दृपद। धृष्टकेतुः = धृष्टकेतु। चेकितानः = चेकितान। वीर्यवान = पराक्रमी। काशीराजश्च = काशीराजा। पुरुजित् = पुरुजित। कुन्ति भोजश्च = कुन्ति भोज। नर पुङ्गवः = मनुज श्रेष्ठ। शैब्यश्च = शैब्य। विक्रान्तः = पराक्रमी। युधामन्युश्च = युधामन्यु। वीर्यवान = शूरवीर। उत्तमौजाश्च = उत्तमौजा। सौभद्रः = अभिमन्यु। द्रौपदेयाश्च = द्रौपदी के पुत्र उपपाण्डव। सर्वे = ये सब। महारथाः एव = महारथी हैं।

भावार्थ -

इस सेना में बडे-बडे धनुषोंवाले तथा युद्ध में भीम और अर्जुन के समान शूरवीर सात्यकि और विराट तथा महारथी राजा द्रुपद, धृष्टकेतु और चेकितान तथा बलवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज और मनुष्यों में श्रेष्ठ शैब्य, पराक्रमी युधामन्यु तथा बलवान् उत्तमौजा, सुभद्रापुत्र अभिमन्यु एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र ये सभी महारथी हैं।

व्याख्या - दुर्योधन ने कहा कि उपर्युक्त सभी वीर भीमार्जुन के समान हैं। इससे स्पष्ट होता है कि वे दोनों (भीमार्जुन) बडे वीर हैं और दोनों दुर्योधन के दिल में डर पैदा करनेवाले हैं।

दुर्योधन ने पहले अपने दल के वीरों का परिचय न करा कर, विपक्ष के वीरों का परिचय कराया। इसके दो कारण हैं। (१) आचार्य द्रोण के हृदय में शतृसेना के प्रति रोष पैदा करना (२) अपनी सेना के बारे में धीरज का कम होना या इस निश्चय पर आना कि अपनी सेना से विपक्ष की सेना ही शक्तिवान है। "महारथी" वह है जो दस हजार धनुर्धारियों के साथ अकेले लोहा ले सकता है, और शस्त्र विद्या में प्रवीण है।

एकोदश सहस्राणि योधयेद्यन्तु धन्विनाम्।
शस्त्र शास्त्र प्रवीणश्च महारथि इति स्मृतः॥

युयुधानु - इनका और एक नाम सात्यकि है।

धृष्टकेतु - चेदि देश का राजा है। शिशुपाल का पुत्र है।

पुरुजित् और कुन्ति भोज - ये दोनों कुन्ती के भाई हैं।

द्रौपदेय - द्रौपदी के पुत्र उपपाण्डव हैं। प्रतिविन्दय, श्रुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक एवं श्रुतसेन। ये पाँचों पुत्र क्रम से धर्मराज एवं भीमसेन आदि से उत्पन्न द्रौपदी के पुत्र हैं।

सम्बन्ध - इस प्रकार पाण्डवदल के वीरों के बारे में बता कर, अब अपने दल के मुख्य योद्धाओं के बारे में दुर्योधन बताते हैं।

७. ***अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।***
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते॥

शब्दार्थ - द्विजोत्तम = हे ब्राह्मण श्रेष्ठ। अस्माकं तु = अब हमारे पक्ष में। ये जो। विशिष्टाः = प्रमुख। मम = मेरे। सैन्यस्य = सेना के। नायकाः = नायक। तान = उनके बारे में। ते = तुझे। संज्ञार्थं = स्मरणार्थ। ब्रवीमि = कह रहा हूँ।

भावार्थ - हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! अपने पक्ष में भी जो प्रधान हैं, उनको आप समझ लीजिये। आपकी जानकारी के लिये मेरी सेना के जो जो सेनापति हैं, उनको बतलाता हूँ ॥

व्याख्या - 'तु' पद यहाँ ''भी'' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसका 'अस्माकं' के साथ प्रयोग करके दुर्योधन यह कहना चाहते हैं कि केवल पाण्डव सेना में ही नहीं अपितु अपने पक्ष में भी बहुत से महान् शूर वीर हैं।

इससे स्पष्ट है कि दुर्योधन चाहते हैं कि शतृपक्ष के वीरों के परिचय से कहीं आचार्य द्रोण विचलित न हो जायँ, इसलिए अपने पक्ष के धीर वीर शूरों के बारे में भी आचार्य द्रोण को उत्साह एवं विश्वास दिलाने के लिए कहने लगते हैं।

८. ***भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।***
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥

९. ***अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।***
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥

सौमदत्तिर्जयद्रथः (पाठान्तर)

शब्दार्थ - भवान् = आप। भीष्मश्च = भीष्म। कर्णश्च = कर्ण। समितञ्जयः = युद्ध में विजयी बननेवाले। कृपश्च = कृपाचार्य। अश्वत्थामा = अश्वत्थामा। विकर्णश्च = विकर्ण। तथैव च = वैसे ही। सौमदत्तिः = सौमदत्त का पुत्र भूरिश्रव। मदर्थे = मेरे लिए। त्यक्त जीविताः = प्राण त्याग देने को उद्युक्त। बहवः = बहुत से। अन्ये च = दूसरे। शूराः = शूर। नानाशस्त्र प्रहरणाः = विविध अस्त्र शस्त्रों से सन्नद्ध। सर्वे = सभी। युद्ध विशारदाः = युद्ध में प्रवीण हैं।

भावार्थ - आप (द्रोणाचार्य) और पितामह भीष्म तथा कर्ण और संग्रामविजयी कृपाचार्य तथा वैसे ही अश्वत्थामा, विकर्ण और सोमदत्त का पुत्र भूरिश्रवा और भी मेरे लिये जीवन की आशा त्याग देनेवाले बहुत-से शूरवीर अनेक

प्रकार के शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और सब-के-सब युद्ध में चतुर हैं।

व्याख्या - यहाँ प्रश्न उठता है कि अपने पक्ष के वीरों के नाम लेते समय दुर्योधन ने अपने सेनापति भीष्म का नाम पहले क्यों नहीं लिया ? गुरु द्रोण का नाम क्यों लिया ? संभव है कि दुर्योधन ने सोचा हो कि गुरु का नाम पहले न लें तो वे कुछ अन्यथा न समझें, संभव है कि दुर्योधन ने सोचा हो कि पहले गुरु का नाम लेना ही उचित है, या संभव है कि गुरु को उत्तेजित करने के लिए ऐसा कहा हो।

वास्तव में दोनों दलों के योद्धाओं को गुरु द्रोणाचार्य जानते थे। फिर भी उनसे बताने के बहाने दुर्योधन ने फिर एक बार उन सब का स्मरण किया। बलाबल का निर्धारण करना चाहा। दुर्योधन के मुँह से एक शब्द निकल पडा "त्यक्त जीविता:"। यह शब्द अमंगल सूचक है। कुछ लोगों का मत है कि इस शब्द का प्रयोग करना दुर्योधन के पक्ष के लिए मंगल सूचक नहीं है।

सम्बन्ध -

अपने महारथी योद्धाओं की प्रशंसा करके अब दुर्योधन दोनों सेनाओं की तुलना करते हुए अपनी सेना को पाण्डव-सेना की अपेक्षा अधिक शक्तिशालिनी और उत्तम बतलाते हैं -

१०. अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम्॥

शब्दार्थ - तत् = वैसी। अस्माकम् = हमारी। बलम् = सेना। भीष्माभिरक्षितम् = भीष्म के द्वारा सुरक्षित। अपर्याप्तम = अपरिमित है। एतेषां = इन पाण्डओं की। इदम् = यह बलं तु = सेना। भीमाभिरक्षितम् = भीम के द्वारा सुरक्षित। पर्याप्तम् = परिमित या सीमित है।

भावार्थ - भीष्मपितामहद्वारा रक्षित हमारी वह सेना सब प्रकार से अजेय है और भीमद्वारा रक्षित इन लोगों की यह सेना जीतने में सुगम है।

व्याख्या - इस श्लोक के अपर्याप्तं तथा पर्याप्तं इन दो शब्दों के अर्थ के बारे में व्याख्याकारों में मतभेद दिखायी देता है। आनन्दगिरि एवंशंकरानन्द आदि ने अपर्याप्तं शब्द का अर्थ 'अपरिमित' माना। पर श्रीधर आदि ने असंपूर्ण एवं असमर्थ माना है। यहाँ पहला अर्थ ही समीचीन लगता है।

सम्बन्ध - इस प्रकार भीष्मद्वारा संरक्षित अपनी सेना को अजेय बताकर, अब दुर्योधन सब ओर से भीष्म की रक्षा करने के लिए द्रोणाचार्य आदि समस्त महारथियों से अनुरोध करते हैं -

११. अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि॥

शब्दार्थ - भवन्तः = आप। सर्व एव = सभी। सर्वेषु = समस्त। अयनेषु च = व्यूह के मार्गों में। यथाभागम् = उन उन के नियत स्थान में। अवस्थिताः = स्थित रह कर। भीष्म मेव = भीष्म की। अभिरक्षन्तु = सब ओर से रक्षा करें।

भावार्थ - इसलिये सब मोर्चों पर अपनी-अपनी जगह स्थित रहते हुए आप लोग सभी निःसन्देह भीष्मपितामह की सब ओर से रक्षा करें।

व्याख्या - भीष्म पितामह महान् पराक्रमी थे। वे अपनी रक्षा आप कर सकते थे। ऐसी हालत में उनकी रक्षा करने के लिए दुर्योधन ने क्यों कहा? इसका एक कारण है। द्रुपद का पुत्र शिखण्डी स्त्री के रूप में था। इसलिए भीष्म ने प्रतिज्ञा की कि मैं उससे युद्ध नहीं करूँगा। पाण्डव पक्ष में अब शिखण्डी था। वह सामने आ जाय तो भीष्म युद्ध नहीं करेंगे यह निश्चित था। ऐसा अवसर मिल जाय तो भीष्म का वध करना पाण्डवों के लिए आसान था। यह रहस्य दुर्योधन जानते थे। इसीलिए अपने पक्ष के सब योद्धाओं से दुर्योधन ने कहा कि सब ओर से सतर्क रह कर भीष्म की रक्षा करें। अर्थात् शिखण्डी को युद्ध में भीष्म पितामह के सामने न आने दें। दुर्योधन जानते थे कि भीष्म पितामह इतने शक्तिवान एवं समर्थ हैं कि जीवित रहें तो समस्त शत्रुओं को अकेले ही मार गिरा सकते हैं। इसीलिए दुर्योधन ने अपनी सेना को ऐसा आदेश दिया।

सम्बन्ध - इस प्रकार दुर्योधन का समाचार सुना कर सञ्जय युद्ध क्षेत्र में बाद को घटी घटनाएँ बता रहे हैं -

१२. तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥

शब्दार्थ - प्रतापवान = पराक्रमी । कुरुवृद्धः = कौरवों मे बडे । पितामहः = पितामह भीष्म । तस्य = उस दुर्योधन को । हर्षम् = हर्ष । संजनयन् = संचरित कराते हुए । उच्चैः = जोर से । सिंहनादम् = सिंहनाद । विनद्य = कर । शंखम् = शंख । दध्मौ = बजाया ।

भावार्थ - कौरवों में वृद्ध बडे प्रतापी पितामह भीष्म ने उस दुर्योधन के हृदय में हर्ष उत्पन्न करते हुए उच्च स्वर से सिंह की दहाड के समान गरजकर शङ्ख बजाया ।

व्याख्या - 'प्रतापवान्' शब्द का प्रयोग भीष्म के लिए किया गया है । परशुराम जैसे महान् शक्ति संपन्न योद्धा को भी हरा सकने की अपरिमित शक्ति से संपन्न होने के कारण भीष्म प्रतापवान् कहे गये हैं ।

सेनापति भीष्म समझ गये कि शतृपक्ष को देख कर राजा दुर्योधन व्याकुल हुए हैं । इसे दूर कर उन्हें उत्साह दिलाने के लिए सेनापति भीष्म ने जोर से शंख ध्वनि की । सेनापति का शंखनाद युद्ध के आरंभ का सूचक भी है। कुरुवृद्धः कुरुवंश के वयोवृद्धों में बाह्लिक के बाद दूसरे व्यक्ति भीष्म ही हैं । इसीलिए वे पितामह कहलाये ।

सम्बन्ध - सञ्जय कहते हैं कि - भीष्म के युद्धोत्साह को देख कर बाकी योद्धाओं ने भी शंखनाद किया ।

१३. ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः ।
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥

शब्दार्थ - ततः = बाद । शंखाश्च = शंख । भेर्यश्च = नगारे । पणवानक गोमुखाः = ढोल, मृदङ्ग, नरसिंघे । सहसैव = तुरन्त । अभ्यहन्यन्त = बजाये गये । सशब्दः = वह ध्वनि । तुमुलः = चारों ओर व्याप्त । अभवत् = हुयी ।

भावार्थ - सेनापति भीष्म के शंखनाद के बाद बाकी योद्धाओं ने शङ्ख और नगारे तथा ढोल, मृदङ्ग और नरसिंघे आदि बाजे एक साथ ही बजाये। उनका वह शब्द बडा भयंकर हुआ।

व्याख्या - सेनापति की शंख ध्वनि तथा सिंहनाद ने बाकी सैनिकों को उत्साहित किया। उन्होंने भी कई प्रकार के युद्द के बाजे बजाये।

सम्बन्ध - धृतराष्ट्र ने पूछा था कि युद्ध के लिये एकत्र होने के बाद मेरे और पाण्डु के पुत्रों ने क्या किया, इसके उत्तर में सञ्जय ने अब तक धृतराष्ट्र के पक्षवालों की बात सुनायी, अब पाण्डवों ने क्या किया, उसे पाँच श्लोकों में बतलाते हैं -

१४. ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यदने स्थितौ।
माधवः पाण्डवाश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः॥

शब्दार्थ - ततः = इसके बाद। श्वेतैः = सफेद। हयैः = घोडों से, युक्ते = युक्त। महदि = बडा। स्यन्दने = रथ में। स्थितौ = स्थित। माधवः = श्रीकृष्ण। पाण्डवाश्चैव = अर्जुन। दिव्यौ = दिव्य। शंखौ = शंख। प्रदध्मतुः = जोर से बजाया।

भावार्थ - इसके अनन्तर सफेद घोडों से युक्त उत्तम रथ में बैठे हुए श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन ने भी अलौकिक शङ्ख बजाये।

व्याख्या - गीता में श्रीकृष्ण भगवान इसी संदर्भ में मञ्च पर आये। श्वेत घोडोंवाले अद्भुत दिव्यरथ में विराजमान नरनारायण कृष्णार्जुन के रूप में प्रत्यक्ष हुये। श्वेत रंग सत्वगुण का सूचक है। धर्म को प्रतिबिंबित करता है। इससे स्पष्ट है कि विजय पाण्डवपक्ष की ही होगी।

यह दिव्यरथ एवं गाण्डीव धनुष खाण्डव दहन के अवसर पर प्रसन्न होकर अर्जुन को अग्निदेव ने दिये इसीलिए वे शक्तिवान हैं। गन्धर्व राजा चित्ररथ ने पुरस्कार के रूप में अर्जुन को एक सौ घोडे दिये। ये चार श्वेत अश्व उन्हीं में से हैं। वे भूमि एवं आकाश कहीं भी संचार कर सकते हैं। कहा जाता है कि ये चार अश्व चार वेद हैं। कृष्णार्जुन परमात्मा एवं जीवात्मा हैं।

'माधवः' - मा का अर्थ है लक्ष्मी, धव का अर्थ है भर्ता या पति। सञ्जय के इस शब्द से ध्वनित होता है कि श्रीकृष्ण भगवान ने शंख ध्वनि करके कौरवपक्ष की राज्य लक्ष्मी को प्राप्त किया। कौरव पक्ष के प्रधान भीष्म थे। इसलिए पहले उन्होंने शंख ध्वनि की। इसी तरह पाण्डव पक्ष की ओर से पहले श्रीकृष्ण भगवान ने शंख ध्वनि की। इससे स्पष्ट है कि उस पक्ष के प्रधान वे ही हैं। बाकी सब निमित्तमात्र हैं।

'पाण्डवः' = अर्जुन। 'पाण्डवानां धनञ्जयः कहा गया है। अतः पाण्डव शब्द का अर्थ यहाँ अर्जुन ही लेना है।

सम्बन्ध - चार श्लोकों में पाण्डव वीरों और उनके बजाये शंखों का विवरण दिया जा रहा है।

१५. पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥
१६. अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ॥
१७. काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥
१८. द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक्पृथक्॥

शब्दार्थ - पृथ्वीपते = हे महाराजा धृतराष्ट्र। हृषीकेशः = श्रीकृष्ण। पाञ्चजन्यम् = पाञ्चजन्य नामक शङ्ख धनंजय = अर्जुन। देवदत्तं = देवदत्त नामक शङ्ख। भीम कर्मा = भयंकर कार्य करनेवाला। वृकोदरः = भीम। पौन्ड्रम = पौन्ड्र नामक। महाशङ्खम = महाशङ्ख। दध्मौ = बजाया। कुन्तीपुत्रः = कुन्तीपुत्र। राजा = राजा। युधिष्ठिरः = धर्मराज। अनन्त विजयम् = अनन्त विजय नामक शङ्ख। नकुलः = नकुल। सहदेवश्च = सहदेव। सुघोष मणिपुष्पकौ = सुघोष एवं मणि पुष्पक नामक शङ्ख। द्रध्मुः = क्रम से बजाया। परमेष्वासः = बडा

मनवाले । काश्यश्च = काशीराजा । महारथः = महारथी । शिखण्डी च = शिखण्डी । धृष्टद्युम्नः = दृष्टद्युम्न । विराटश्च = विराट् । अपराजितः = कभी पराजित न होनेवाले । सात्यकिश्च = सात्यकी । द्रुपदः = द्रुपद । द्रौपदेयाश्च = द्रौपदी के पुत्र पांच उपपाण्डव । महाबाहुः = लंबी बाहुवाले । सौभद्रश्च = सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु । सर्वशः = सेना भर में । पृथक्पृथक् = अलग अलग । शङ्खान् = शङ्ख । दध्मुः = बजाये ।

भावार्थ - श्रीकृष्ण महाराज ने पाञ्चजन्य नामक, अर्जुन ने देवदत्त नामक और भयानक कर्मवाले भीम सेन ने पौण्ड्रनामक महाशङ्ख बजाया ।

कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजय नामक और नकुल तथा सहदेव ने सुघोष और मणिपुष्पक नामक शङ्ख बजाये ।

श्रेष्ठ धनुषवाले काशिराज और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि, राजा द्रुपद एवं द्रौपदी के पाँचों पुत्र और बडी भुजावाले सुभद्रापुत्र अभिमन्यु - इन सभी ने, हे राजन् ! सब ओर से अलग-अलग शङ्ख बजाये ।

व्याख्या - पहले ही कहा गया कि कृष्ण आदि ने जिन पाञ्चजन्य वगैरह शङ्ख बजाये वे साधारण नहीं, दिव्य हैं । पाञ्चजन्य श्रीकृष्ण के शङ्ख का नाम है । पञ्चजन नामक राक्षस की हड्डियों से निर्मित होने के कारण श्रीकृष्ण का शङ्ख पाञ्चजन्य कहलाया । हृषीकेश - हृषीक माने इन्द्रिय हैं । ईश माने अधिपति हैं। अर्थात् इन्द्रियों के अधिपति, सर्वसाक्षी परमात्मा । आनन्द का निलय यह भी हृषीकेश का और एक अर्थ है ।

'धनञ्जय' - अर्जुन राजसूययज्ञ के लिए अनेक राजाओं से धन ले आया था । इसलिए वह धनञ्जय कहलाया । धन की आकांक्षा पर विजय प्राप्त की। इसलिए भी अर्जुन धनञ्जय कहलाया ।

'वृकोदरः' - वृक का अर्थ है भेडिया । उसके जैसा उदरवाला वृकोदर कहलाया । सभी को भस्म करनेवाली वृक नामक अग्नि उदर में धारण

करनेवाले भीम का नाम वृकोदर पडा।

सम्बन्ध - भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन के पश्चात् पाण्डवसेना के अन्यान्य शूरवीरोंद्वारा सब ओर शङ्ख बजाये जाने की बात कहकर अब उस शङ्खध्वनि का क्या परिणाम हुआ? उसे सञ्जय बतलाते हैं -

१९. स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥

शब्दार्थ - तुमुलः = सर्वत्र व्याप्त। स घोषः = वह ध्वनि। नभश्च = आकाश। पृथिवीं चैव = भूमि को। व्यनु नादयन् = प्रतिध्वनित करता हुआ। धार्तराष्ट्राणां = दुर्योधनादि का। हृदयान् = हृदय को। व्यदारयत् = फाड दिया।

भावार्थ - पाण्डव वीरों के उस भयानक शब्द ने आकाश और पृथ्वी को भी गुँजाते हुए धार्तराष्ट्रों के यानी आप के पक्षवालों के हृदय विदीर्ण कर दिये।

व्याख्या - इससे स्पष्ट है कि दुर्योधन आदि का उत्साह कम हो गया।

सम्बन्ध - पाण्डवों की शङ्खध्वनि से कौरववीरों के व्यथित होने का वर्णन करके, अब चार श्लोकों में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति कहे हुए अर्जुन के उत्साहपूर्ण वचनों का वर्णन किया जाता है -

२०. अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥

२१. हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।

शब्दार्थ - महीपते = हे महाराजा धृतराष्ट्र। अथ = सब जगह। शस्त्र सम्पाते = शस्त्र प्रयोग। प्रवृत्ते = आरंभ हो रहा था। कपिध्वजः = हनुमानवाले झन्डे से युक्त। पाण्डवः = अर्जुन। व्यवस्थितान् = युद्ध के लिए सन्नद्ध। धार्तराष्ट्रान् = कौरवों को। दृश्या = देख कर। धनुः = धनुष को। उद्यम्य = हाथ में लेकर। तदा = उस समय। हृषीकेशं = श्रीकृष्ण को संबोधित कर। इदम् = ये। वाक्यम् = वाक्य। आह = बोले।

भावार्थ - हे धृतराष्ट्र महाराज ! इसके पश्चात् जब युद्ध क्षेत्र में अस्त्रों का प्रयोग करने उद्यत हुए तब कपिध्वज अर्जुन ने युद्ध के लिए सन्नद्ध कौरवों को देख कर, धनुष को हाथ में लेकर श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहा।

व्याख्या - कपिध्वज - हनुमान् जी अर्जुन के रथ की विशाल ध्वजा पर विराजित थे, इसलिए अर्जुन कपिध्ज कहलाये। महावीर हनुमानजी ने भीमसेन को वचन दिया था कि पाण्डवों के विजय प्राप्त कराने केलिए वे अर्जुन के रथ की ध्वजा पर विराजमान रहेंगे। (भारत - अरण्यपर्व - १५१)

अर्जुन उवाच -

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥

२२. ***यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।***
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥

अर्जुन ने कहा -

शब्दार्थ - अच्युत = हे कृष्ण। अस्मिन् = यह। रण समुद्य मे = रण के आरंभ में। मया = मेरे द्वारा। कैः सह = जिनसे। योद्धव्यम् = युद्ध किया जाना है। योद्धुकामान् = युद्ध करने की इच्छा लेकर। अवस्थितान् = खडे। एतान् = इन्हें। यावत् = जितनी देर में। अहम् = मैं। निरीक्षे = देख सकता हूँ। (तावतु = उतनी देर) उभयोः सेनयोः = दोनों सेनाओं के। मध्ये = बीच में। मे = मेरा। रथम् = रथ। स्थापय = खडा कीजिए।

भावार्थ - हे राजन्! कपिध्वज अर्जुन ने मोर्चा बाँधकर डटे हुए धृतराष्ट्र - सम्बन्धियों को देखकर, उस शस्त्र चलाने की तैयारी के समय धनुष उठाकर हृषीकेश श्रीकृष्ण महाराज से यह वचन कहा - हे अच्युत! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खडा कीजिये।

और जबतक कि मैं युद्धक्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इन विपक्षी योद्धाओं को भली प्रकार देख लूँ कि इस युद्धरूप व्यापार में मुझे किन-किन के साथ युद्ध करना योग्य है, तब तक उसे खडा रखिये।

व्याख्या - शतृओं से लोहा लेने के पहले उत्तम योद्धा का लक्षण है कि वह अच्छी तरह देख ले कि शत्रु पक्ष में कौन कौन हैं और वे सब किस प्रकार हैं। इसीलिए अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले जाकर खडा करें।

"अच्युत" - जिसकी च्युति नहीं होती वह अच्युत है। अर्थात् जिसका नाश नहीं होता या जो अपने स्वरूप से विचलित नहीं होता वह अच्युत है। यह भी कहा जा सकता है कि जो उसके आश्रय में जाते हैं उनको च्युत होने से जो बचाये या च्युत न होने दे वह अच्युत है। आध्यात्मिक साधना में जो अच्युत को प्राप्त करना चाहते हं, उन्हें अपनी साधना में किसी प्रकार की च्युति इस लोक में नहीं होने देना चाहिए।

२३. योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ।।

शब्दार्थ - दुर्बुद्धेः = दुर्बुद्धिवाला। धार्तराष्ट्रस्य = दुर्योधन की। युद्दे = युद्ध में। प्रिय चिकीर्षवः = प्रिय करने का इच्छुक होकर। ये एते = जो वीर। अत्र = यहाँ। समागताः = इकट्ठे हुए हैं। (तान् = उन) योत्स्यमानान् = युद्ध करने सन्नद्ध लोगों को। अहम् = मैं। अवेक्षे = देखूँगा।

भावार्थ - दुर्बुद्धि दुर्योधन का युद्ध में हित चाहनेवाले जो-जो ये राजालोग इस सेना में आये हैं, इन युद्ध करनेवालों को मैं देखूँगा।

व्याख्या - 'दुर्बुद्धेः' इस शब्द का प्रयोग दुर्योधन के लिए अर्जुन ने किया। क्यों कि दुर्योधन ने पाण्डवों के साथ इसके पूर्व कई बार दुर्व्यवहार किया। उनके हक का राज्य छीनकर उन पर बडा जुर्म किया। यह सब याद करते ही अर्जुन ने उसे दुर्बुद्धिवाला कहा है। गीता में भगवान ने कहा है कि 'बुद्धिनाशात्प्रणश्यति' बुद्धि भ्रष्ट हो तो मनुज का नाश होता है। हम विचार कर सकते हैं कि यह शब्द दुर्योधन के भविष्य के विनाश का सूचक है।

जिसकी बुद्दि भ्रष्ट होती है, उसका विनाश दुर्योधन की तरह सुनिश्चित

है। इसलिए हर व्यक्ति को सद्बुद्धि से काम लेना चाहिए, दुर्बुद्धि से नहीं।

"प्रिय चिकीर्षवः"। जो जो दुष्ट दुर्योधन को प्रिय लगना चाहते थे वे सब युद्ध में मारे गये। पाप को प्रोत्साहित करना भी महापाप है। इसलिए दुर्योधन की तरह दुर्बुद्धिवाला बनना एवं ऐसे लोगों का समर्थन करना भी वर्जित है।

सम्बन्ध - 'अर्जुन के वाक्य सुन कर श्रीकृष्ण ने क्या किया' कहा जा रहा है।

सञ्जय उवाच -

२४. एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥
२५. भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्।
उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरुनिति ॥

सञ्जय ने कहा -

शब्दार्थ - भारत = भरतवंश में जन्मे हे धृतराष्ट्र महाराज ! एवम् = इस प्रकार। गुडा केशेन = अर्जुन के द्वारा। उक्तः = कहा गया। हृषीकेशः = श्रीकृष्ण। उभयो सेनयोः = दोनों सेनाओं के। मध्ये = बीच में। भीष्म द्रोण प्रमुखतः = भीष्म द्रोण के सामने। सर्वेषां महीक्षिताम् च = सभी राजाओं के सामने। रथोत्तमम् = उत्तम रथ को। स्थापयित्वा = खडा किया। पार्थ = हे अर्जुन ! समवेतन् = इकट्टे हुए। एतान् = इन। कुरून् = कौरवों को। पश्य = देखो। इति = यह। उवाच = कहा।

भावार्थ - सञ्जय बोले - हे धृतराष्ट्र! अर्जुनद्वारा इस प्रकार कहे वाक्य सुन कर महाराज श्रीकृष्णचन्द्र ने दोनों सेनाओं के बीच में भीष्म और द्रोणाचार्य के सामने तथा सम्पूर्ण राजाओं के सामने उत्तम रथ को खडा करके इस प्रकार कहा कि हे पार्थ! युद्ध के लिए जुटे हुए इन कौरवों को देख।

व्याख्या - 'गुडाकेशः' निद्रा को जीतनेवाला, तमोगुण को दबा देनेवाला अर्थात् अति जागरूक। आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रवण की एकाग्रता

एवं प्रमाद का राहित्य अत्यावश्यक हैं। गुडाकेश शब्द सिद्ध करता है कि अर्जुन में ऐसे सद्गुण विद्यमान हैं। गीता का ज्ञान पाप्त करने की योग्यता अर्जुन में है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि 'कुरून' कौरवों को देखो। कौरव सभी अर्जुन के निकट के बन्धु बान्धव थे। जिन्हें देख कर अर्जुन का मन शोक मग्न हो जाता था, उन्हीं के सामने भगवान ने रथ खडा किया। गीता के उपदेश के लिए यहीं पर क्षेत्र तैयार हुआ। रथ को वहाँ खडा करके भगवान श्रीकृष्ण गीता शास्त्र के आविर्भाव के लिए अनुकूल परिस्थिति अर्जुन के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। गीता का आविर्भाव जीवकोटि के लिए सचमुच महद्भाग्य का विषय है।

सम्बन्ध - सञ्जय कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण के वचन सुनकर अर्जुन ने क्या किया !

२६. *तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।*
आचार्यान्मातुलान्भ्रातन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ।।

२७. *श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।*

शब्दार्थ - अथा = बाद। पार्थः = अर्जुन। तत्र = वहाँ। उभयोः सेनयोः अपि = दोनों सेनाओं में। स्थितान् = स्थित। पितॄन् = पिता। पितामहान् = दादा। आचार्यान् = गुरु। मातुलान् = मामा। भातॄन् = भाई। पुत्रान् = पुत्र। पौत्रान् = पौत्र। सखीन् = मित्र। तथा = वैसे ही। श्वशुरान् = ससुर। सुहृदश्चैव = हित चाहने वाले। अपश्यत् = देखा।

भावार्थ - इसके बाद अर्जुन ने दोनों सेनाओं में स्थित अपने समस्त स्वजनें को जिन में पिता के भाई, पिता तुल्य पुरुष, पितामह, प्रपितामह,गुरु, मामा, पुत्र, भतीजे,पौत्र, मित्र, ससुर और सुहृद थे,देखा।

व्याख्या - पिता - भूरिश्रवा आदि।

दादा - भीष्म आदि

गुरु - द्रोणाचार्य आदि

मामा - शल्य आदि

भाई - दुर्योधन

पुत्र - दुर्योधन का पुत्र लक्ष्मण आदि

पौत्र -लक्ष्मण का पुत्र आदि।

मित्र - अश्वत्थामा आदि।

ससुर - द्रुपद आदि

हितैषी - कृतवर्मा आदि

'दोनों सेनाओं में' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि अर्जुन ने दोनों सेनाओं में स्थित स्वजनों को देखा।

सम्बन्ध - इस प्रकार सब को देखने के बाद अर्जुन ने क्या किया ? अब उसे बतलाते हैं -

२७. *तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥*

२८. *कृपया परयाविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।*

शब्दार्थ - सः कौन्तेय = वह अर्जुन। अवस्थितान् = स्थित। सर्वान् बन्धून् = सब बन्धु बान्धवों को। समीक्ष्य = भली भांति देख कर। परया = अधिक कृपया = कृपा से। अविष्टः = आवृत होकर। विषीदन् = दुःखी होते हुए। इदम् = इन वाक्यों को। अब्रवीत् = कहा।

भावार्थ - उन उपस्थित सम्पूर्ण बन्धुओं को देखकर वे कुन्तीपुत्र अर्जुन अत्यन्त करुणा से युक्त होकर शोक करते हुए यह बचन बोले (२७ वें का उत्तरार्थ और २८वें का पूर्वार्थ।)

व्याख्या - कृपा का अर्थ है दया, करुणा। कृपा बडा सुगुण है। परन्तु उचित स्थान पर दिखाने से उसकी शोभा बढती है। अधर्म के पक्षधर कौरवों पर अर्जुन ने कृपा की। उसे ममता हुई। सोचने लगा कि ये मेरे है। अपने हैं। इन्हें कैसे मार डालूँ ? क्षत्रियकुल में जन्म लेनेवाले अर्जुन के दिल में उत्पन्न वह

सुगुण उस अवसर पर अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि जो लोग कृपा के लिए लायक नहीं थे उन पर अर्जुन कृपा करने लगे। समय भी अनुकूल नहीं था। गीता तत्व समझा कर श्रीकृष्ण उस दोष को दूर करते हैं।

"विषीदन" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि जितना भी समर्थ ज्ञानी एवं योग्य क्यों न हो, अविद्या का नाश न हो तो मनुष्य पल भर में कमजोर एवं कातर बन जाता है। अर्जुन शक्ति संपन्न योद्धा थे। दिव्य अस्त्र शस्त्र प्राप्त कर चुके थे। फिर भी अज्ञान में पड कर बालक की तरह दुःख प्रकट करने लगे। यह मन का रोग था। समय पर उसकी चिकित्सा न की जाय तो उसके प्रभाव से बलिष्ठ शरीर भी क्षीण हो जाएगा। आत्मज्ञान की चिकित्सा के द्वारा अविद्या को दूर करने पर ही आत्मानन्द प्राप्त हो सकता है। दुःख दूर हो सकता है। अर्जुन जैसे श्रेष्ठ एवं शक्ति संपन्न पुरुष ही अविद्या के प्रभाव से दुर्बल हो जाता है तो साधारण मनुष्यों की बात ही क्या ? इसलिए आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा मन पर विजय पाना, इसके द्वारा शान्ति पाना हर व्यक्ति का प्रधान कर्तव्य है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता का संदेश देकर वही कार्य किया।

सम्बन्ध - बन्धुस्नेह के कारण अर्जुन की कैसी स्थिति हुई, अब ढाई श्लोकों में अर्जुन स्वयं उसका वर्णन।

अर्जुन उवाच

२८. दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम्।

२९. सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥

३०. गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

शब्दार्थ - कृष्ण = हे कृष्ण। युयुत्सुम् = युद्ध करने केलिए। समुपस्थितम् =

जमा हुए। इमम् = इन। स्वजनम् = बन्धुबान्धवों को। दृष्ट्वा = देख कर। मम = मेरा। गात्राणि = अवयव। सीदन्ति। शिथिल हो रहे हैं। मुखं च = मुँ ह भी। परिशुष्यति = सूख रहा है। मे = मेरा। शरीरे = शरीर में। वे पुथुश्च = कंपन। रोम हर्षश्च = रोंगटे खडे होना। जायते = हो रहा है। गाण्डीवम् = गाण्डीव। हस्तात् = हाथ से। स्रंसते = छूट रहा है। त्वक्चैव = चर्म भी। परिदह्यते = जल रहा है। अवस्थातुं = खडा होने के लिए। न च शक्नोमि = शक्ति हीन हूँ। मे = मेरा। मनः = मन। भ्रमतीवच = भ्रमित हो रहा है।

भावार्थ - अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! युद्ध क्षेत्र में डटे हुए युद्ध के अभिलाषी इस स्वजन समुदाय को देख कर मेरे अङ्ग शिथिल हुए जा रहे हैं और मुख सूखा जा रहा है तथा मेरे शरीर में कम्प एवं रोमाञ्च हो रहा है॥ (२८ वें का उत्तरार्ध) हाथ से गाण्डीव धनुष गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जल रहीं है तथा मेरा मन भ्रमित-सा हो रहा है, इसलिये मैं खडा रहनेको भी समर्थ नहीं हूँ।

व्याख्या - इन श्लोकों में उस समय अर्जुन में शारीरिक और मानसिक जो विकार हुए उनका स्पष्टीकरण किया गया। ये सब भय, अधैर्य, और निरुत्साह के लक्षण हैं। अर्जुन युद्ध एवं शतृ संहार की परवाह नहीं करते। कई युद्दों में विजयी हुए। ऐसे अर्जुन इस समय क्यों निरुत्साहित हुए? उनके शारीरिक एवं भौतिक शक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं हुयी। परन्तु मानसिक रूप से धक्का खा गये। क्यों ? कारण क्या हैं ? ''ये मेरे हैं। अपने हैं। बन्धुं-बान्धव हैं, इन्हें कैसे मारूँ ? ''इसी चिंता व सोच के कारण अर्जुन की ऐसी हालत हुयी। इसीको ममकार कहते हैं। इसी ममकार के चंगुल में फंसकर अर्जुन स्वजन की रट लगाने लगे। इस ममकार रूपी रोग ने अर्जुन को जकड लिया। इसकी सही दवा आत्मज्ञान ही है। वही दवा भगवान श्रीकृष्ण अब अर्जुन को देने जा रहे हैं।

सम्बन्ध - अर्जुन युद्ध के विरुद्ध अपने भाव श्रीकृष्ण से कह रहे हैं -

३१. निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥

शब्दार्थ - केशव = हे कृष्ण ! विपरीतानि = अनर्थ के सूचक। निमित्तानि च = शकुन भी। पश्यामि = देख रहा हूँ। आहवे = युद्द में। स्वजनम् = बान्धवों को। हत्वा = मार कर। अनु = बाद। श्रेय: = श्रेय। न पश्यामि = नहीं देख पा रहा हूँ।

भावार्थ - हे केशव ! मैं लक्षणों को भी विपरीत ही देख रहा हूँ तथा युद्ध में स्वजन-समुदाय को मारकर कल्याण भी नहीं देखता।

३२. न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥

शब्दार्थ - कृष्ण = हे कृष्ण। विजयम = विजय। न काङ्क्षे = नहीं चाहता। राज्यं च = राज्य को। सुखानि च = सुखों को। न (काङ्क्षे) = नहीं चाहता। गोविन्द = हे कृष्ण। न: = हमें। राज्येन = राज्य से। किम = क्या (प्रयोजनः)। भोगै = भोगों से। जीवितेन वा = जीवन से। किम = क्या (प्रयोजनः)

भावार्थ - हे कृष्ण! मैं न तो विजय चाहता हूँ और न राज्य तथा सुखों को ही। हे गोविन्द ! हमें ऐसे राज्य से क्या प्रयोजन है अथवा ऐसे भोगों से और जीवन से भी क्या लाभ है ?

व्याख्या - शास्त्र का निमय है कि जो वैराग्य भाव से युक्त है उसी को आत्मज्ञान (ब्रह्मज्ञान) का उपदेश देना चाहिए। तो प्रश्न उठता है कि गीता शास्त्र का श्रवण करने के लिए उद्युक्त अर्जुन क्या वैराग्य भाव रखता है ? वह ज्ञान पाने का अधिकारी है ? इस श्लोक से उस प्रश्न का जवाब मिल जाता है। किसी न किसी तरह अर्जुन विरक्त हो गया। सांसारिक सुखों से उन्हें नफरत हो गयी। राज्य एवं भोगों को तिनके के बराबर समझा। तीनों लोकों के प्राप्त होने पर भी उन्हें छोडने को तैयार हो गये। 'अपि त्रैलोक्य राज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते (१-३५)' ब्रह्मज्ञान का उपदेश ग्रहण करने के लिए यही अनुकूल समय था।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने सुख भोग के प्रति जब विरक्ति की भाव... के हृदय में तीव्र रूप से उत्पन्न हुयी तभी गीता शास्त्र का तत्त्व समझाया... पूर्व कभी परमार्थ तत्त्व का बोध नहीं कराया। क्यों कि अर्जुन का हृदय... [illegible] पहले कभी नहीं हुआ था।

[illegible] - अब अर्जुन स्वजनवध से मिलनेवाले राज्य-भोगादिको न ... कारण दिखलाते हैं -

३३. येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥

३४. आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वसुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥

शब्दार्थ - नः = हमें। राज्यं = राज्य। भोगाः = भोग। सुखानि च ... येषामर्थे = जिनके लिए। काङ्क्षितम् = वांछित हैं। ते = वे। आचार्याः ... पितरः = पिता। पुत्राः = पुत्र। तथैव च = वैसे ही। पितामहाः = ... मातुलाः = मामा। श्वशुराः = ससुर। पौत्राः = पोते। स्यालाः = साले ... = उसी प्रकार। सम्बन्धिनः = सम्बन्धी। इमे = युद्ध में। अवस्थिताः = ... हैं।

भावार्थ - हमें जिनके लिये राज्य, भोग और सुखादि अभीष्ट हैं, वे ही ... गुरु, पिता, पुत्र, दादा, मामा, पोते, साले और सभी सम्बन्धी इस युद्ध में ... और जीवन की आशा को छोडकर खडे हैं।

सम्बन्ध - सेना में उपस्थित शूरवीरों के साथ अपना सम्बन्ध बतला... अर्जुन किसी भी हेतु से इन्हें मारने में अपनी अनिच्छा प्रकट करते हैं -

३५. एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥

शब्दार्थ - मधुसूदन = हे कृष्ण। घ्नतोऽपि = (मुझे) मारने वाले हों। एतान् ... इनको। त्रैलोक्य राज्यस्य हेतोः = तीनों लोकों के राज्याधिपत्य के लिए ...

हन्तुं = मारने के लिए। नेच्छामि = इच्छा नहीं रखता। महीकृते = भूलोक के राज्य के लिए भी। किं नु = (और ज्यादा) कहना ही क्या है ?

भावार्थ - हे मधुसूदन! मुझे मारने पर भी अथवा तीनों लोकों के राज्य के लिए भी मैं इनको मारना नहीं चाहता। ऐसी हालत में भूलोक राज्य के लिए अलग रूप से कहना ही क्या है ?

व्याख्या - "मधुसूदनः" मधुनामक राक्षस को मारने के कारण श्रीकृष्ण मधुसूदन कहलाये।

सम्बन्ध - यहाँ यदि यह पूछा जाय कि आप त्रिलोकी के राज्य के लिये भी उनको मारना क्यों नहीं चाहते, तो इसपर अर्जुन अपने सम्बन्धियों को मारने में लाभ का अभाव और पाप की सम्भावना बतलाकर अपनी बात को पुष्ट करते हैं -

३६. निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन।
पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः ॥

शब्दार्थ - जनार्दन = हे कृष्ण। धार्तराष्ट्रान् = दुर्योधन आदि को। निहत्य = मारकर। नः = हमको। का प्रीतिः = क्या संतोष। स्यात् = होगा। आततायिनः = दुष्टों को। एतान् = इनको। हत्वा = मारने से; अस्मान् = हमको। पापमेवा = पाप ही। आश्रयेत् = प्राप्त होगा।

भावार्थ - हे जनार्दन ! धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर हमें क्या प्रसन्नता होगी ? इन आततायियोंकों मारकर तो हमें पाप ही लगेगा।

व्याख्या - 'आततायिनः' महापाप करनेवाले, (१) घरों में आग लगानेवाले (२) विष खिलानेवाले। (३) हथियारों से सतानेवाले (४) धन चुरानेवाले। (५) भूमि पर कब्जा करने वाले (६) दूसरों की पत्नियों को हरनेवाले। ये छः प्रकार के पापकर्म करनेवाले आततायी हैं।

अग्नि दो गरदश्चैव शस्त्रपाणि र्धनापहा।
क्षेत्र दाराप हर्ता च षडे ते ह्याततायिनः॥ (सिष्ठस्मृति. ३-१६)
(दुर्योधन आदि ने ऐसे छः प्रकार के पापकर्म किये।)

३७. तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्।
स्वजनं हि कथं हत्वा सखिनः स्याम माधव॥

शब्दार्थ - माधव = हे कृष्ण। तस्मात् = इसलिये। स्वबान्धवान् = अपने बान्धव। धार्तराष्ट्रान् = दुर्योधन आदि को। हन्तुं = मारने केलिए। वयं = हम नार्हाः = लायक नहीं हैं। स्वजनं = अपने लोगों को। हत्वा = मार कर। सुखिनः = सुखी। कथं = कैसे ? स्यामहि = हो सकते हैं ?

भावार्थ - अत एव हे माधव! अपने ही बान्धव धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने के लिये हम योग्य नहीं है, क्योंकि अपने ही कुटुम्ब को मारकर हम कैसे सुखी होंगे ?

व्याख्या - अर्जुन स्व, स्व की रट लगा रहे हैं। (जैसे - स्वबान्धवान्, स्वजनं) स्व का ममकार उनके दिल में व्याप्त हो गया। मैं और मेरा (अहंकार एवं ममकार) दोनों मोक्ष के मार्ग में प्राणी के लिए बाधक हैं। 'यह शरीर ही मैं हूँ' ऐसी भावना जब तक मनुष्य के मन में व्याप्त रहेगी तब तक ये भाव लोगों को नहीं छोडते। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को संदेश देनेवाले हैं कि तू आत्मा है, देह नहीं। इस अखण्ड ज्ञान के उपदेश से अज्ञान दूर होगा।

३८. यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रदोहे च पातकम्॥

३९. कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन॥

शब्दार्थ - जनार्दन = हे कृष्ण। लोभोपहतचेतसः = राज्य के लोभ से भ्रष्टचित्त। एते = ये दुर्योधन आदि। कुलक्षयकृतम् = वंशनाश से लगनेवाले। दोषम् =

...द्रोहे = मित्रद्रोह में निहित। पातकं च = पाप को। यद्यपि न पश्यन्ति
... सकने पर भी। कुलक्षय कृतम् = कुल के नाश से लगनेवाले।
... दोष को। प्रपश्यद्भिः = अच्छी तरह जाननेवाले। अस्माभिः =
... अस्मात् पापात् = इस पाप से। निवर्तितुम् = हटने के लिए। कथम् =
... ज्ञेयम् = न जाना जाये।

...र्थ - यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुल के नाश से उत्पन्न दोष और मित्रों से विरोध करने में पाप को नहीं देखते, तो भी हे जनार्दन! कुल ...श से उत्पन्न दोष को जाननेवाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिये ...हीं विचार करना चाहिए।

...ख्या - 'लोभोपहत चेतसः' लोभ से भ्रष्ट चित्तवाले (दुर्योधन आदि) हो ...म, क्रोध एवं लोभ ये तीनों दुष्टत्रय हैं। इनमें लोभ ने आधिपत्य जमा ...भगवान श्रीकृष्ण आगे चल कर कहते हैं कि ये तीनों नरक के द्वार हैं।

त्रिविधं नरक न्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामं क्रोध स्तथा लोभ न्तस्मा देत त्रयं त्यजेत्॥ (१६-२१)

...गुण चित्त को कलुषित कर देते हैं। इन लोभ आदि के वशवर्ती होने के ... दुर्योधन आदि का मन बिगड गया। इसीलिए वे 'लोभोपहत चेतसः' ...गये। श्रेय चाहने वालों का कर्तव्य है कि वे इन दुर्गुणों को अपने पास ...ने न दें।

... अर्जुन कहते हैं -

... कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत॥

... अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः॥

... सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

शब्दार्थ - कुलक्षये= वंश के नाश से । सनातन: = अनादि से (वंश परंपरा के अनुसार) चले आ रहे । कुल धर्मा: = कुलधर्म । प्रणश्यन्ति = नष्ट होते हैं । धर्म नष्टे = धर्म के नष्ट होने पर । कृत्स्नम् = समस्त । कुलम् = कुल । अधर्म: = अधर्म । अभिभवति उत = व्याप्त होगा न ? कृष्ण = हे कृष्ण । अधर्माभि भवात् = अधर्म के बढने से । कुलस्त्रिया: = कुल की स्त्रियाँ । प्रदुष्यन्ति = बिगड जाती हैं । वार्ष्णेय = वृष्णि वंशी हे कृष्ण ! स्त्रीषु दुष्टासु = स्त्रियों के भ्रष्ट होने से । वर्णसङ्कर: = वर्णसंकरता । जायते = होगी । संकर: =(वर्ण) संकर कुलघ्नानां = कुल को भ्रष्ट करने वाले । कुलस्य च =कुल को । नरकायैन = नरक के लिए । एषाम् = इनके । पितर: = पितृदेवता । लुप्तपिण्डोदक क्रिया: = पिण्डोदक क्रियाओं से (श्राद्ध एवं तर्पण) रहित होकर । पतन्ति = अधोगति को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थ - हे कृष्ण! कुल के नाश से सनातन कुलधर्म नष्ट हो जाते हैं । धर्म के नाश हो जाने पर सम्पूर्ण कुल में पाप भी बहुत फैल जाता है । हे कृष्ण! पाप के अधिक बढ जाने से कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं । हे वार्ष्णेय । स्त्रियों के दूषित होने पर वर्ण संकरता उत्पन्न होती है ।

वर्णसङ्कर कुल घातियों को और कुल को नरक में ले जाने के लिए ही होता है । लुप्त हुए पिण्ड और जल की क्रियावाले अर्थात् श्राद्ध और तर्पण से वञ्चित इनके पितर लोग भी अधोगति को प्राप्त होते हैं ।

सम्बन्ध - वर्णसङ्करकारक दोषों से क्या हानि होती है, अब उसे बतलाते हैं -

४३. दोषैरेतै: कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकै: ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्मा: कुलधर्माश्च शाश्वता: ॥

४४. उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥

शब्दार्थ - कुलघ्नानां = कुल का नाश करने वालों का वर्णसंकर कारकै: = वर्ण संकर करनेवाले । एतै: = ये । दोषै: = दोषों से । शाश्वता: = शाश्वत । जाति

धर्माः = जातिधर्म। कुलधर्माश्च = कुल धर्म। उत्साद्यन्ते = नष्ट किये जाते हैं। जनार्दन = हे कृष्ण ! उत्सन्न कुल धर्माणाम् = भ्रष्ट कुल धर्म के। मनुष्याणां मनुष्यों के लिए। नरके = नरक में। नियतं = सदा। वासः = निवास। भवति = होगा। इति = ऐसा। अनुशुश्रुम = (बुजुर्गों से) सुना है।

भावार्थ - इन वर्णसङ्करकारक दोषों से कुलघातियों के सनातन कुल-धर्म और जाति-धर्म नष्ट हो जाते हैं। हे जनार्दन! जिनका कुल-धर्म नष्ट हो गया है, ऐसे मनुष्यों का अनिश्चित काल तक नरक में वास होता है, ऐसा हम सुनते आते हैं।

४५. अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्।
यद्राज्यसुखलाभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥

शब्दार्थ - अहो। बत = हाय। यत् = जिस कारण से। वयम् = हम राज्य सुख लोभेन = राज्य सुख की आशा से। स्वजनम् = बान्धओं को। हन्तुं = मारने के लिए। उद्यताः = प्रयत्न किया। (तत् = उस कारण से) महत्पापं = महापाप। कर्तुम् = करने के लिए। व्यवसिताः = सिद्ध हुए।

भावार्थ - अहो ! हाय हाय। राज्य सुख की आशा से हम बन्धु बान्धवों को मारने केलिए सिद्ध होकर महापाप करने को तैयार हो गये।

सम्बन्ध - इस प्रकार पश्चात्ताप करने के बाद अब अर्जुन अपना निर्णय सुनाते हैं -

४६. यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥

शब्दार्थ - अशस्त्रं = शस्त्र धारण न कर। अप्रतीकारं = सामना न करनेवाले। मां = मुझे। रणे = युद्ध में। शस्त्र पाणयः = हाथों में शस्त्र धारण किये हुए। धार्तराष्ट्राः = दुर्योधन आदि। हन्युः यदि = मार डालें। तत् = वह। मे = मेरे लिए। क्षेमतरम् = अधिक क्षेम दायक। भवेत् = होगा।

भावार्थ - यदि मुझ शस्त्ररहित एवं सामना न करनेवाले को शस्त्र हाथ में

लिये हुए धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मार डालें तो वह मारना भी मेरे लिये अधिक कल्याणकारक होगा।

व्याख्या - निम्नलिखित कारणों से अर्जुन ने कहा होगा कि शस्त्र रहित मैं शत्रुओं द्वार मारा जाऊँ तो वह मेरे लिए कल्याणकारक होगा।

१. कुल का नाश कर नये रूप से पाप कमाना न पडेगा। तब पूर्व पुण्य की रक्षा होगी।

२. बन्धु बान्धओं के वध का पाप न लगेगा। ३. बन्धु और मित्रों के प्राणों की रक्षा होगी।

४. बन्धु और मित्रों के प्राणों की रक्षा करने से जो पुण्य मिलेगा वह अपने मोक्ष की प्राप्ति के काम आयेगा।

सम्बन्ध - भगवान् श्रीकृष्ण से इतनी बात कहने के बाद अर्जुन ने क्या किया, इस जिज्ञासा पर अर्जुन की स्थिति बतलाते हुए सञ्जय कहते हैं -

सञ्जय उवाच -

४७. एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥

शब्दार्थ - संख्ये = युद्ध भूमि में। अर्जुनः = अर्जुन। एवम् = इस प्रकार। उक्त्वा = कह कर। शोक संविग्न मानसः = दुःख से विचलित मन से। शरम् = बाण से युक्त। चापं = धनुष। विसृज्य = छोड कर। रथोपस्थे = रथ पर। उपाविशत् = बैठ गये।

भावार्थ - सञ्जय बोले - रणभूमि में शोक से उद्विग्न मनवाला अर्जुन इस प्रकार कहकर, बाणसहित धनुष को त्याग कर रथ के पिछले भाग में बैठ गया।

व्याख्या - "शोक संविग्न मानसः" अर्जुन ने शोक से उद्विग्न होकर धनुष बाण भी त्याग दिया। अर्जुन के जीवन में कभी धनुष बाण छोडने की घटना नहीं हुयी। इसलिए इसका कोई प्रबल कारण रहा होगा। स्वजनों के क्षय का

आन्दोलन उनके हृदय में पैदा हुआ। इस आन्दोलन ने वेदना का रूप लिया। फलस्वरूप उन्होंने राज्य एवं भोगों को ठुकरा दिया। अर्जुन की इस परम विरक्ति का सहारा लेकर भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें आत्मज्ञान का महान उपदेश दिया। अर्जुन का विषाद, विषाद न रहकर विषादयोग बन गया। क्योंकि अर्जुन राज्य के भोगों से विरक्त हो गये और धर्म के बारे में जानने के लिए परितप्त हुये। (धर्म सम्मूढ चेता:) ऐसा परिताप मुमुक्षुओं के लिए आवश्यक है। परमात्मा एवं धर्म के लिए जो परिताप (विषाद) होगा वह योग का मार्ग प्रशस्त करेगा। एक (विषय भोग) के प्रति विरक्ति और एक (धर्म) के प्रति आसक्ति मोक्ष के लिए अत्यावश्यक हैं। अर्थात् सांसारिक वैभव के प्रति विरक्ति और धर्म एवं परमात्मा के प्रति आसक्ति हो तो परमार्थ के पथ पर जीव जल्दी आगे बढ सकेगा। अर्जुन के हृदय में इन दोनों ने घर कर लिया। उनके हृदय की अनुकूल स्थिति को पहचान कर भगवान श्रीकृष्ण ने तुरन्त गीता का ज्ञानोपदेश दिया। अर्जुन की तरह किसी भी जीव के हृदय में दृश्य विषयों के प्रति विरक्ति हो और धर्म के प्रति तडपन हो तो भगवान की कृपा से उसमें ज्ञान का उदय होगा। उस जीव को परम शान्ति अवश्य प्राप्त होगी।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यह उपनिषदों द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म विद्या योगशास्त्र और श्रीकृष्णार्जुन
संवाद सम्बन्धी श्रीमद्भगवद्गीता के अर्जुन विषादयोग का

प्रथम अध्याय समाप्त।

ॐतत् सत्।

श्री भगवद्गीता

अथ द्वितीयोऽध्यायः

दूसरा अध्याय

सांख्य योगः

सांख्ययोग

अध्याय का शीर्षक -

इस अध्याय का शीर्षक है सांख्ययोग। संख्या से जो जुडा है वह सांख्य है। सांख्य का अर्थ है ज्ञान। ज्ञान के विवरण में जब अनात्मवस्तुओं का हिसाब लगाया जाता है तब संख्या का आश्रय लेना पडता है। इसीलिए यह सांख्य कहा गया है। प्रकृति के अंतर्गत २४ या ९६ तत्व हैं। इनका अनुशीलन कर, उन्हें अनात्मरूप मान कर उन्हें त्यागना, उन सब में साक्षी के रूप में व्याप्त तत्व को परमात्मा के रूप में पहचानना ही सांख्य विद्या है। आत्मा एवं अनात्मा का विवेचनात्मक विज्ञान ही सांख्य है। इस अध्याय में आत्मा के स्वरूप का विस्तार से वर्णन हुआ। पंचभूतात्मक देह की नश्वरता का प्रतिपादन किया गया। ज्ञान से संबंधित विषयों का विवेचन किया गया। इसीलिए इस अध्याय का शीर्षक सांख्ययोग रखा गया है।

इस अध्याय के मुख्य विषय -

१. अपनी मानसिक व्यथा को भगवान श्रीकृष्ण से कह कर उसके निवारण के उपाय बताने की अर्जुन के द्वारा प्रार्थना - (१ से १० तक)
२. आत्मा के स्वरूप का वर्णन (११ से ३० तक)
३. स्वधर्म का वर्णन (३० से ३८ तक)
४. निष्काम कर्मयोग का प्रतिपादन (३९ से ४३ तक)
५. स्थितप्रज्ञ के लक्षण और उसकी महिमा का वर्णन (५४ से ७२ तक)

इसके पूर्व के अध्याय से इस अध्याय का सम्बन्ध -

इसके पूर्व के अध्याय में बताया गया है कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन के रथ को दोनों सेनाओं के बीच में खडा कर दिया। वहाँ दोनों ओर कतारें बाँध कर युद्ध के लिए खडे बन्धु बान्धवों को देख कर अर्जुन शोकविह्वल हो गये। उनका मन उद्विग्न हो गया। सोचने लगे कि मैं इन अपने स्वजनों को कैसे मारूँ? गान्डीव को छोड कर रथ पर बैठ गये। अर्जुन के हृदय की दीनता देख कर भगवान श्रीकृष्ण इस अध्याय में उन्हें धीरज बंधाते हुए समझाने लगते हैं कि आत्म तत्व क्या है ? कर्म रहस्य क्या है ?

सम्बन्ध - अर्जुन की मानसिक स्थिति का वर्णन करते हुए सञ्जय दूसरे अध्याय का आरम्भ करते हैं।

सञ्जय उवाच -

१. *तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्।*
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

सञ्जय उवाच = सञ्जय ने कहा।

शब्दार्थ - तथा = इस प्रकार। कृपया = कृपा कर। आविष्टम् = भरे दिलवाले। अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् = आँसू से भरे व्याकुल नेत्रवाले। विषीदन्तम् = विषाद से भरे। तम् = उस अर्जुन के बारे में। मधुसूदनः = श्रीकृष्ण। इदं वाक्यं = यह वाक्य। उवाच = कहा।

भावार्थ - सञ्जय बोले - उस प्रकार करुणा से व्याप्त और आँसुओं से पूर्ण तथा व्याकुल नेत्रोंवाले शोकयुक्त उस अर्जुन के प्रति भगवान् मधुसूदन ने यह वचन कहा।

व्याख्या - 'अश्रुपूर्णा कुलेक्षणम्' अधिक तीव्र वैराग्यवाले के लक्षण इसी प्रकार के होते हैं। सांसारिक भोगों और दृश्य विषयों के प्रति वह विरक्त होता है। संसार के प्रति नफरत पैदा होती है। तब उसकी आँखों से आँसू की धारा बह निकलती है। जगत् के वैभव उसे भार स्वरूप लगते हैं। यही स्थिति अर्जुन की हुयी। ब्रह्मतत्व के उपदेश के लिए यह स्थिति बहुत ही अनुकूल है। ऐसी

स्थिति जिसकी नहीं होती उसको अध्यात्म तत्त्व का बोध जितना भी करावें वह गन्दे कपडे को रंग लगाने जैसे व्यर्थ होगा। इससे स्पष्ट है कि अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण के ब्रह्मतत्व के उपदेश के अनुकूल हैं।

"कृपयाऽऽविष्टम्" कृपा, दया एवं अनुकंपा सद्गुण हैं। परन्तु अपात्र पर असमय में इन्हें दिखावें तो उसका फल अनुकूल नहीं होगा। अननुकूल स्थल पर स्नेह दिखाना व्यर्थ है। अधर्म का पक्ष लेनेवालों पर अर्जुन ने कृपा की। यह क्षात्र धर्म के विरुद्ध है। इसीलिए अर्जुन को बताया गया कि तुम्हारी यह कृपा निरर्थक है। अत: अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करो।

"मधुसूदन" मधु नामक राक्षस का संहार करने के कारण श्रीकृष्ण, मधुसूदन कहलाये। (मधु का अर्थ है शहद। अहंकार, शब्दादि विषय वासनाएँ और दृश्यादि भोग विलास शहद की तरह आरम्भ में मीठे लगते हैं। बाद को व्यथा पहुँचाते हैं। इसलिए उन्हें त्याग देना चाहिए। वही मधुसूदनत्व है। ऐसे मधुसूदनत्व के लक्षणवाले मधुसूदनरूपी परमात्मा तक पहुँच सकते हैं।)

सम्बन्ध- अर्जुन की दीनता देखकर भगवान श्रीकृष्ण उन्हें धीरज बंधा रहे हैं।

श्रीभगवानुवाच -

२. ***कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।***
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥

श्रीभगवान उवाच = श्रीकृष्ण भगवान ने कहा -

शब्दार्थ - अर्जुन = हे अर्जुन ! अनार्यजुष्टम = पामरों के अपनाने लायक, अस्वर्गम = स्वर्ग प्राप्ति के लिए अवरोधक। अकीर्तिकरम = अपयश प्राप्त करानेवाला। इदम = यह। कश्मलम = मन की व्याकुलता (मोह) विषमे = विषम समय पर। त्वा = तुझे। कुत: = कहाँ से। समुपस्थितम् = प्राप्त हुआ।

भावार्थ - श्रीभगवान् बोले - हे अर्जुन ! तुझे इस असमय में यह मोह किस हेतु से प्राप्त हुआ ? क्यों कि न तो यह श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित हैं, न स्वर्ग को देनेवाला है और न कीर्ति को करने वाला ही है।

व्याख्या - "कश्मलमिदम्" कायरता, शोक, मन की व्याकुलता, आदि को भगवान ने 'कश्मलम्' कहा है। शरीर को जिस प्रकार मलिनता लग जाती है उसी प्रकार मन को शोक, मोह, राग और द्वेष आदि की मलिनता लग जाती है। शरीर की मलिनता को जिस प्रकार जल और साबुन आदि से धो देते हैं उसी प्रकार मन की मलिनता को परमार्थ तत्व से धो देना चाहिए। अर्जुन के मन की मलिनता भगवान श्रीकृष्ण के दिव्य ज्ञान के उपदेश से दूर की जानेवाली है। इसी प्रकार हर व्यक्ति को चाहिए कि वे अपने मन की मलिनता को गीता प्रबोध के द्वारा दूर कर लें।

"आनार्य जुष्टम्" "संसार में दो तरह के लोग हैं आर्य और अनार्य। सन्मार्ग पर चलनेवाले पवित्रता की इच्छा रखनेवाले, प्रकाश चाहनेवाले, और धैर्य एवं उत्साह से रहनेवाले आर्य हैं। कुमार्ग पर चलनेवाले, अपवित्र, कश्मलता को चाहनेवाले, अंधकार की इच्छा वाले, अधीर, निरुत्साही एवं सदा भयभीत रहने वाले अनार्य हैं। हर व्यक्ति को चाहिए कि वे अपने आप से प्रश्न करें कि हम आर्य बनें या अनार्य बनें। फिर आर्य ही बने रहने का प्रयत्न करें।

प्रश्न - अधैर्य, शोक और भय आदि कैसे अवगुण हैं?

उत्तर - (१) वे मन के मैल हैं। (२) अनार्यों के अपनाने के लायक हैं (३) स्वर्ग आदि उत्तम लोकों से दूर रखने वाले हैं (४) अपयश प्राप्त करानेवाले हैं।

३. क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥

शब्दार्थ - पार्थ = हे अर्जुन ! क्लैब्यं = अधीरता। मास्मगमः = प्राप्त मत करो। एतत् = यह। त्वयि = तुझमें। न उपपद्यते = स्थित होने लायक नहीं। परन्तप = शतृओं को तप्त करनेवाले हे अर्जुन ! क्षुद्रम् = नीच। हृदय दौर्बल्यम् = मन की दुर्बलता को। त्यक्त्वा = त्याग कर। उत्तिष्ठ = उठो।

भावार्थ - इसलिये हे अर्जुन ! नपुंसकता को मत प्राप्त हो, तुझमें यह उचित नहीं जान पड़ती। हे परन्तप! हृदय की तुच्छ दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिये खड़ा हो जा॥ ३ ॥

व्याख्या - क्लैब्यम् का अर्थ है नपुंसकता, कायरता, पौरुष का न होना, अधीरता। भगवान इस शब्द के द्वारा अर्जुन को सचेत करते हैं कि इससे छुटकारा पाओ। वास्तव में अधीरता नीच स्वभाव का गुण है। इसलिए उसे क्लैब्यम् कह कर भगवान उस गुण का मजाक करते हैं।

धीरज और निर्भयता सुगुणों में मुख्य हैं। ये दोनों रहें तो बाकी सुगुण भी इनके यहाँ आ जाते हैं। इसीलिए भगवान १६ वें अध्याय के आरंभ में छब्बीस सुगुणों का उल्लेख करते हुए 'अभय' नामक सद्गुण का वर्णन करते हैं। कहते हैं -

"अभयं सत्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितम्" (१६-१) ज्ञानियों का कथन है कि -

उत्साहं साहसं धैर्यं बुद्धि शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र तिष्ठन्ति तत्र देवोऽपि तिष्ठति॥

"उत्साह, साहस, धैर्य, सद्बुद्धि, शक्ति, एवं पराक्रम नामक ये छः सद्गुण जहाँ रहते हैं वहाँ स्वयं भगवान निवास करते हैं।" यह बात सच नहीं होती तो भगवान श्रीकृष्ण भगवद्गीता में इस 'अभय' नामक सुगुण का प्रतिपादन क्यों करते ? भगवान के मुखारविंद से सब से पहले अभय शब्दराज निकल पडा। गीताचार्य और भी कई तत्व बताना चाहते थे। सब से पहले 'अभय' तत्व पर प्रकाश डाला। इससे स्पष्ट है कि इस शब्द में बडा महत्व निहित है। अर्जुन का रोग काफी तेज था। उसे पहचान कर श्रीकृष्ण रूपी वैद्य ने अपनी दवाओं की पेटी में से सब से पहले चुन चुन कर रामबाण सदृश 'अभय' नामक औषध का प्रयोग किया। अज्ञान से जनित मन की दुर्बलता ही अर्जुन का रोग था। आत्मज्ञान से जनित प्रचंड धीरता ही श्रीकृष्ण के द्वारा दिया गया औषध था।

उपनिषद् घोषित करते हैं -

"उत्तिष्ठ" - उत्तिष्ठत ! जागृत ! प्राप्य वरान्निबोधत"

उठो, जागो, महात्माओं के यहाँ पहुँच कर विज्ञान प्राप्त करो। इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन को प्रबोधित करते हैं कि "उठो, कार्यशूर बनो, कर्तव्य का पालन करो!"

'परन्तप!' हे अर्जुन! इसके पहले कितने ही शतृओं को पार पहुँचा दिया। वे सब तुम्हारे बाहरी शतृ हैं। अब अपने अंतः शतृ शोक, मोह, और अधैर्य पर विजय प्राप्त करो। 'परन्तप' शब्द के द्वारा यह भाव सूचित किया जा रहा है।

सम्बन्ध - भगवान श्रीकृष्ण के प्रबोधात्मक वचन सुन कर भी अर्जुन अपने पूर्वाग्रह पर अचल रह कर कहते हैं कि पूज्य भीष्म एवं द्रोण आदि से लोहा लेना क्या पाप कर्म नहीं है?

अर्जुन उवाच -

४. *कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।*
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन॥

शब्दार्थ - अरिसूदन = शतृओं का नाश करने वाले। मधुसूदन = हे कृष्ण। पूजार्हौ = पूजा के योग्य। भीष्मम् = भीष्म का। द्रोणं च = द्रोण का। संख्ये = युद्ध में। अहम् = मैं। इषुभिः = तीरों से। कथं = कैसे। प्रतियोत्स्यामि = सामना कर के युद्ध कर सकता हूँ?

भावार्थ- अर्जुन बोले - हे मधुसूदन! मैं रणभूमि में किस प्रकार बाणों से भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य के विरुद्ध लडूँगा? क्यों कि हे अरिसूदन! वे दोनों ही पूजनीय हैं।

व्याख्या - इस श्लोक से यहीं प्रकट होता है कि यद्यपि भीष्म और द्रोण दोनों शतृपक्ष में थे तथापि अर्जुन के हृदय में उनके प्रति कितना आदर था।

५. *गुरुनहत्वा हि महानुभावाच्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।*
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान्॥

शब्दार्थ - महानुभावान् = महानुभाव। गुरून् = गुरुओं को। अहत्या = न मार

कर। इहलोके = इस लोक में। भैक्ष्यमपि = भिक्षान्न ही सही। भोक्तुं = खाने का। श्रेयो हि = अच्छा ही है न ? गुरून् = गुरुओं को। हत्वा तु = मार कर। इहैव = इस लोक में ही। रुधिर प्रदिग्धान = रक्त से सना। अर्थ कामान् = अर्थ काम रूपी। भोगान् = भोगों को। भुञ्जीय = खानेवाला बनूँगा।

भावार्थ - इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर मैं लोक में भिक्षा का अन्न भी खाना कल्याण कारक समझता हूँ। क्यों कि गुरुजनों को मारकर भी इस लोक में रुधिर से सने हुए अर्थ और कामरूप भोगों को ही तो भोगूँगा॥ ५॥

व्याख्या - "गुरून् महानुभावान्" इसका भाव है द्रोणाचार्य, कृपाचार्य जैसे गुरु, भीष्म, बाह्लिक, सोमदत्त, भूरिश्रव और शल्य आदि महानुभाव।

सम्बन्ध - इस प्रकार अपना निश्चय प्रकट कर देने पर भी जब अर्जुन को सन्तोष नहीं हुआ और अपने निश्चय में शङ्का उत्पन्न हो गयी, तब वे फिर कहने लगे -

६. *न चैतद्विद्म: कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयु: ।*
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिता: प्रमुखे धार्तराष्ट्रा: ॥

शब्दार्थ - न: = हम। कतरत् = कौन सा। गरीय: = श्रेष्ठ है। एतत् च = इसे भी। न विद्म: = नहीं जानते। जयेमयद्वा = (हम) जयी होंगे (या) न: = हमें। जयेम य दिवा = वे ही जयी होंगे। यान् = जिनको। हत्वा = मार कर। न जिजीविषाम: = जीना नहीं चाहते। ते धार्तराष्ट्राः। एव = वैसे धृतराष्ट्र के बन्धु भीष्मादि। प्रमुखे अवस्थिता: = सामने खडे हैं।

भावार्थ - हम यह भी नहीं जानते कि हमारे लिये युद्ध करना और न करना - इन दोनों में से कौन-सा श्रेष्ठ है, अथवा यह भी नहीं जानते कि उन्हें हम जीतेंगे या हमको वे जीतेंगे। और जिनको मारकर हम जीना भी नहीं चाहते, वे ही हमारे आत्मीय धृतराष्ट्र के पुत्र हमारे मुकाबले में खड़े हैं॥ ६॥

सम्बन्ध- इस प्रकार कर्तव्य का निर्णय करने में अपनी असमर्थता प्रकट करने के बाद अब अर्जुन भगवान् की शरण ग्रहण करके अपना निश्चित कर्तव्य बतालाने के लिये उनसे प्रार्थना करते हैं -

७. *कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।*

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

शब्दार्थ - कार्पण्यदोषो हतस्वभावः = कृपणत्व रूपी दोष से (आत्मज्ञान शून्यता) उपहत हुए स्वभाववाला। धर्म सम्मूढ चेताः = धर्म के विषय में मोहितचित्त हुआ (मैं)। त्वाम = आप को। पृच्छामि = पूछता हूँ। यत् = कौन सा। निश्चितम् = निश्चित। श्रेयः = कल्याण कारक। स्यात् = हो। तत् = उसे। मे = मुझे। ब्रूहि = कहिए। अहम् = मैं। ते = तुम्हें। शिष्यः = शिष्य हूँ। त्वाम् = आपको। प्रसन्नम् = शरण हुए। माम् = मुझको। शाधि = शासित कीजिए।

भावार्थ - कायरतारूप दोष से उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्म के विषय में मोहितचित्त हुआ मैं आप से पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपकी शरण हुए मुझ को शिक्षा दीजिए।

व्याख्या - "कार्पण्य दोषः" इस शब्द का अर्थ है कृपणत्व का दोष। कृपण का सामान्य अर्थ है कंजूस। दरिद्र। और एक अर्थ है आत्मज्ञान से शून्य। पहला अर्थ अर्जुन के लिए उपयुक्त नहीं है। क्यों कि उनमें कंजूसी का दोष नहीं है। इसलिए कार्पण्य का अर्थ बृहदोपनिषद् के अनुसार आत्मज्ञान रहित या अज्ञान ही है। प्रथम अध्याय में ज्यादातर अर्जुन का भाषण ही चला। उस समय श्रीकृष्ण मौन रहे। अर्जुन ने बडे ज्ञानी की तरह भगवान को धर्म के बारे में बहुत कुछ सुनाया। फिर भी श्रीकृष्ण मौन रहे। शायद उन्होंने सोचा हो कि "नापृष्टः कस्य चिद्ब्रूयात्" अर्थात् बिना पूछे क्यों बोलना? लेकिन अर्जुन साधारण व्यक्ति नहीं थे। जल्दी ही अपनी स्थिति के बारे में समझ गये। इसलिए भगवान की शरण में आ गए। वे समझ गये कि शरणागति ही मुझे इस आपत्ति से बचा सकनेवाला साधन है। शिष्य की भावना गुरु ने स्वीकार की। शिष्य की योग्यता के अनुसार गुरु की प्रीति बढती है। इसीलिए ज्यों ही अर्जुन ने आत्मार्पण, शरणागति एवं प्रपत्ति के द्वारा शिष्य - धर्म का पालन किया त्यों ही भगवान

श्रीकृष्ण ने अपने गुरु धर्म का पालन किया। श्रेष्ठ आध्यात्मिक प्रबोध के द्वारा अर्जुन को कृतार्थ किया। अर्जुन यदि शिष्य का स्थान ग्रहण नहीं करते तो श्रीकृष्ण गुरु का स्थान ग्रहण नहीं करते और जगत् को 'गीता' प्राप्त नहीं होती। अतः अर्जुन ने अपने आत्मार्पण के द्वारा जगत् को महान् उपकार किया। सभी मुमुक्षुओं का कर्तव्य है कि वे गीता के इस गुरु शिष्य संबंधी न्याय को अच्छी तरह समझ लें।

"उपहत स्वभाव:" हर व्यक्ति का स्वभाव वास्तव में निर्मल ही होता है। लेकिन प्रकृतिगत दोषों के आघात से वह मलिन होता है। अर्जुन का स्वभाव निर्मल था। मगर कृपणत्व (अज्ञान) के दोष से धर्म और अधर्म के ज्ञान से वह वंचित हो गया। ऐसे अवसर पर अविवेकी, उस दोष से छूटने का प्रयत्न नहीं करते। परन्तु अर्जुन अपना दोष समझ गये। उसे सही मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। वह मार्ग कौन-सा था? सद्गुरु के आश्रय में जाना ही वह मार्ग था। गुरु कौन थे? भगवान श्रीकृष्ण ही गुरु थे। अर्जुन भगवान की शरण में चले गये। उनसे प्रार्थना की कि मैं आपका शिष्य हूँ। शिक्षा दीजिए। फिर अपना अहंकार त्याग दिया। सद्गुरु के समक्ष सिर झुका दिया। पारमार्थिक क्षेत्र में आगे बढने का यही मार्ग है। अहंकार को त्याग कर सद्गुरु के आश्रय में जाना ही संसार सागर के उस पार पहुँचा सकनेवाला एक मात्र उपाय है। सद्गुरु रूपी नाविक की सहायता लें तो वह योग्य शिष्य को भवसागर के उस पार आसानी से पहुँचा देगा। अतः सब मुमुक्षु अर्जुन की तरह गुरु की शरण में जावें और आत्मज्ञान पाकर अपना जन्म सार्थक बनावें तो ठीक होगा।

सम्बन्ध - इस प्रकार शिक्षा देने के लिये भगवान् से प्रार्थना करके अब अर्जुन उस प्रार्थना का हेतु बतलाते हुए अपने विचारों को प्रकट करते हैं -

८. *न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।*
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

शब्दार्थ - भूमौ = भूमंडल में। असपत्नं = शत्रु रहित। वृद्ध = समृद्ध। राज्यं

= राज्य। सुराणां = देवताओंका। आधिपत्यं च=आधिपत्य। अवाप्य अपि = प्राप्त कर भी। इन्द्रियाणाम् = इन्द्रियोंको। उच्छोषणं = अधिक ताप पहुँचानेवाला। मम = मेरे। शोकम् = शोक को। यत् = जो। अपनुद्यात् = दूर करेगा। तत् = उस। न प्रपश्यामिः = समझ नहीं पारहा हूँ।

भावार्थ - भूमिमें निष्कण्टक, धन-धान्यसम्पन्न राज्यको और देवताओंके स्वामीपनको प्राप्त हेकर भी मैं उस उपायको नहीं देखता हूँ, जो मेरी इन्द्रियोंके सुखानेवाले शोक दूर कर सकें॥

व्याख्या- बाह्य जगत् में मनुष्य चाहे जितने भी ऐश्वर्य, अधिकार एवं पद व ओहदे क्यों न प्राप्त करे, पर वे उसकी मानसिक अशांति को दूर नहीं कर सकते। मन की व्याधि को वे ठीक नहीं कर सकते। इसीलिए अर्जुनने कहा कि भूलोक एवं स्वर्गलोक के आधिपत्य दोनों भी मन के दुख को दूर नहीं कर पारहे हैं। मन की व्याधि के लिए परमोपयोगी औषध आत्मज्ञान ही है। उसीको भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को देने जारहे हैं। इससे स्पष्ट है कि संसार में हर व्यक्ति को भोगभाग्य, सुख संपत्ति एवं पद ओहदे की जगह आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

सम्बन्ध - इसके बाद अर्जुन ने क्या किया, यह बतलाया जाता है -

९. ***एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ।***
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥

शब्दार्थ - परन्तपः = शतृओं को ताप पहुंचानेवाले। गुडाकेशः = अर्जुन। हृषीकेशम् = श्रीकृष्ण से। एवम् = इस प्रकार। उक्त्वा = कह कर। न योत्स्ये = युद्ध नहीं करूंगा। इति = यह। गोविन्दम् = भगवान श्रीकृष्ण से, उक्त्वा = कह कर। तूष्णीं बभूवह = चुप रह गये।

भावार्थ - सञ्जय बोले-हे राजन् ! निद्राको जीतनेवाले अर्जुन अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज के प्रति इस प्रकार कहकर फिर श्रीगोविन्द भगवान् से 'युद्ध नहीं करूँगा' यह स्पष्ट कहकर चुप हो गये॥

सम्बन्ध - सञ्जयने कहा कि इस हालत में श्रीकृष्ण ने क्या किया।

१०. तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥

शब्दार्थ - भारत = हे महाराजा धृतराष्ट्र! उभयोः सेनयोः = दोनों सेनाओं के। मध्ये = बीच। विषीदन्तम् = दुखी होरहे। तम् = उस अर्जुन के प्रति। हृषीकेशः = श्रीकृष्ण। प्रहसन्निव = हँसते हुए से। इदं वचः = ये वचन। उवाच = बोले।

भावार्थ - हे भरतवंशी धृतराष्ट्र! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण महाराज दोनों सेनाओंके बीचमें शोक करते हुए उस अर्जुनको हँसते हुए से ये वचन बोले।

व्याख्या - 'प्रहसन्निव'-हसन् -हँसतेहुए-प्रहसन्-खूब हँसते हुए-अज्ञानियों की स्थिति देख कर ज्ञानियों को हंसी आती है।

व्याख्या - अर्जुन को धर्म का रहस्य मालूम न था। इसलिए मामला उलझ गया। तब उन्हें शोक हुआ। श्रीकृष्ण धर्म का रहस्य अच्छी तरह जानते थे। इस कारण उन्हें अर्जुन के व्यवहार पर हँसी आयी। जो माया के वशवर्ती हैं वे माया में लीन देह, इन्द्रियों तथा संबंधित सांसारिक व्यवहारों के वश होकर दुःखी होते हैं। जो ज्ञानी माया पर विजय प्राप्त करते हैं वे इन्द्रियों के वश नहीं होते। उनके गुणों के वश नहीं होते। केवल साक्षी बन कर उनका निरीक्षण करते रहते हैं। माया संबंधी चेष्टाएँ देख कर उन्हें हँसी आती है। जो यह जानते हैं कि यह सांप नहीं रस्सी है, वे क्या रस्सी को सांप समझ कर रोनेवाले अज्ञानियों को देख कर नहीं हँसेंगे ? शिशु की चेष्टाएँ देख कर जिस प्रकार पिता हँसता है उसी प्रकार अज्ञानियों की चेष्टाएँ देख कर ज्ञानी हँसते हैं। अज्ञानियों को गागर जैसा संसार सागर सा लगता है, परन्तु ज्ञानियों को सागर जैसा संसार गागर सा लगता है। इसी तरह मोहग्रस्त अर्जुन की चेष्टाएँ देख कर परमज्ञानी श्रीकृष्ण को हँसी आ गयी। एक के चेहरे पर विषाद की छाया (विषीदन्तं) और एक के चेहरे पर आनन्द की छाया (प्रहसन्)। यही ज्ञानी तथा अज्ञानी के बीच का अन्तर है।

सम्बन्ध - सञ्जय बताते हैं कि उपर्युक्त प्रकारसे चिन्तामग्न अर्जुन ने जब भगवान् की शरण होकर अपने महान् शोककी निवृत्तिका उपाय पूछा और यह कहा कि

इस लोक और परलोक का राज्यसुख इस शोक की निवृत्ति का उपाय नहीं है, तब अर्जुनको अधिकारी समझकर उसके शोक और मोहको सदाके लिए नष्ट करनेके उद्देश्य से भगवान् पहले नित्य और अनित्य वस्तुके विवेचनापूर्वक सांख्ययोग की दृष्टिसे युद्ध करना कर्तव्य है, ऐसा प्रतिपादन करते हुए सांख्यनिष्ठाका वर्णन करते हैं-

११. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥

शब्दार्थ - त्वम् = तुम। अशोच्यान् = जो शोक करने योग्य नहीं हैं। अन्वशोचः = शोक करते हो। प्रज्ञावादांश्च = बुद्धिवाद से युक्त वचन भी। भाषसे = बोलते हो। पण्डिताः = आत्मज्ञानी। गतासून् = मरे हुओं के बारे में। अगतासून = जीवित रहनेवालों के बारे में भी। न अनुशोचन्ति = दुखी नहीं होते।

भावार्थ - श्री भगवान् बोले-हे अर्जुन! तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते॥

व्याख्या - गीता के प्रबोध का आरंभ इस श्लोक से हुआ है। इसीलिए यह श्लोक गीताशास्त्र का बीज माना गया है। (अस्य श्री भगवद्गीताशास्त्र महामंत्रस्य .... अशोच्या न न्वशोचस्त्वमिति बीजं-) जिस प्रकार सारा वृक्ष बीज में निहित रहता है उसी प्रकार सारा गीतातत्व इस श्लोक में निहित है। गीता प्रबोध का आरंभ "अशोच्यान् " शब्द से हुआ और उसकी समाप्ति अध्याय के "माशुचः" शब्द से हुयी। इससे स्पष्ट है कि शोक राहित्य ही गीता का परम लक्ष्य है। 'अशोच्यान्' - संसार की हर चीज का निर्माण अस्ति, भातिं, प्रिय, नाम एवं रूप नामक पांच तत्वों से होता है। इनमें प्रथम तीनों (सत्, चित्, आनन्द) सत्य हैं। बाकी दोनों कल्पित हैं। प्रारंभिक तीनों जीव के वास्तविक रूप हैं। नाम और रूप सत्य नहीं हैं। सत्य का स्वरूप किसी भी समय में नष्ट

नहीं होता। इसलिए उसके लिए शोक करना अनावश्यक है। नाम और रूप असत्य हैं। अतः उनमें परिवर्तन हो तो चूँकि वे सत्य नहीं हैं, अतः उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। भगवान प्रश्न करते हैं कि ऐसी हालत में किस के लिए शोक किया जाय?

"प्रज्ञा वादांश्च" -बुद्धिवाद से युक्त वचन। बुद्धि थोडी दूर तक ही जासकती है। उसके और आगे नहीं जा सकती। बुद्धि के परे आत्मा है। (एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा...) बुद्धि (Conscious State) प्रकृति के अंतर्गत है।इसलिए बुद्धिवाद में कुछ कमियों का होना स्वाभाविक है। बुद्धि को पार कर आत्मा (Super-Conscious State) का स्पर्श करनेवालों का हाल ऐसा नहीं होता। वह परमार्थ तत्व में यदार्थता को बता सकता है। अर्जुन अभी उस स्थिति तक नहीं पहुँचे। अतः उन्होंने बुद्धि नामक अपने मानदंड से नाप कर अपने ढंग से कुछ कह दिया। भगवान श्रीकृष्णने "प्रज्ञावादांश्च" कह कर उन सब बातों को काट दिया। "नानु शोचन्ति पण्डिताः" -अकसर समझा जाता है कि काव्य, नाटक-आदि लिखनेवाले पण्डित हैं। परन्तु भगवानने यहाँ पण्डित का अर्थ बदल दिया। उन्होंने कहा कि वास्तव में पण्डित वही है जो किसी व्यक्ति विशेष या वस्तु विशेष के लिए शोक नहीं करता। चौथे अध्याय में भगवान कहते हैं कि पण्डित वही है जो ज्ञान की अग्नि से सभी कर्मों को भस्म कर लेता है। पांचवें अध्याय में कहते हैं कि पण्डित वही है जो सभी जीवों में समभावना के दर्शन करते हैं। ऐसे सद्गुणी को ही भगवान पण्डित के शब्द से विभूषित करते हैं। इसलिए लोगों को विद्या वैदुष्य के साथ आत्मज्ञान पा कर भगवान के कहे अनुसार वास्तविक पांडित्य भी प्राप्त करना चाहिए। ऐसे पांडित्य के द्वारा सर्वेश्वर की प्रीति के पात्र बनने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न - पण्डित कौन है?

उत्तर - जो व्यक्ति जीवितों तथा मृतकों के बारे में या किसी वस्तु के बारे में शोक न करें, वे ही पण्डित हैं।

सम्बन्ध - भगवान स्पष्ट करते हैं कि बुन्धुओं के बारे में शोक करना किसी कारणसे उचित नहीं है। अतः पहले भगवान् आत्माकी नित्यताका प्रतिपादन करके आत्मदृष्टिसे उनके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध करते हैं-

१२. न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥

शब्दार्थ - अहम = मैं। जातु = एक समय। नासं = (इति) न होना। नतु एव = है ही नहीं। त्वम् = तुम(न आसीः इति)। न = न होना है नहीं। इमे = ये। जनाधिपाः = राजा। (न आसन् इति), न = न होना है नहीं। अतःपरम = आगे चल कर। वयं सर्वे = हम सब का। न भविष्यामः (इति) च = न होना। न एव = नहीं है।

भावार्थ - न तो ऐसा ही है कि मैं किसी कालमें नहीं था या तू नहीं था अथवा ये राजा लोग नहीं थे और न ऐसा ही है कि इससे आगे हम सब नहीं रहेंगे ॥

व्याख्या - इस श्लोक के द्वारा भगवान 'तत्वमसि' का उपदेश देते हैं। वे घोषणा करते हैं कि मैं, तू, जीव सब शाश्वत रूप से आत्मस्वरूप ही हैं। जीव और शिव दोनों को एक ही मंच पर समान स्तर पर भगवान रखते हैं। यह अत्यंत गोपनीय आध्यात्मिक तत्व संबंधी बात है। ब्रह्मज्ञान का सारांश यही है। अर्जुन ऐसे तीव्र वैराग्य भाव के थे कि वे तीनों लोकों को भी ठुकरा सकते थे। इसलिए उन्हें ब्रह्मज्ञान के योग्य मान कर भगवान उन्हें परमार्थ तत्व समझाने को प्रस्तुत हो गये। भगवानने कहा कि ' तुम, मैं और ये राजा सब नित्य हैं।' इससे निम्न लिखित सत्य प्रकट होते हैं।

१. आत्मा नित्य है।

२. हम आत्मा हैं न कि देह।

३. सभी जीवों में एक ही आत्मा व्याप्त है।

इस प्रकार के प्रबोध से जीव को अपार धैर्य प्राप्त होता है उसके हृदय में आनन्द का संचार होता है। क्यों कि जब उसे मालूम होता है कि खुद नष्ट नहीं

होगा तब अपनी एवं दूसरों की मृत्यु पर उसे दुःख नहीं होगा। अर्जुन को धीरज बंधाने के लिए भगवान श्रीकृष्ण ने आरंभ में ही गंभीर आत्म विद्या का उपदेश देना शुरू किया।

"**सर्वे वयमतःपरम्**" -(हम सब) कहने से स्पष्ट होता है कि भगवान और भक्त तथा गुरु और शिष्य में भेद नहीं है। सभी एक ही सद्वस्तु हैं। इसीलिए श्रीरामचन्द्र से आंजनेय ने कहा कि आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहं (आत्मदृष्टि से हम और तुम एक हैं)। उपाधि से जीवत्व की सिद्धि हुयी है। जब उपाधि की भावना लुप्त होती है तब जीव शिव बन सकता है (शिवोऽहं)। अतः देहादि के नष्ट होने पर भी दुखी होने की जरूरत नहीं है। इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने एक धर्म रहस्य के सहारे विषण्णचित्तवाले अर्जुन में नयी शक्ति एवं धीरज का संचार किया।

प्रश्न - जीव कौन है ?

उत्तर - आत्मा है न कि देह।

प्रश्न - आत्मा कैसी है ?

उत्तर - पूर्व में थी। अब भी है। आगे भी रहेगी। उसका नाश नहीं होगा। वह शाश्वत है।

प्रश्न - सत्य का अन्वय क्या कुछ लोगों के लिए ही होगा ?

उत्तर - नहीं। पिपीलिका से ब्रह्म पर्यंत सब के लिए इसका अन्वय होगा। सभी जनन मरण रहित शाश्वत आत्म स्वरूप ही हैं।

सम्बन्ध - इस प्रकार आत्माकी नित्यताका प्रतिपादन करके अब उसकी निर्विकारताका प्रतिपादन करते हुए आत्माके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध करते हैं-

१३. देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

शब्दार्थ - देहिनः = जीव को। अस्मिन् देहे = इस शरीर में। कौमारं = बाल्य। यौवनम् =यौवन। जरा = वृद्धाप्य। यथा = जैसे होते हैं। तथा = वैसे ही। देहान्तर प्राप्तिः = और एक शरीर प्राप्त करना भी। (होता है)। तत्र = इस विषय

का। धीरः =ज्ञानी। नमुह्यति = मोह नहीं पाता। (शोक नहीं करता)

भावार्थ - जैसे जीवात्माकी इस देह में बालकपन, जवानी और वृद्धावस्था होती है, वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है; उस विषयमें धीर पुरुष मोहित नहीं होता।

व्याख्या - भगवान कहते हैं कि जीव की चार अवस्थाएँ होती हैं (१) बाल्यकाल (२) जवानी (३) वृद्धवस्था और (४) देहांतरप्राप्ति। स्पष्ट है कि ये परिवर्तन शरीर से संबंधित है न कि आत्मा से। बालकपन के बाद जब यौवन आता है तब कोई दुखी नहीं होता। यौवन के बाद जब बुढापा आता है तब कोई दुखी नहीं होता। ऐसी हालत में भगवान प्रश्न करते हैं कि बुढापे के बाद जब मौत और देहांतर प्राप्ति होती हैं तब दुःख क्यों करना है ? यह रहस्य जाननेवाले महानुभाव उनकी परवाह नहीं करते। गंभीर बन कर मेरु पर्वत की तरह स्थिर रहते हैं। सब लोगों को उपर्युक्त चार परिवर्तनों में से तीन दिखायी देते हैं। मगर नहीं जानते कि चौथा भी एक (देहांतर प्राप्ति) है। परन्तु भगवान यहाँ स्पष्ट करते हैं कि चौथा परिवर्तन भी है। आरंभ के तीन जितने सत्य हैं चौथा भी उतना ही सत्य है। इसलिए चौथे के बारे में किसी को शोक नहीं करना चाहिए। परन्तु यहाँ यह जानना जरूरी है कि कर्मराहित्यवाले ज्ञानी की देहांतरप्राप्ति नहीं होती। सामान्य लोगों को ही उसकी प्राप्ति होती है।

देहचक्र (Cycle of the body)

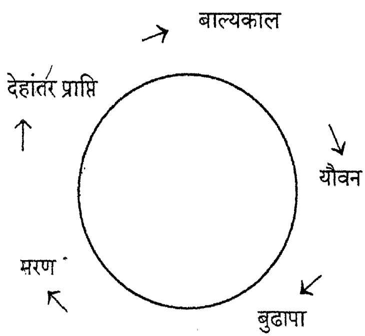

जब तक कर्म दोष रहेगा तब तक उपर्युक्त चारों परिवर्तन चक्रभ्रमण की भांति होते रहते हैं। ज्ञान की प्राप्ति से जब कर्म संचय भस्म होता है तभी देह एवं उससे संबंधित चारों परिवर्तन समाप्त होते हैं। वह मोक्ष की स्थिति है।

प्रश्न - जीव की कितनी अवस्थाएँ होती हैं ? वे कौन सी हैं ?

उत्तर - जीव की चार अवस्थाएँ होती हैं। वे हैं बाल्य, यौवन, वार्धक्य तथा देहांतरप्राप्ति।

प्रश्न - धीर कौन हैं ?.

उत्तर - धीर वही है जो बाल्य, यौवन एवं वृद्धाप्य की ही तरह मरण तथा देहांतरप्राप्ति पर दुःखी नहीं होता।

सम्बन्ध - भगवान कहते हैं कि बन्धु-बान्धवादि के साथ होनेवाले सुख-दुःखादि अनित्य हैं। उनकी परवाह नहीं करनी चाहिए।

१४. मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥

शब्दार्थ - कौन्तेय = हे अर्जुन ! मात्रा स्पर्शास्तु = इन्द्रियों के शब्दादि विषयक संयोगोंका मतलब। शीतोष्ण सुख दुःखदाः = सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख देनेवाला। आगमापायिनः = आवागमनवाले। अनित्याः = अस्थिर। तान् = उन्हें। भारत = भरतकुल में उत्पन्न हे अर्जुन। तितिक्षस्य = सहन करो।

भावार्थ - हे कुन्तीपुत्र ! सर्दी-गर्मी और सुख-दुःखको देनेवाले इन्द्रियों के संयोग तो उत्पत्ति, विनाशशील और अनित्य हैं; इसलिये हे भारत ! उनको तू सहन कर॥

व्याख्या - जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं होता कि जगत् मिथ्या है, वे समझते हैं कि बाह्य पदार्थों के संयोग से इन्द्रियों को जो सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख आदि विकार होते हैं वे सत्य हैं। अपने ऊपर उन्हें आरोपि कर वे दुःखी होते हैं। परन्तु जो यह जानते हैं कि ये सब विकार प्रकृति से संबंधित हैं, आत्मा इससे निर्लिप्त है, वह अकर्ता है वे कभी दुःखी नहीं होते। इसलिए भगवान अर्जुन को समझाते

हैं कि समबुद्धि से इनका सहन करना चाहिए।

"सुख दुःखदाः" -शब्दादिविषयक सुख केवल सुख नहीं है। वह दुःख मिश्रित सुख है। क्यों कि अगर वह केवल सुख है तो दुःख नहीं होना चाहिए। लेकिन ऐसा नहीं है। वे थोडा सा सुख यद्यपि पहुँचाते हैं तथापि अपरिमित दुःख ताप में रहते हैं। इसीलिए भगवान ने उन्हें सुखदाः न कह कर सुख दुःखदाः कहा है।

'आगमापायिनः' -आवागमनवाले। सांसारिक सुखों की प्राप्ति से किसी को खुश नहीं होना चाहिए। क्यों कि वे केवल आनेवालेमात्र नहीं हैं। जानेवाले भी हैं। रिश्तेदारों की तरह आते हैं, फिर जाते हैं। वे अनित्य हैं। अतः उनके प्रति आसक्ति, प्रीति या ममता रखना ठीक नहीं। जो व्यक्ति चकाचौंधवाले सुखों के पीछे आसक्त होता है उसे दुःखों के सागर में डूबना पडता है। इसलिए ऐसे क्षणिक सुखों के पीछे न पड कर शाश्वत आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए।

'तांस्ति स्तितिक्षस्व' तितिक्षा का मतलब है सहनशक्ति। जब सर्दी गर्मी होती हैं तब समत्व की बुद्धि से उनका सहन करना चाहिए। तितिक्षा शम दम आदि सद्गुणों में से एक है।

प्रश्न - शब्द स्पर्श आदि विषयों का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर - वे (१) सर्दी, गर्मी, सुख और दुःख देनेवाले हैं। (२) आवागमनवाले हैं। (३) अनित्य हैं।

प्रश्न - सर्दी गर्मी की प्राप्ति के समय क्या करना चाहिए ?

उत्तर - समदृष्टि से उनको सहन कर धीरज धर कर रहना चाहिए।

सम्बन्ध - इन सबका समदृष्टि से सहन करनेसे क्या लाभ होगा ? इस जिज्ञासापर कहते हैं-

१५. *यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।*
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

शब्दार्थ - पुरुषर्षभ = पुरुषश्रेष्ट हे अर्जुन ! एते = शब्द स्पर्शादि विषय। सम दुःख सुखम् = सुख दुःख को समान माननेवाला। धीरम् = धैर्यवान, यं पुरुषम = जिस पुरुष को। न व्यथयन्ति = व्यथित नहीं करते। सःहि = वही तो। अमृतत्वाय = मोक्ष के लिए। कल्पते = योग्य है।

भावार्थ - हे पुरुष श्रेष्ठ ! दुःख-सुख को समान समझनेवाले जिस धीर पुरुष को ये इन्द्रिय और विषयों के संयोग व्याकुल नहीं करते, वे मोक्ष के योग्य होते हैं।

व्याख्या - 'पुरुषर्षभ' -(पुरुषश्रेष्ठ !) इस शब्द के प्रयोग से लगता है कि शायद् भगवान अर्जुन को सचेत करते हैं कि इन्द्रियों पर विजय पाओ। विषयादि से विचलित मत होओ। सुख और दुःख के प्रति समभाव रखो। पारमार्थिक श्रेष्टता को प्राप्त करो।

''सम दुःख सुखं धीरम्'' - सुख और दुःख के प्रति समभाव रखना ही धीरता है। आत्मा में स्थित होकर सुख और दुःख दोनों को मनोविकार की दृष्टि से देखनेवाला ही धीर है। जिस प्रकार दुःख एक मनोविकार है, उसी प्रकार सुखभी एक मनोविकार है। इसलिए आत्मा में स्थिरता लानेवाले धीर महानुभाव उन दोनों को समान रूप से देखेंगे।

'सोऽमृतत्वाय कल्पते' - मोक्ष का नाम 'अमृतत्व' भी है। यह नाम रूप दृश्य जगत् मृत होता है। जनन मरण एवं विनाश से युक्त है। आत्मिक स्थिति का मोक्ष मरण रहित है। अतः मोक्ष कहीं आसमान या स्वर्ग की वस्तु नहीं है। अमृतत्व का पद ही मोक्ष है। मृत्यु रहित आत्मिक स्थिति ही मोक्ष है। उसे प्राप्त करनेवाला फिर मृत्यु का शिकार नहीं बनता। वह पुनर्जन्म नहीं लेता। (यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम)।

भगवानने कहीं उल्लेख नहीं किया कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए फलाना कुल, फलानी जाति या फलाना धर्म योग्य है। उन्होंने कहा कि जो इन्द्रियों को वश में रखते हैं, विषय वासनाओं के प्रति आसक्त नहीं हैं, सुख और दुःख को समत्व भावना से देखते हैं वे धीर ही मोक्ष प्राप्ति के लिए योग्य हैं।

मोक्ष माने क्या है ?

मरण रहित शाश्वत आनंदमय पद ही मोक्ष है।

उसे कौन पा सकते हैं ?

शब्द स्पर्श आदि विषयों सेविचलित न होनेवाले, दुःख-सुख को समान रूप से देख सकनेवाले धीर ही मोक्ष पा सकते हैं।

धीर माने कौन हैं ?

शब्दादि विषयों पर विजय प्राप्त करनेवाले, दुःख और सुख के प्रति समभाव रख सकनेवाले धीर कहलाते हैं।

...अ - भगवान स्पष्ट करते हैं कि सद्वस्तु कौन सी है और असद्वस्तु कौन सी है।

१६. ***नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।***
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

शब्दार्थ - असतः = जो नहीं है उसका। भावः = अस्तित्व। न विद्यते = नहीं है। अनयोः =इन। उभयोरपि = दोनों का। आन्तःतु =निश्चय। तत्वदर्शिभिः =ज्ञानियों से दृष्टः = देखा गया है।

भावार्थ - असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्व तत्वज्ञानी पुरुषों द्वारा देखा गया है।

व्याख्या - **'तत्व दर्शिभिः'** - 'दर्शिभिः'कहा गया है। इसका अर्थ है तत्व को प्रत्यक्ष देखनेवाले। केवल जबान से बोलनेवाले नहीं (तत्व वादृभिः नहीं)। ऐसे ज्ञानी नित्य और अनित्य वस्तुओं की परख अच्छी तरह करते हैं। अर्थात् उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि कौन सी वस्तु शाश्वत है और कौन सी वस्तु नहीं। देह आदि दृश्यवर्ग नाशवान है। अतः वह पारमार्थिक नहीं है। ऐसी अनस्तित्ववाली वस्तु का अस्तित्व किसी भी काल में नहीं होता। अगर कभी हो भी तो वह केवल मृग मरीचिका की तरह आभास मात्र है। आत्मा सत्य है। इस वास्तविक स्थिति को मात्र ज्ञानी ही समझते हैं। अन्य लोग नहीं समझते। जो नहीं है, उसे

'है' मान कर, जो 'है' उसे 'नहीं' मान कर लोग व्यथाएँ पाते हैं।

१. जो भगवान (आत्मा) है उसे नहीं है कहना एक दोष है।

२. जो जगत् नहीं है उसे है कहना और एक दोष है। प्रथम दोष को असंभाव कहते हैं तो द्वितीय को विपरीतभाव कहते हैं। असंभाव के कारण सत्य वस्तु उनसे दूर होती है। इससे नित्यानन्द उनसे दूर होता है। विपरीतभाव से असत्यवस्तु उनके नजदीक आती है। इससे दुःख पास आता है। इस दुःख से मुक्ति चाहें तो "**जो है, उसे है, समझना चाहिए**"। "जो नहीं है, उसे नहीं है," समझना चाहिए। यही शांति का मार्ग है। तत्वज्ञ इस रहस्य को जान कर अपना जीवन कृतार्थ कर लेते हैं। अज्ञानी इसे न जान कर संसार के चक्कर में फंस कर दुःख झेलते हैं।

इस श्लोक में '**ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या**' वाला परम सत्य प्रकट किया गया है।

प्रश्न - तत्वज्ञानी कैसा अनुभव प्राप्त करते हैं ?

उत्तर - वे नाम रूपात्मक दृश्य जगत् को मिथ्या तथा सच्चिदानन्द परमात्मा को सत्य मानते हैं। यही उनका अनुभव है।

सम्बन्ध - इस तरह भगवान सद्वस्तु का विवरण देकर अब असद्वस्तु के बारे में बताते हैं।

१७. अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।।

शब्दार्थ - इदं सर्वम् = यह सारा विश्व। येन =जिससे (जिस परमात्मा के द्वारा)। ततम् = व्याप्त किया गया है। तत् तु = उसे। अविनाशि = नाश रहित। विद्धि = जानो। अस्य = इस। अव्ययस्य = नाशरहित सत्य वस्तु को। कश्चित् = नाश को। कर्तुम् = (अन्वित) करने को। कश्चित् = कोई भी। न अर्हति = योग्य नहीं।

भावार्थ - नाश रहित जो है तू उसे जान, जिससे यह संपूर्ण जगत्-दृश्यवर्ग

व्याप्त है। इस अविनाशी का विनाश करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

व्याख्या - सारे चराचर, हृदयस्थित आत्मा के द्वारा व्याप्त हैं। इसलिए-

१. सब जीवों को आत्म स्वरूप मान कर उनके प्रति प्रेम और दया के साथ व्यवहार करना चाहिए।

२.भगवानरूपी आत्मा अति निकट होने के कारण किसी भी काल में पाप नहीं करना चाहिए।

३.आत्मा वास्तविक है। अतः उसका नाश कोई नहीं कर सकता। इसलिए साधक को धैर्यवान बन कर आनन्द के साथ निरंतर उस आत्मा के बारे में मनन करते हुए स्वात्मसंस्थित होकर रहना चाहिए।

प्रश्न - आत्मा कैसी है ?

उत्तर - १. समस्त जगत् में व्याप्त है।

२. नाश रहित है।

३.उसका नाश कोई नहीं कर सकता।

सम्बन्ध - इस प्रकार 'सत्' तत्त्वकी व्याख्या हो जानेके अनन्तर 'असत्' वस्तु क्या है, इस जिज्ञासापर कहते हैं-

१८. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

शब्दार्थ - नित्यस्य = नित्यवान ! अनाशिनः = नाश रहित। अप्रमेयस्य = प्रत्यक्ष प्रमाणों से जाना न जानेवाला। शरीरिणः = देही आत्मा का। इमे देहाः = ये शरीर। अन्तवन्तः = नाशवान्। उक्ताः = कहे गये हैं। तस्मात् = उस कारण से। भारत = हे अर्जुन! युध्यस्व = युद्ध करो।

भावार्थ - इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन ! तू युद्ध कर।

व्याख्या - "**अन्तवन्त इमे देहाः**" - देह का अंत निश्चित है। पर आप देह नहीं है। देह व शरीर नाशवान हैं। लेकिन देह रूपी आत्मा का नाश नहीं होता।

नाशवान देहों का विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। उससे तादात्म्य स्थापित नहीं करना चाहिए। नित्यवान आत्मा पर विश्वास कर समझना चाहिए कि 'वह' खुद 'आप' ही है।

"**शरीरिण:**" कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि आत्मा दूर नहीं है। शरीर में ही निहित है। इसलिए शरीर का भावत्याग कर शरीरी का भाव रखना चाहिए।

"**तस्माद्युध्युस्व**" आत्मा का नाश नहीं होता। चूँकि तुम देह नहीं हो इसलिए दु:ख त्याग कर अपने कर्तव्य का पालन करो। यहाँ भगवान अर्जुन को उपदेश देते हैं कि ज्ञान से युक्त कर्म का आचरण करो।

प्रश्न - देह का स्वभाव क्या है ?

उत्तर - वह नाशवान है।

प्रश्न - देही आत्मा कैसी है ?

उत्तर - (१) नित्य है। (२) नाश रहित है। (३) अप्रमेय है।

सम्बन्ध - भगवान आत्मा के स्वरूप और स्वभाव का और भी विवरण देते हुए स्पष्ट करते हैं कि वह कभी मारी नहीं जाती।

१९. य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

शब्दार्थ - य: = जो। एवम् = इस (शरीर में निहित) आत्मा को। हन्तारम = हनन करनेवाला सा। वेत्ति = जान लेता है। यश्च = जो। एनम् = इसे। हतम = मारा गया सा। मन्यते = समझता है। तौ उभौ = वे दोनों। न विजानीत: = जाननेवाले नहीं हैं। अयम् = यह आत्मा। न हन्ति = नहीं मारता। न हन्यते च = मारा भी नहीं जाता।

भावार्थ - जो इस आत्मा को मारनेवाला समझता है तथा जो इसको मरा मानता है, वे दोनों ही नहीं जानते, क्यों कि यह आत्मा वास्तव में न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जाता है।

व्याख्या - कठोपनिषद् में ऐसा ही एक श्लोक है -

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्यन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥

(कठोपनिषद् . उ. ११-१९)

(१) कहा गया है कि आत्मा मारा जानेवाला नहीं। इससे स्पष्ट है कि आत्मा के कर्तृत्व आदि नहीं होते। वह करनेवाला नहीं, करानेवाला नहीं। कर्तृत्व आदि बुद्धि से संबंधित हैं न कि बुद्धि के साक्षीभूत आत्मा से। अत: गीता घोषित करती है कि आत्मा से कर्तृत्व को जोडनेवाले मूर्ख हैं।

(२) "आत्मा मारा जानेवाला नहीं" इस कथन से स्पष्ट है कि वह शाश्वत है। निर्विकार है। अत: साधक को अच्छी तरह समझना चाहिए कि साधक आत्म स्वरूप है। मरण रहित है। मरण देह से संबंधित है न कि आत्मा से।

प्रश्न - आत्मा कैसा है?

उत्तर - वह मरनेवाला नहीं है। मारा जानेवाला नहीं है। (अकर्ता है। अविनाशी है।)

सम्बन्ध - भगवान आत्मा में सब प्रकार के विकारों का अभाव बतलाते हुए उसके स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।

२०. *न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय: ।*
अजो नित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

शब्दार्थ - अयम् = यह आत्मा। कदाचित् = कभी। न जायते = पैदा नहीं होता। नम्रियतेवा = मरता भी नहीं। न भूत्वा = (पहले) न रहे कर। भूय: = फिर से। भवितावान = (नये रूप से) होनेवाला भी नहीं। (भूत्वा = होकर।) भूय: = फिर से। (न भविता न = न होनेवाला नहीं है।) अयम् = यह। अज: = जन्म रहित। नित्य: = मरण रहित। शाश्वत: = सदा रहने वाला है। पुराण: = अनादि है। शरीरे हन्यमाने = शारीरिक रूप से मारे जाने पर भी। न हन्यते = मारा नहीं जाता।

भावार्थ - यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न वह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है, क्यों कि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है। शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता।

व्याख्या - इस श्लोक से मिलता जुलता मंत्र कठोपनिषद् में एक है -

न जायते म्रियते वा विपश्चि
न्नायं कुतश्चिन्नबभूव कश्चित्
अजो नित्यश्शाश्वतोयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ (कठोपनिषद् - ११ - १८)

इन वाक्यों से सिद्ध होता है कि गीता उपनिषदों का सार है। स्पष्ट कहा गया है कि शरीर नष्ट होता है। किन्तु आत्मा नष्ट नहीं होता। इससे स्पष्ट है कि शरीर से अलग साक्षी के रूप में आत्मा है। इसलिए मनुष्य को समझना चाहिए कि शरीर नाशवान है, आत्मा अविनाशी है।

इससे धैर्य, आनन्द एवं निर्भीकता का हृदय में संचार होता है। मरण का भय मिट जाता है।

प्रश्न - आत्मा का स्वरूप क्या है?

उत्तर - (१) आत्मा का जन्म मरण नहीं होता। (२) आत्मा नित्य रहता है। (३) शाश्वत है। (४) स्थिर है। (५) पुराण पुरुष है। (६) शरीर के नष्ट होने पर भी आत्मा नष्ट नहीं होता।

सम्बन्ध - भगवान बतलाते हैं कि आत्मा किसी को मारता क्यों नहीं?

२१. वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम्॥

शब्दार्थ - आत्मा को। अजम् = जन्मरहित। अव्ययम = क्षयरहित। अविनाशम् = नाश रहित। नित्यम् = नित्य विलसित। वेद = जानता है। सः पुरुषः = वह पुरुष। कथं = कैसे? कम = किसे। घातयति = मरवाएगा। कम् = किसे। हन्ति = मारेगा।

भावार्थ - हे पृथापुत्र अर्जुन! जो पुरुष इस आत्मा को नाशरहित, नित्य, अजन्मा और अव्यय जानता है वह पुरुष कैसे किसको मरवाता है और कैसे किसको मारता है।

व्याख्या - आत्मा नित्य है। अतः उसे कोई मार नहीं सकता, मरवा नहीं सकता।

सम्बन्ध - भगवान बताते हैं कि देह अनित्य है। देह में रहनेवाला आत्मा नित्य है। इस विषय का कई उदाहरणों के द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं।

२२. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

शब्दार्थ - नर: = मनुष्य। जीर्णानि = शिथिल। वासांसि = वस्त्रों को। विहाय = त्याग कर। अपराणि = अन्य। नवानि = नये वस्त्रों को। यथा = जिस प्रकार। गृह्णाति = ग्रहण करता है। तथा = उसी प्रकार। देही = आत्मा। जीर्णानि = शिथिल। शरीराणि = देहों को। विहाय = त्याग कर। अन्यानि = अन्य। नवानि (शरीराणि) = नये शरीरों को। संयाति = प्राप्त करता है।

भावार्थ - जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।

व्याख्या - गीता में कई सुंदर उपमानों के द्वारा विषय का बोध कराया गया है। दृष्टांतों से विषय आम लोगों की समझ में भी आसानी से आजाता है। यहाँ एक दृष्टांत बताया गया है। धोबी को मैले कपडे जब सौंपते हैं तब कोई दुखी नहीं होता। क्यों कि विश्वास रहता है कि ये धुल कर नये कपडों के रूप में वापस आ जाएंगे। भगवान यहाँ बतलाते हैं कि मृत्यु की भी यही बात है। शिथिल देह का परित्याग ही मृत्यु है। जीव जीर्ण देह त्याग कर नूतन शरीर ग्रहण करनेवाला है। इसलिए भगवान बतलाते हैं कि मरण से दुःख करना नहीं चाहिए।

'शरीराणि' बहुवचन का प्रयोग किया गया है। (ज्ञान की अग्नि से कर्म संचय,

दग्ध न हुआ तो) जीव को कई जन्म लेना ...

'जीर्णानि' - इस शब्द का अर्थ 'शिथि... ...।

क्यों कि बुढापे में ही सब लोग नहीं मररहे हैं। ... कई

लोग मररहे हैं। तब उनके शरीर नूतन रहते हैं, ... के

प्रयोग से स्पष्ट होता है कि मरण देह का होता है, देही आत्मा का ...

निश्चल रहता है। वही जीव का वास्तविक स्वरूप है न कि शरीर।

सम्बन्ध - भगवान बतलाते हैं कि पंचभूत आदि भी आत्मा को व्यथा पहुंचा नहीं सकते।

२३. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

शब्दार्थ - एनम् = इस आत्मा को। शस्त्राणि = हथियार। न छिन्दन्ति = काट नहीं सकते। पावकः = अग्नि। एनम् = इस आत्मा को। न दहति = जला नहीं सकती। अंपःज = पानी भी। एनम् = इस आत्मा को। न क्लेदयन्ति = गला नहीं सकता। मारुतः = हवा। न शोषयति = सुखा नहीं सकती।

भावार्थ - इस आत्माको शस्त्र नहीं काट सकते। इसको आग नहीं जला सकती। इसको जल नहीं गला सकता और वायु नहीं सुखा सकती ।।

व्याख्या - जीव के तीन पदार्थ होते हैं (१) शरीर (२) मन (३) आत्मा। इनमें एक से बढ कर एक सूक्ष्म होता है। पंचभूतात्मक स्थूल शरीर को व्यथा पहुंचा सकते हैं, सूक्ष्म मन को नहीं। ऐसी हालत में सूक्ष्मातिसूक्ष्म आत्मा को कैसे व्यथा पहुंचा सकेंगे ?

परमार्थ की दृष्टि से देखें तो स्थूल और सूक्ष्म शरीर दोनों आत्मा में रज्जु सर्प भ्रांति की तरह कल्पित या आरोपित होते हैं। मृगतृष्णा का जल ऊपर क्षेत्र को गला नहीं सकता। आत्मा के उस स्वभाव का मनन किया जाय तो जीव को अपरिमित धैर्यप्राप्त होगा।

सम्बन्ध - भगवान आत्मा के अविनाशीतत्व का फिर से प्रतिपादन करते हैं।

२४. *अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।*
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

शब्दार्थ - अयम् = यह आत्मा। अच्छेद्यः = छेदा नहीं जा सकता। अयम् = यह आत्मा। अदाहयः = जलाया नहीं जा सकता। अक्लेद्यः = गला नहीं जा सकता। अशोष्यः एवच = सुखाया भी नहीं जा सकता। अयम् = यह आत्मा। नित्यः = नित्य है। सर्वगतः = सर्वत्र व्याप्त है। स्थाणुः = स्थिर है। अचलः = अचल है। सनातनः = अनादि है।

भावार्थ - क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है, यह आत्मा अदाह्य, अक्लेद्य और निःसन्देह अशोष्य है तथा यह आत्मा नित्य, सर्वव्यापी, अचल, स्थिर रहनेवाला और सनातन है॥

व्याख्या - पंचभूत पांच भौतिक वस्तु को ही व्यथा पहुंचा सकते हैं। आत्मा पंचभूतात्मक नहीं है। इसलिए उनका प्रभाव कुछ भी आत्मा पर नहीं पडता।

"**नित्यः-सर्व गतः**" इन दो शब्दों के द्वारा स्पष्ट किया गया है कि आत्मा काल और देश के परे है। वह सभी कालों में स्थिर रहनेवाला है। सर्वगत है। संसार की हर चीज काल के वश में रहती है। ऐसी कोई चीज नहीं जो काल कवलित न होसके। ब्रह्मांड भी काल के गर्भ में विलीन होता है। ऐसा काल आत्मा के वश में है। आत्मा काल को निगलरहा है। समस्त चराचर जीवराशि में आत्मा विद्यमान है। यह सत्य जब जीव जानेगा तब पाप कार्य नहीं करेगा।

आत्मा सर्वत्र व्याप्त है। इसीलिए स्थाणु कहलाता है। सनातन माना जाता है। आत्मतत्व का विश्लेषण ही सनातन धर्म कहलाता है। इसीलिए आत्मतत्व के विश्लेषण के रूप में विलसित सनातन धर्म का आश्रय हर जीव को लेना चाहिए।

प्रश्न - आत्मा कैसा होता है ?

उत्तर - जिसका छेदन नहीं किया जा सकता, जिसका दहन नहीं किया जा सकता, जिसका गलन नहीं किया जा सकता, जो सुखाया नहीं जा सकता, जो

नित्य है, सर्वत्र व्याप्त है, निश्चल है, सनातन है वही आत्मा है।

सम्बन्ध - भगवान बतलाते हैं कि आत्मा को शाश्वत जान कर दुःख को दूर करना चाहिए।

२५. *अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।*
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

शब्दार्थ - अयम् = यह आत्मा। अव्यक्तः = इन्द्रियों के लिए अगोचर है। अयम् = यह आत्मा। अचिन्त्यः = मन के द्वारा अचिंत्य है। अयम् = यह आत्मा। अविकार्यः = विकार रहित है। उच्यते = कहा जाता है। तस्मात् = इसलिए। एनम् = इस आत्मा को। एवम् = इस प्रकार। विदित्वा =समझ कर अनुशोचितुं =दुःख करने। न अर्हसि = युक्त नहीं।

भावार्थ - यह आत्मा अव्यक्त है, यह आत्मा अचिन्त्य है और यह आत्मा विकाररहित कहा जाता है। इससे हे अर्जुन! इस आत्माको उपर्युक्त प्रकारसे जानकर तू शोक करनेके योग्य नहीं है। अर्थात तुझे शोक करना उचित नहीं है।

व्याख्या - यदि स्थूल पंच भूतात्मक पदार्थ होता तो आंखों को दिखाई देता। पर आत्मा वैसा नहीं है। अतः आंखों को दिखाई नहीं देता। यदि सूक्ष्म पंचभूतात्मक पदार्थ होता तो मन को ज्ञात होता। पर आत्मा वैसा नहीं है। अतः मन को ज्ञात नहीं होता। मन का विलय जब होता है तब बचनेवाला पदार्थ ही आत्मा है। मन को शुद्धबना कर उसे अधिष्ठान में विलीन कर दें तो बचनेवाला पदार्थ ही आत्मा है। मन के विलय से बचनेवाला पदार्थ मन को कैसे ज्ञात होगा ? इसीलिए आत्मा अचिंत्य कहा गया है। संसार के सभी दिखाई पडनेवाले पदार्थ जनन,मरण आदि छःविकारों के वश में होते हैं। आत्मा वैसा दिखाई देनेवाला पदार्थ नहीं है। वह कार्य नहीं है। सभी कारणों का कारण है। अतः उसमें विकार नहीं होता।

"**तस्मादेवं विदित्वैनं नानु शोचितुमर्हसि**" - अपने स्वरूप के ज्ञान का न होना ही शोक का मूल कारण है। अपने को शरीर एवं मन समझ कर

उनसे जब जीव तादात्म्य स्थापित करता है तब दुःख तुरन्त उसे घेर लेता है। परन्तु जब जीव समझ जाएगा कि वह देह नहीं है, मन नहीं है, केवल निर्विकार आत्मा है तब दुःखों से मुक्त होगा। वह ज्ञान सद्गुरुओं एवं सच्छास्त्रों के द्वारा ही उसे प्राप्त हो सकता है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण यहाँ अर्जुन को संदेश देते हैं कि तुम आत्मज्ञानी बनो। दुःखरहित बनो।

यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संसार सागर में गिर कर तडप रहे जीवों के तपन एवं दुःखों के शमन का एक मात्र उपाय आत्म ज्ञान प्राप्त करना ही है। (अपने स्वरूप का परिचय)। इसलिए आत्मा का ही अन्वेषण सब को करना चाहिए। आत्मज्ञान ही जीव को पार पहँचानेवाला अमोघ साधन है।

प्रश्न - आत्मा के लक्षणों का विवरण दो ?

उत्तर - वह (१) इन्द्रियों के लिए अगोचर है। (२) मन के चिंतन से परे है। (३) निर्विकार है।

प्रश्न - शोक के निवारण का उपाय क्या है ?

उत्तर - आत्मा के ज्ञान के साथ आत्मानुभूति की सिद्धि ही शोक निवारण का उपाय है।

सम्बन्ध- भगवान बतलाते हैं कि जीव दृष्टि से विचार करने पर भी आत्मा के बारे में शोक करना ठीक नहीं है।

२६. *अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।*
तथापि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि॥

शब्दार्थ - महाबाहो = हे अर्जुन ! अथच = यदि। एनम् = इस आत्मा को। नित्य जातमवा = सदा जन्मयुक्त। नित्यम् = सदा। मृतम् = मरण युक्त। मन्यसे = समझोगे। तथापि = तो भी। एवम् = इस तरह। शोचितुम् = दुःख करने। त्वम् = तुम। न अर्हसि = योग्य नीं हो।

भावार्थ - किंतु यदि तू इस आत्मा को सदा जन्मनेवाला तथा सदा मरनेवाला मानता हो, तो भी हे महाबाहो ! तू इस प्रकार शोक करने के योग्य नहीं है॥

व्याख्या - "महाबाहो" - हे अर्जुन! तुम बडे बाहुबली (भौतिक बल ...) हो। पर बाहुबल काफी नहीं है। आध्यात्मिक बल भी आवश्यक है। उस... अभाव के कारण ही तुम शोक कररहे हो। तुम्हारा बाहुबल तुम्हारी मानसिक ...था को दूर नहीं कर पारहा है। अतः बाहुबल के साथ आत्म शक्ति भी प्राप्त ...। यही बताने के लिए '**महाबाहो**' शब्द का प्रयोग किया गया है।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को सांत्वना देने के लिए आत्मा ...स्तर से नीचे उतर कर सामान्य जनों के अनुसार तात्कालिक रूप से जी... दृष्टि पर प्रकाश डाल कर स्पष्ट करते हैं कि उस दृष्टि से भी दुःख के लिए गुंजाइश नहीं है।

'अथच' - 'यदि' का प्रयोग करने से स्पष्ट होता है कि यह सिद्धांतीकरण नहीं है। सामान्य लोगों को दृष्टिमें रख कर कहा गया विषय है। सारांश यह कि यदि मान लें कि आत्मा शरीर के साथ जन्म लेता है और मरण पाता है तो भी जब शोक के लिए गुंजाइश नहीं है, तो वास्तव में जो पैदा नहीं होता और नहीं मरता उसके बारे में शोक करने की आवश्यकता नहीं है।

सम्बन्ध - भगवान और स्पष्ट करते हैं।

२७. *जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।*
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

शब्दार्थ - जातस्य = पैदा होनेवाले को। मृत्युः = मृत्यु। ध्रुवोहि = निश्चित है न? मृतस्य = मरनेवाले को। जन्मच = जन्म। ध्रुवं = निश्चित है। तस्मात् = इस कारण से। अपरिहार्ये = अपरिहार्य। अर्थे = विषय पर। त्वम् = तुम। शोचितुम = दुःख करने को। न अर्हसि = योग्य नहीं हो।

भावार्थ - क्योंकि इस मान्यताके अनुसार जन्मे हुएकी मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इससे भी इस बिना उपायवाले विषयमें तू शो... करनेको योग्य नहीं है ॥

व्याख्या - यह भी ऊपर उल्लिखित भाव का ही स्पष्टीकरण है। वास्तव में आत्मा का जन्म नहीं होता, आत्मा का मरण नहीं होता।

"**अपरिहार्येऽर्थे**" - जब तक आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक जनन मरण अपरिहार्य हैं। आत्मज्ञान की प्राप्ति के बाद संसार चक्र का परिभ्रमण स्थगित हो जाता है। तब जनन मरण परिहार्य ही हैं। इसलिए सामान्य जनों के लिए भगवानने ऐसा कहा है। नहीं तो 'न जायते म्रियते वा कदाचित ...' आदि श्लोकों एवं उनमें उल्लिखित परमसत्य को आघात लगेगा। यहाँ पर भगवान सामान्य लोगों की दृष्टि से विचार कर कहते हैं कि उस स्तर पर ही जब जीव शोक नहीं करता तो आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद फिर बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है।

सम्बन्ध - भगवान बतलाते हैं कि प्राणियों के शरीरों के लिए शोक नहीं करना चाहिए।

२८. अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

शब्दार्थ - भारत = हे अर्जुन ! भूतानि = प्राणी। (प्राणियों के शरीर) अव्यक्तादीनि = आरंभ में (जन्म के पूर्व) आखों को दिखाई न देनेवाला सूक्ष्म रूप। व्यक्त मध्यानि = प्रकट होने के बाद बीच में दिखाई देनेवाला रूप। अव्यक्त निधनान्येन = मरण के बाद दिखाई न पडनेवाला। भवन्ति = होरहे हैं। तत्र = उस विषय पर। परिदेवना = दुःख। का = क्यों ?

भावार्थ - हे अर्जुन ! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं ; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है ?

व्याख्या - पैदा होने के पहले इस देह से प्राणियों का संबंध नहीं है। मृत्यु के बाद भी नहीं है। बीच में ही संबंध रहता है। आदि अंत में न हो कर मध्य काल में जो संबंध दिखाई देता है वह मिथ्या है। श्री शंकराचार्य ने कहा है -

यन्नादौ यच्चनास्त्यन्ते तन्मध्ये भातमप्यसत्
अतो मिथ्या जगत्सर्वमिति वेदान्त डिण्डिमः॥

यह भ्रांति ही है। स्वप्न नींद के पहले नहीं आते। नींद के बाद भी नहीं आते। मगर बीच में आते हैं। ऐसी हालत में वह मिथ्या ही है। इसी तरह आदि दृश्य पदार्थों की भी बात है। अतः भगवान बतलाते हैं कि इस मृग... के पीछे मत पडो।

भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो कुछ समझाया उसका विवरण में निम्न प्रकार है।

१. आत्मा शाश्वत है। ये बन्धु बान्धव आत्म स्वरूप हैं। अतः उ... दुःख मत करो।
२. आत्मा निर्विकार है। फटे पुराने कपडों की तरह आत्मा जीर्ण ... छोड कर नये शरीर प्राप्त करता है। अतः इसके लिए दुःख मत करो।
३. यदि माना जाय कि आत्मा जन्म लेता है और मरता है तो निश्चित ... मरता है वह फिर जन्म लेता है। अतः इसके लिए दुःख मत करो।
४. ये शरीर के अंग जन्म के पहले नहीं हैं, मरने के बाद नहीं रहेंगे। ... थोडी देर दिखाई देते हैं। इसलिए वे भ्रांतिमात्र हैं। अतः इनके लिए दुःख मत करो।

सम्बन्ध - आत्मतत्त्व अत्यन्त दुर्बोध होने के कारण उसे समझाने के लिए भगवान् ने उसके स्वरूप का वर्णन किया, अब उस आत्मतत्त्व के दर्शन, वर्णन और श्रवण की अलौकिकता और दुर्लभता का निरूपण करते हैं -

२९. आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

शब्दार्थ - कश्चित् = कोई एक व्यक्ति। एनम् = इस आत्मा को। आश्चर्यवत् = आश्चर्यजनक पदार्थ की तरह। पश्यति = देखता है। तथैव = वैसे ही। अन्यः च = और एक। आश्चर्यवत् = आश्चर्यजनक पदार्थ की तरह। एनम = इस आत्मा को। वदति = बताता है। अन्यः च = और एक। एनम् = इस आत्मा को। आश्चर्यवत् = आश्चर्यजनक पदार्थ की तरह। शृणोति = सुनता है। श्रुत्वापि

सुन कर भी। एनम् = इस आत्मा को। कश्चित् च = कोई भी। वेद न एव = जानता ही नहीं।

भावार्थ - कोई एक महापुरुष इस आत्मा को आश्चर्य की भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई इसके तत्त्व का आश्चर्य की भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई इसे आश्चर्य की भाँति सुनता है और कोई भी इसको नहीं जानता।

व्याख्या - आध्यात्म विद्या मौखिक वर्णनों से समाप्त नहीं होती। वह आचरण मूलक है। अनुभूति के द्वारा ही आध्यात्मिक विद्या ज्ञात होती है। इसके लिए बहु जन्मार्जित पुण्य का प्रताप, चित्त की निर्मलता एवं वासनाराहित्य आवश्यक हैं। जो चार साधनाओं के अनुष्ठान में दक्ष है वही ब्रह्मज्ञान में प्रवेश कर सकता है। बाकी लोग यद्यपि इसे जानने का प्रयत्न करते हैं परन्तु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिलती। जिसका हृदय सत्वगुण से आवृत होता है, रज और तमो गुणों के प्रभाव से दूर रहता है, परिशुद्ध रहता है, उस हृदय को निर्मल दर्पण में स्पष्ट दिखाई पडनेवाले प्रतिबिंब की तरह, धुले कपडे में चढनेवाले रंग की तरह, नरम गीली मिट्टी में उपजनेवाले बीज की तरह ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। भगवान बतलाते हैं कि ऐसे शुद्ध चित्तवाले संसार में बहुत कम हैं, इसीलिए आत्मानुभूति पानेवाले भी बहुत कम हैं।

इसी श्लोक से मिलता-जुलता कठोपनिषद् का मन्त्र इस प्रकार है -

श्रवणायपि बहुभियों न लभ्यः श्रुण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥

(१।२।७)

'जो (आत्मतत्त्व) बहुतों को सुनने के लिए भी नहीं मिलता और बहुत-से सुननेवाले भी जिसे नहीं जान पाते, उस आत्मा का वर्णन करनेवाला कोई आश्चर्यमय पुरुष ही होता है। उसे प्राप्त करनेवाला निपुण पुरुष भी कोई एक ही होता है तथा उसका ज्ञाता भी कोई कुशल आचार्यद्वारा उपदिष्ट आश्चर्यमय पुरुष ही होता है।'

आत्मा दृश्य पदार्थ नहीं है। श्रवण तथा वाक के परे है। वह इन्द्रियों से परे है। अति सूक्ष्म है। हृदय की गुफा में छिपा है। इसकी अनुभूति प्राप्त करने केलिए निष्काम कर्म, भक्ति, वैराग्य एवं ध्यान आदि सद्गुणों द्वारा हृदय को निर्मल बनाकर आत्म विचार करने की आवश्यकता है। 'वेदनचैव कश्चित्' का अर्थ कोई नहीं जानता नहीं है। इसका अर्थ है जाननेवालें कम हैं। आत्मा विलक्षण है। इसीलिए सब उसे आश्चर्य से देखते हैं।

इस श्लोक का और एक अर्थ भी बताया जा सकता है। वह इस प्रकार है - आत्मा को देखनेवाला, सुननेवाला, बतलानेवाला (आत्मानुभूति पानेवाला) संसार में अत्याश्चर्यजनक है। ऐसा व्यक्ति दुर्लभ है।

सम्बन्ध - इस प्रकार आत्मतत्त्व के दर्शन, वर्णन की अलौकिकता और दुर्लभता का प्रतिपादन करके अब, 'आत्मा नित्य ही अवध्य है, अतः किसी भी प्राणी केलिए शोक करना उचित नहीं हैं - यह बतलाते हुए भगवान् सांख्ययोग के प्रकरण का उपसंहार करते हैं -

३०. देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि॥

शब्दार्थ - भारत = हे अर्जुन। सर्वस्य = समस्त प्राणियों की। देहे = देह में। अयं देही = यह आत्मा। नित्यम् = सदा। अवध्यः = मारा न जानेवाला है। तस्मात् = इसलिए। सर्वाणि = समस्त। भूतानि = प्राणियों के बारे में। त्वम् = तुम। शोचितुम् = दुःख करने को। न अर्हसि = योग्य नहीं हो।

भावार्थ - हे अर्जुन! यह आत्मा सबके शरीरों में सदा ही अवध्य है। इस कारण सम्पूर्ण प्राणियों केलिए तू शोक करने को योग्य नहीं है।

व्याख्या - देह का म रण हो सकता है, पर देह के अन्दर बसनेवाले आत्मा का नहीं। आत्मा के लिए 'देही' कहा गया है। इसलिए आत्मा देह में ही बस कर देह का साक्षी बना हुआ है।

'नित्यं' कहा गया है। इससे ज्ञात होता है कि यह सत्य किसी एक

काल के लिए सीमित नहीं है। आत्मा सदा अवध्य ही है।

इस श्लोक में **'सर्व'** शब्द का प्रयोग दो बार किया गया है जैसे - सर्वस्य तथा सर्वाणि भूतानि। इससे स्पष्ट है कि समस्त प्राणियों की देह में, चाहे वह स्त्री की हो या पुरुष की, चाहे किसी भी धर्म वाले की हो या जातवाले की, चाहे पशु की हो या पक्षी की, आत्मा वास करता है। सब में समान रूप से वह व्यवहार करता है। साधारणतया लोग जब देह का मरण होता है, या रोग ग्रस्त या वेदना ग्रस्त होती है तब समझते हैं कि हमीं मररहे हैं। हमी रोगग्रस्त हैं या हमीं को वेदना होरही है। इससे दुःखी होते हैं। भगवान बतलाते हैं कि ऐसा समझना तथा दुःखी होना ठीक नहीं। देह को तकलीफ हो सकती है,पर आत्मा को नहीं। देह का मरण हो सकता है, पर आत्मा का नहीं। यह क्रम चराचर सब प्राणियों की देह के लिए समान रूप से वर्तित होता है। इसलिए शोक करने की आवश्यकता ही नहीं है। अतः शोक राहित्य का एक ही उपाय है, अपने को देह न समझना। अपने को देह का शाश्वत समझने से दुःख होता है। आत्मा समझने से दुःख दूर होता है। अतः ज्ञानी व्यक्ति को हमेशा समझना चाहिए कि मैं देह नहीं हूँ, आत्मा हूँ। 'भारत'- 'भा' का अर्थ है 'प्रकाश'। रतः का अर्थ है आसक्त। भारत शब्द का प्रयोग कर भगवानने अर्जुन को शायद सचेत किया है कि हे अर्जुन! तुम ऐसे आत्मज्ञान के प्रकाश में सदा रत रहो। देहाभिमान के तम में मत डूबो।

प्रश्न - देह एवं देही (आत्मा) का विवरण दो!

उत्तर - देह का वध होता है। देह का नाश होता है। परन्तु देही आत्मा का वध नहीं होता। नाश नहीं होता।

प्रश्न - शोक के दूर होने का उपाय क्या है ?

उत्तर - देह के साथ तादात्म्य की भावना स्थापित नहीं करनी चाहिए। अपने को आत्मा समझना चाहिए। इससे शोक दूर हो जाएगा।

सम्बन्ध - यहाँ तक भगवान् ने सांख्ययोगके अनुसार अनेक युक्तियोंद्वारा नित्य,

शुद्ध, बुद्ध, सम, निर्विकार और अकर्ता आत्माके एकत्व, नित्यत्व, अविनाशित्व,आदिका प्रतिपादन करके तथा शरीरोंको विनाशशील बतलाकर आत्माके या शरीरोंके लिये अथवा शरीर और आत्माके वियोगके लिये शोक करना अनुचित सिद्ध किया। साथ ही प्रसङ्गवश आत्माको जन्मने-मरनेवाला माननेपर भी शोक करनेके अनौचित्यका प्रतिपादन किया और अर्जुनको युद्ध करनेके लिये आज्ञा दी। अब सात श्लोकोंद्वारा क्षात्रधर्मके अनुसार शोक करना अनुचित सिद्ध करते हुए अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हैं -

३१. स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥

शब्दार्थ - च = और। स्वधर्मम् = स्वकीय (क्षत्रिय) धर्म को। आवेक्ष्य अपि = देख कर भी। विकम्पितुम् = विचलित होने को। न अर्हसि = योग्य नहीं हो। क्षत्रियस्य =क्षत्रिय के लिये। धर्मात् =धर्मयुक्त। युद्धात् =युद्ध से। अन्यत् = अन्य। श्रेयः = श्रेय। न विद्यते हि = नहीं है न ?

भावार्थ - हे अर्जुन ! अपने धर्मको देखकर भी तू भय करनेयोग्य नहीं है यानी तुझे भय नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्षत्रियके लिये धर्मयुक्त युद्धसे बढ़कर दूसरा कोई कल्याणकारी कर्तव्य नहीं है॥

व्याख्या - इस श्लोक से ज्ञात होता है कि कर्तव्य के निर्वहण, स्वधर्म के आचरण और धर्म बद्ध कार्यो के प्रति भगवान श्रीकृष्ण की कितनी बडी आस्था है जब तक शरीर रहेगा तब तक हर व्यक्तिको कोई न कोई कर्म करना ही पडता है। ऐसी हालत में स्वधर्म के कार्य निष्काम भावना से करें तो मनुष्य को उत्तम श्रेय ही प्राप्त नहीं होता, अपितु चित्त की शुद्धि के द्वारा मोक्ष भी प्राप्त होता है। यहाँ '**धर्म्यात्**' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि क्षत्रिय को धर्मयुद्ध का ही आश्रय लेना चाहिए , न कि अधर्मयुद्ध का।

३२. यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्॥

शब्दार्थ - पार्थ = हे अर्जुन ! यदृच्छया = अपने आप, उपपन्नम् = **संप्राप्त**। अपावृतम् = खोला गया। स्वर्गद्वारम् च = स्वर्गद्वगर जैसा। ई दृशम = ऐसे। युद्धम् = युद्ध को। क्षत्रियाः = जो क्षत्रिय। लभन्तें = पाते हैं। (ते = वे) सुखिनः = सुखी हैं।

भावार्थ - हे पार्थ ! अपने-आप प्राप्त हुए और खुले हुए स्वर्गके द्वाररूप इस प्रकारके युद्धको भाग्यवान् क्षत्रियलोग ही पाते हैं।

व्याख्या - 'पार्थ = अर्जुन ! श्रीकृष्ण पार्थ शब्द से संबोधित कर (लगता है कि) अर्जुन को उनकी माँ पृथा (कुन्ती) के क्षात्र धर्म के निर्वाह का स्मरण करारहे हैं। युद्ध के पूर्व देवी कुन्ती हस्तिनापुर से श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन को सन्देश भेजा था कि "क्षत्राणी माँ जिसके निमित्त पुत्र को जन्म देती है वह संदर्भ अब आ गया है।"

एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ॥

(महाभारत उद्योग १३७।९-१०)

बाह्य युद्ध क्षत्रियों के लिए है। परन्तु अंतर्युद्ध (काम, क्रोध, राग, द्वेष तथा दुष्ट वासनाओं से संग्राम) हर व्यक्ति के लिए है। बाह्य युद्ध धर्मबद्ध होकर करें तो स्वर्ग मिलता है। अंतर्युद्ध में जीतनेवालोंको मोक्ष प्राप्त होता है। सच्चे क्षत्रिय युद्ध की प्रतीक्षा में रहते हैं। वैसे ही सच्चे मुमुक्षु माया और अज्ञान से युद्ध करने की प्रतीक्षा में रहते हैं।

३३. *अथ चेत्वमिमंधर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।*
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥

शब्दार्थ - अथ = अब। त्वम् = तुम। इमम् = यह। धर्म्यम् = धर्मयुक्त। संग्रामम् = संग्राम। न करिष्यसि चेत् = न करोगे तो। ततः = उससे। स्वधर्मम् = अपने धर्म को। कीर्तिं च = कीर्ति को। हित्वा = छोड कर। पापम् = पाप को। अवाप्स्यसि = पाओगे।

भावार्थ - यदि तू इस धर्मयुक्त युद्ध को नहीं करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा।-

३४. *अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्।*
सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥

शब्दार्थ - अपि च = और (इसके अलावा)। भूतानि = प्राणि। ते = तुम्हारे। अव्ययाम = चिरकाल तक न धुलनेवाली। अकीर्तिम् = अपकीर्ति को। कथयिष्यन्ति = कहते रहेंगे। संभावितव्य = मान पानेवाले के लिए। अकीर्तिः = अपकीर्ति। मरणात् च = मरण से भी। अतिरिच्यते = अधिक होती है।

भावार्थ - सब लोग तेरी बहुत काल तक रहनेवाली अपकीर्ति का कथन करेंगे। माननीय पुरुष के लिए अपकीर्ति मरण से भी बढ कर है।

व्याख्या - जो काम न करना चाहिए उसे लोग न करें और जो काम करना चाहिए उसे लोग न करें तो संसार में अपयश व्याप्त होगा। भगवान श्रीकृष्ण सचेत करते हैं कि धर्मयुद्ध न करें तो अर्जुन अपयश के भाजन बनेंगे। माननीय व्यक्ति के लिए अपयश मृत्यु से भी बढ कर व्यथा पहुंचाता है। क्योंकि मृत्यु केवल शरीर को व्यथा पहुँचाती है, परंतु अपयश कई पीढियों तक व्यथा पहुँचाता है।

अंतरार्थ - जीव आत्म स्वरूप है। माननीय व्यक्ति है। इन्द्रियों एवं मन के वह अगर वश में हो जाय तो अपयश का पात्र बनेगा। इसलिए माया और इन्द्रियों को जीत कर आत्मस्मृति प्राप्त कर अपयश से अपनी रक्षा करनी चाहिए।

३५. *भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः।*
येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥

शब्दार्थ - च = फिर। एषाम = जिनमें। त्वम् = तुम। यास्यसि = पा ओगे। (ते = वैसे) महारथाः = महारथी। त्वाम् = तुम्हें। रणात् = युद्ध से। भयात् = भय से। उपरतम् = लौटनेवाले की भांति। मंस्यन्ते = समझते हैं।

भावार्थ - और जिनकी दृष्टिमें तू पहले बहुत सम्मानित होकर अब लघुताको

प्राप्त होगा, वे महारथीलोग तुझे भयके कारण युद्धसे हटा हुआ मानेंगे ॥

३६. *अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिता: ।*
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दु:खतरं नु किम् ॥

शब्दार्थ - तव = तुम्हारे । अहिताः = शतृ । तव = तुम्हारे । सामर्थ्यम् = सामर्थ्य को । निन्दन्तः = निन्दा करते हुए । बहून् = बहुत से । अवाच्य वादांश्च = अवाच्य बातें भी । वदिष्यन्ति = कहेंगे । ततः = इससे । दुःखतरम् = दुःखदायी । किम नु = क्या है ?

भावार्थ - तेरे वैरीलोग तेरे सामर्थ्यकी निन्दा करते हुए तुझे बहुत-से न कहनेयोग्य वचन भी कहेंगे; उससे अधिक दुःख और क्या होगा ?

सम्बन्ध - धर्मयुद्ध से होनेवाले इह पर लोक के श्रेयों को भगवान बतलाते हैं ।

३७. *हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।*
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चय: ॥

शब्दार्थ - कौन्तेय = हे अर्जुन ! हतो वा = तुम मारे जाओगे तो । स्वर्गम् = स्वर्ग । प्राप्स्यसे = पाओगे । जित्वा वा = जीतोगे तो । महीम् = राज्य को । भोक्ष्यसे = भोगोगे । तस्मात् = इसलिए । युद्धाय = युद्ध के लिए । कृत निश्चयः = निश्चय करके । उत्तिष्ठ = उठ खडे होओ ।

भावार्थ - या तो तू युद्धमें मारा जाकर स्वर्गको प्राप्त होगा अथवा संग्राममें जीतकर पृथ्वीका राज्य भोगेगा । इस कारण हे अर्जुन ! तू युद्धके लिये निश्चय करके खडा हो जा ।

व्याख्या - यह श्लोक मुमुक्षुओं के लिए प्राण जैसा मूल्यवान है । यह एक महामंत्र है । साधना करते समय निराशा, अधीरता एवं निरुत्साह हृदय में घर कर लें तो इस श्लोक का पठन बार बार करना चाहिए । इससे हृदय को धैर्य मिल जाएगा । क्यों कि कहा गया है कि धर्मयुद्ध में जिस प्रकार शूर वीर विजय पाकर राज्य प्राप्त करेगा, मरण पाकर स्वर्ग प्राप्त करेगा उसी प्रकार अविद्या से संग्राम करते हुए अगर साधक विजय पाएगा तो मोक्ष प्राप्त करेगा । मर जाएगा तो उत्तम

लोक प्राप्त करेगा। इसलिए दोनों प्रकार से श्रेय ही श्रेय है। आध्यात्मिक साधना पूरी होने के पहले ही यदि मुमुक्षु की मृत्यु हो जाय तो उसकी दुर्गति नहीं होगी। उत्तम लोक के सुख भोग कर फिर भूलोक में उत्तम वंश या योगियों के कुल में जन्म लेगा। उसने इसके पहले जो उत्तम साधना शुरू की उसे फिर से शुरू कर पूरा करेगा। यह बात भगवानने छठे अध्याय में कहा है। भगवान अर्जुन के द्वारा सारे संसार को बतलाते हैं कि मुमुक्षु को किसी भी हालत में अपनी साधना स्थगित नहीं करनी चाहिए।

''कृत निश्चयः'' - इससे स्पष्ट होता है कि साधना में सदा आगे बढना चाहिए। निश्चय करके अगर साधक आगे नहीं बढेगा तो माया उसे नीचे गिरा देगी। उसे सफल नहीं होने देगी।

''तस्मादुत्तिष्ठ'' भगवान अर्जुन को धीरज बन्धाकर कहते हैं कि उठो। आगे बढो। भवसागर में तैररहे प्राणिकोटि को इस प्रकार का उत्साह एवं प्रोत्साहन अत्यंत आवश्यक है। कठोपनिषद् में इससे मिलता जुलता एक मंत्र है -
''उत्तिष्ठित, जाग्रत, प्राप्यवरा न्नि बोधत'' इसका अर्थ है उठो, जागो, महनीयों के आश्रय में चल कर ज्ञान प्राप्त करो।

सम्बन्ध - भगवान बतलाते हैं कि किस तरह के कार्याचरण से प्राणी पाप से बचेगा।

३८. सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥

शब्दार्थ - सुख दुखे = सुख-दुःख को। लाभालाभौ = लाभ नष्टों को। जया जयौ = जय अपजयों को। समेकृता = समान मान कर। ततः = उसके बाद। युद्धाय = युद्ध के लिए। युज्यस्व = तैयार हो जाओ। एवम् = ऐसा करोगे तो। पापम् = पाप को। न अवाप्स्यसि = नहीं पा ओगे।

भावार्थ - जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं

प्राप्त होगा।

व्याख्या - इस श्लोक के द्वारा भगवान कर्म का रहस्य बताते हैं। पाप से दूर रह कर कर्म करने का विधान बताते हैं। वह समभाव है। सुख और दुःख के समय समबुद्धि से कर्म करना चाहिए। इससे पाप का स्पर्श नहीं होगा। सुख के समय खुश होकर घमंड नहीं करना चाहिए। दुःख के समय कुंठित शोक नहीं करना चाहिए। समभावनावाला चित्त पाप नहीं करेगा। गीताचार्य घोषित करते हैं कि मनुज समत्व बुद्धि से कर्म करेगा तो उसको पाप कभी नहीं लगेगा। साधकों को अच्छी तरह समझना चाहिए कि कर्मों में दोष नहीं है। लेकिन कर्म करने की पद्धति में दोष है। अतः साधकों को सावधान होकर समत्वबुद्धि से कर्म करना चाहिए।

"**ततो युद्धाय युज्यस्व**" कहा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि कर्म करने के पहले साधक को अच्छी तरह जानना चाहिए कि उस कर्म को करने की विधि क्या है ?

ततः = इसकेबाद युद्ध करने के लिए भगवानने कहा "कर्म करते समय समत्वबुद्धि की आदत डाल कर, उसका अभ्यास किये बगैर ही कर्मक्षेत्र में कदम रखें तो पतन सुनिश्चित है। कर्म के करने में चंचलता रहती है। इससे पाप लगेगा। इसलिए इससे बचने के लिए कर्म के साथ ज्ञान आवश्यक है।" यही वजह है कि भगवानने अर्जुन को पहले ज्ञान के बारे में समझा कर ही बाद को कर्म के बारे में बताया।

प्रश्न - कर्म कैसे करना चाहिए ?

उत्तर - सुख और दुःख में समत्वबुद्धि प्राप्त करने के बाद कर्म करना चाहिए।

प्रश्न - कर्म करते हुए पाप से दूर रहने का उपाय क्या है ?

उत्तर - सुख और दुःख में चित्त को समभावना पर स्थित करके कर्म करें तो पाप नहीं लगेगा।

सम्बन्ध - अब भगवान कर्मयोग का बोध कराते हैं।

३९. *एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धियोंगे त्विमां श्रुणु।*
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥

शब्दार्थ - पार्थ = हे अर्जुन ! सांख्ये = आत्मतत्व के विषय में। एषा = प्रतिपादित यह। बुद्धिः = ज्ञान। ते = तुमको। अभिहिता = बताया गया। यया बुध्या = किस तरह विवेक से। युक्तः = युक्त होकर। कर्म बन्धम् = कर्म बन्धन को। प्रहास्यसि = छोड सकोगे। (ताम = उसे) यो गेतु = कर्मयोग विषयक। इमाम = निश्चय को। श्रुणु = सुनो।

भावार्थ - हे पार्थ ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोगके विषयमें सुन-इस बुद्धि से युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धन को भली-भाँति त्याग देगा यानी सर्बथा नष्ट कर डालेगा।

व्याख्या - व्यक्ति चाहे कि कर्म करने पर भी बंधित न होवे, तो समझ लेना चाहिए कि वह कर्म किस तरह करना चाहिए ? उस समझ या विवेक को ही 'बुद्धि' कहा गया है। ऐसी बुद्धि से जीव कर्म करेगा तो कर्म के बंधन में नहीं बंधेगा। जो कर्म बन्धन में डालता है, वह उस समय मोक्ष का कारण बन जाएगा। इसलिए भगवान जिस बुद्धि के एवं कर्मयोग के रहस्य के बारे में समझाना चाहते हैं उसे हर व्यक्ति को अच्छी तरह जान लेना चाहिए। उसे हृदयंगम कर बंधन से मुक्त होना चाहिए।

सम्बन्ध - इस प्रकार कर्मयोगके वर्णनकी प्रस्तावना करके अब उसका रहस्यपूर्ण महत्त्व बतलाते हैं-

४०. *नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।*
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

शब्दार्थ - इह = इस कर्मयोग में। अभिक्रमनाशः = प्रारंभ करने पर निष्फल होना। न अस्ति = नहीं है। प्रत्यवायः = दोष भी। न विद्यते = नहीं है। अस्य धर्मस्य = कर्मयोग रूपी धर्म का। स्वल्पमपि = थोडासा भी। महतः = महान्। भयात् = भय से। त्रायते = रक्षा करता है।

भावार्थ - इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोडा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर लेता है ॥

व्याख्या - बुद्धि (विवेक) से युक्त यह कर्मयोग अर्थात् निष्काम कर्मयोग (आध्यात्मिक साधना) का आरंभ करना व्यर्थ नहीं हो सकता। वह अवश्य सत्फल देगा। किसी कारण वश बीच में स्थगित हो जाय तो भी दोष नहीं। जमीन में बीज बोने के बाद अंत तक जल आदिसे उसका पोषण करना चाहिए। तभी फल मिलेगा। बीच में जल देना बन्द करें तो पौधा सूख जाएगा। फल नहीं मिलेगा। निष्कामयोग वैसा नहीं है। जितना प्रयास करेंगे उतना ही फल मिलेगा। इससे नुकसान नहीं होगा।

"त्रायते महतो भयात्" कहने से स्पष्ट है कि विवेक से युक्त यह कर्माचरण या निष्कामयोग थोडा सा किया जाय तो भी महाभय से मुक्त कराएगा। संसार में मरण का भय सब से बडा है। जनन मरण रूपी सांसारिक भय को निष्काम कर्मानुष्ठान दूर करदेता है।

एक छोटी सी चिनगारी भी कंटकों से भरे घने जंगल को भस्म करदेती है। छोटी सी नाव भी विशाल सागर के उस पार पहुँचाती है। निष्कामकर्मयोग छोटा होने पर भी संसार की विपत्तियों से जीव को बचाता है। पूर्ण फल प्राप्त न होने पर भी साधना को छोडना नहीं चाहिए। इससे फल अवश्य मिलेगा। भगवानने बताया है कि कर्मयोग रूपी धर्म देखने में छोटा है तो भी संसार की विपत्तियों से वह जीव की रक्षा करेगा। भगवान के इस कथन से प्राणियों को आश्वासन मिलता है। अकसर लोग कहते हैं कि हम कमजोर हैं। हम से कठोर तपस्या नहीं हो सकती। ऐसे लोगों को भगवान का यह आश्वासन स्फूर्ति पहुँचाता है। विश्वास के साथ निष्काम कर्म योग की साधना साधक करते रहें तो निश्चित रूप से वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न - निष्कामकर्म रूपी धर्म की विशेषता पर प्रकाश डालो।

उत्तर - (१) आरंभ करने पर वह कभी निष्फल नहीं होगा। (२) थोडे आचरण के बाद उसे स्थगित करें तो भी नुकसान नहीं होगा। (३) थोडा आचरण भी भवभय को दूर करेगा।

प्रश्न - भव के भय से छूटने का उपाय क्या है ?

उत्तर - विवेकयुक्त कर्माचारण ही (निष्काम कर्म का अनुष्ठान) इसका उपाय है।

सम्बन्ध - अब भगवान बतलाते हैं कि उत्तम कर्मयोगी के स्थिर चित्त एवं भोगासक्त चंचल चित्त में अन्तर क्या है ?

४१. व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

शब्दार्थ - कुरुनन्दन = हे अर्जुन। इह = इस कर्मयोग के अनुष्ठान में। व्यवसायात्मिका = निश्चयात्मिकतावाली। बुद्धि: = बुद्धि। एका = एक ही। अव्यवसायिनाम = निश्चय न कर सकनेवालों की। बुद्धय: = बुद्धियाँ। बहुशाखा = बहुत भेदोंवाली। अनन्ताश्चहि = अनंत होती हैं।

भावार्थ - हे अर्जुन ! इस कर्मयोग में निश्चयात्मिका बुद्धि एक ही होती है। किन्तु अस्थिर विचारवाले विवेकहीन सकाम मनुष्यों की बुद्धियाँ निश्चय ही बहुत भेदोंवाली और अनन्त होती हैं।

व्याख्या - ईश्वर पर निश्चयात्मक बुद्धि स्थिर रहती है। ईश्वर को छोड कर किसी अन्य को वह नहीं चाहती। वह शाखाओं और उपशाखाओं में व्याप्त नहीं होती। ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि जिनकी होती है उनका हर काम एवं हर भाव ईश्वरोन्मुखी होता है। फल की अपेक्षा वे नहीं करते। हर काम ईश्वर को अर्पित कर वे करते हैं। जिनकी बुद्धि ऐसी नहीं होती वे सांसारिक सुख भोग को दृष्टि में रख कर कर्म करते हैं। फल स्वरूप उनका मन भी चंचल रहता है। कर्मकांड के चक्कर में वे पड जाते हैं। उनकी बुद्धि में निश्चयात्मिकता नहीं होती। विभिन्न सूर्य किरणें सूर्यमुखी दर्पण में एकोन्मुखी होती हैं तो उस प्रकाश की तेजी से नीचे का कागज जल जाता है। वे किरणें बिखर जाती हैं तो वह शक्ति उनमें नहीं रहती।

इसी प्रकार निश्चयात्मक एकाग्रता से बुद्धि में अखंडशक्ति जमा होती है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह निश्चयात्मक बुद्धि से ईश्वर के प्रति उन्मुख हो और बहु शाखाओं वाली अनिश्चयात्मक बुद्धि छोड दे।

सम्बन्ध - भगवान अनिश्चयात्मक बुद्धिवालों के स्वभाव का वर्णन करते हैं।

४२. *यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चित:।*
वेदवादरता: पार्थ नान्यदस्तीति वादिन:॥

४३. *कामात्मान: स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।*
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥

४४. *भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।*
व्यवसायात्मिका बुद्धि: समाधौ न विधीयते॥

शब्दार्थ - पार्थ = हे अर्जुन। वेदवादरता: = वेदों के फलों के प्रति प्रीति रखनेवाले। नान्यदस्तीति वादिन: = ऐसा कहनेवाले कि स्वर्ग से बढ कर दूसरी कोई वस्तु नहीं। कामात्मान: = कामनाओं से भरे मनवाले। स्वर्गपरा: = स्वर्ग के प्रति आसक्ति रखनेवाले। अविपश्चित: = अविवेकी। जन्म कर्म फल प्रदाम = जन्म, कर्म और उसका फल देनेवाला। भोगैश्वर्य गतिं प्रति = भोग भाग्य को प्राप्त करनेके लिए। क्रिया विशेष बहुलां = विविध कर्म कलापों से युक्त। पुष्पिताम = फलरहित देखने में पुष्पों की तरह रम्य दीखनेवाले। याम इमाम = कोई यह। वाचम् = वाक्य को। प्रवदन्ति = विशेषरूप से कह रहे हैं। तया = उससे। अपहृत = अपहरित। चेतसाम् = मनवाले। भोगैश्वर्य प्रसक्तानाम = भोग भाग्य में अधिक आसक्तों को। व्यवसायात्मिका बुद्धि: = निश्चयात्मक बुद्धि। समधौ = ईश्वर ध्यान में। न विधीयते = नहीं हो सकती।

भावार्थ - हे अर्जुन! जो भोगों में तन्मय हो रहे हैं, जो कर्मफलके प्रशंसक वेदवाक्यों में प्रीति रखते हैं, जिनकी बुद्धि में स्वर्ग ही परम प्राप्य वस्तु है और जो स्वर्ग से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु ही नहीं है - ऐसा कहनेवाले हैं - वे

अविवेकी जन इस प्रकार की जिस पुष्पित यानी दिखाऊ शोभायुक्त वाणी को कहा करते हैं जो कि जन्मरूप कर्मफल देनेवाली एवं भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये नाना प्रकार की बहुत-सी क्रियाओं का वर्णन करनेवाली है, उस वाणी द्वारा जिनका चित्त हर लिया गया है, जो भोग और ऐश्वर्य में अत्यन्त आसक्त हैं, उन पुरुषों की परमात्मा में निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती।। ४२-४३-४४।।

व्याख्या - ''पुष्पितां वाचम्'' फल रहित वाक्य - फल रहित पुष्पों के पौधों जैसे। पलास, गेंदा आदि बाहर से सुंदर दीखते हैं मगर अन्दर से सत्ता विहीन हैं। भाव है, मोक्ष रूपी फल न देनेवाले कर्म आदि।

'प्रवदन्ति' - यहाँ वदन्ति न कह कर प्रवदन्ति कहा गया है। मतलब है कि ऐसे लोग निस्सार बातें बहुत करते हैं।

'अविपश्चितः' - अविवेकी, अल्पज्ञ - काम्यकर्म करनेवाले, मूर्ख कहे गये हैं। ऐसे लोगों को भगवान बुद्धिमानों की सूची में नहीं जोडते। इसलिए वह चाहे महापंडित हो, या तत्त्वविद्, अगर वह काम्य बुद्धिवाला है, स्वर्ग आदि के भोगों पर आसक्त है तो परमार्थ की दृष्टि से वह बिल्कुल अविवेकी ही है। ऐसे लोगों को जगाने के लिए भगवान ये वाक्य कहते हैं। इन वाक्यों से स्पष्ट होता है कि स्वर्ग और वहाँ के भोगों के बारे में भगवान के विचार क्या हैं?

'वेदवादरताः' - वेदों में फलों को सूचित करनेवाले कुछ ऐसे अर्थवाद हैं जिनसे पता लगता है कि, ऐसा करने से वैसा फल मिलेगा। ऐसे फलों के पीछे कुछ पडते हैं। वेदों और वेदांतों में मोक्ष की प्राप्ति के कई विवरण हैं। उन सब को छोडकर उनमें से काम्यकर्म विभाग को पकड कर वे तर्क करते रहते हैं कि इसे छोड दूसरा कोई उपयोगी बोध नहीं है। वेदों के तीन विभाग हैं (१) कर्मकांड (२) उपासनाकांड (३) ज्ञानकांड। इस श्लोक में उल्लिखित अविवेकी कर्मकांड को, विशेष कर उसके स्वर्गादि भोगों के फल विभाग को स्वीकार करते हैं। बाकी दोनों विभागों को छोड देते हैं। गीताचार्य बतलाते हैं उनका यह विधान ठीक नहीं है।

"कामात्मान:" - ऐसे लोग जिनका स्वरूप कामनाओं से बनता है। दारेषणा, धनेषणा और पुत्रेषणा के साथ काम पिशाच को अपना हृदय देनेवाले इस श्रेणी में आते हैं। हृदय में भगवान को स्थान देना चाहिए, न कि काम आदि दुष्ट प्रवृत्तियों को। देवात्मा करुणात्मा एवं परमात्मा बनना चाहिए, न कि कामात्मा एवं क्रोधात्मा। "स्वर्गपरा:" ये मोक्षकामी नहीं स्वर्गकामी हैं। अध्यात्म क्षेत्र में स्वर्ग की प्रधानता नहीं होती। जो स्वर्ग आदि के सुख भी त्याग देगा उसी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए सामान्य लोगों की दृष्टि में स्वर्ग की प्रधानता हो सकती है, मगर ज्ञानियों की दृष्टि में नहीं। क्यों कि स्वर्ग भी एक लोक है। सृष्टि, स्थिति एवं लय स्वर्ग की भी होती हैं। परन्तु वहाँ की भौतिक चीजें कुछ बढिया हो सकती हैं। मगर उससे प्रयोजन क्या हैं ? वे शाश्वत नहीं हैं। पुण्य का क्षय हो जाय तो स्वर्ग से नीचे गिरना ही पडता है। इसलिए विषय वासनाओं को उद्दीप्त करनेवाले स्वर्ग के सुखों की प्राप्ति से परमार्थ कुछ नहीं मिलता। विज्ञ लोग उन्हें नहीं चाहते। भगवान श्रीकृष्ण ने भी स्वर्ग आदि के भोग भाग्य का खंडन किया है। अतः जो वैराग्य के आकांक्षी हैं और मोक्ष की प्राप्ति चाहते हैं वे कभी भी स्वर्गिक सुखों के पीछे नहीं पडते। पडना भी नहीं चाहिए।

"**जन्म कर्म फल प्रदाम्**" काम्यकर्म जन्मराहित्य के सहायक नहीं हो सकते। कर्म, जन्म और जन्म कर्म नाम सांसारिक चक्कर में वे मनुष्य को डाल देते हैं। इसीलिए भगवानने गीता में निष्काम कर्म का ही समर्थन किया है न कि काम्य कर्म का। अतः मुमुक्षुओं को काम्य कर्म के पीछे नहीं पडना चाहिए। "क्रिया विशेष बहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति" - स्वर्गादि के भोगों की कामना से यज्ञ याग आदि करके कर्म कांड के आदी बन जाते हैं। उनका प्रयत्न शाश्वत दैवी सुख के लिए नहीं होते, क्षणिक सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए होता है।

"**तथाऽपहृत चेतसाम्**" काम्यकर्म में आसक्त व्यक्ति लोगों को मीठी बातों से धोखादेते हैं। इसलिए ऐसे लोगों का सांगत्य छोडना चाहिए। साधु पुरुषों का सांगत्य करने से चित्त ईश्वरोन्मुख होता है।

"**व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते**" - भोग भाग्य की इच्छा करनेवालों का हृदय अस्थिर रहता है। उन्हें समाधि की स्थिति कभी प्राप्त नहीं होता। हवा चलती है तो दिया जिस प्रकार चंचल होता है उसी प्रकार ऐसे लोगों का चित्त भी चंचल होता है। अतः मोक्षकी प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक चिंतन आवश्यक है। इसके लिए ध्यान की निष्ठा जरूरी है। इसके लिए चित्त को विषय वासनाओं की ओर नहीं जाने देना चाहिए।

प्रश्न - भोग तथा ऐश्वर्य की चिंता से नुकसान क्या है ?

उत्तर - उनसे ईश्वर के ध्यान में मन लीन नहीं लगता।

सम्बन्ध - इस प्रकार भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त सकाम मनुष्योंमें निश्चयात्मिका बुद्धिके न होनेकी बात कहकर अब कर्मयोगका उपदेश देनेके उद्देश्यसे पहले भगवान् अर्जुनको उपर्युक्त भोग और ऐश्वर्यमें आसक्तिसे रहित होकर समभावसे सम्पन्न होनेके लिये कहते हैं-

४५. ***त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।***
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

शब्दार्थ - अर्जुन = हे अर्जुन। वेदाः = वेद। त्रैगुण्य विषयाः = त्रिगुणात्मक विषयों को बतलानेवाले हैं। निस्त्रैगुण्यः = त्रिगुणों को छोडनेवाले। निर्द्वन्द्वः = सुख दुख आदिद्वंद्वों से रहित। नित्य सत्वस्थः = निरंतर शुद्ध सत्व के आश्रित। निर्योग क्षेमः = योग क्षेम रहित। आत्मवान = आत्मज्ञानी, भव = बनो।

भावार्थ - हे अर्जुन ! वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; इसलिए तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित, नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित योगक्षेमको न चाहनेवाला और स्वाधीन अन्तःकरणवाला बन॥

व्याख्या - "त्रैगुण्य विषया वेदाः" संदर्भ के अनुसार स्पष्ट होता है कि कर्मकांड और यज्ञ याग आदि से संबंधित वेदभाग के बारे में ही यहाँ बताया गया है। वेद के उत्तरभाग में त्रिगुणातीत परब्रह्म के बारे में बताया गया है। दृश्य जगत्

त्रिगुणातीत है। वह सर्वोत्तम है। गुणों के वशवर्तियों के लिए ही ये बंधन हैं। बाधाएँ हैं। जन्म हैं। कर्म हैं। गुणों से परे आत्मा में स्थित ज्ञानी इन सब से मुक्त रहता है। इसीलिए भगवान ने अर्जुन को आदेश दिया कि तुम गुणातीत एवं आत्मवान बनो।

"नित्य सत्वस्थः" - यहाँ उल्लिखित सत्व त्रिगुणोंवाला सत्व नहीं है। एक ओर त्रिगुणों से परे रहने को कह कर दूसरी ओर एक गुण का आश्रय लेने के लिए कैसे कहेंगे ? अतः सत्व का अर्थ है विशुद्ध सत्व की स्थिति या आत्म स्थिति। श्री वसिष्ठ मुनीन्द्रने कहा कि "ज्ञ चित्तं सत्व मुच्यते" (आत्मज्ञानी का ब्रह्मज्ञानी चित्त ही सत्व है)

"नित्य सत्वस्थः" - कहा गया है। इसका मतलब है किसी एक समय में नहीं, निरंतर सत्व का आश्रय लेकर आत्मस्थित होकर रहें।

"निर्योग क्षेम आत्मवान" - योग का मतलब है जो वस्तु नहीं है उसे पाना और क्षेम है उसकी रक्षा करना। इन दोनों से दूर रहने को भगवानने कहा है। क्यों कि जो व्यक्ति आत्मा में स्थित रहता है वह सभी पदार्थ पाता है। ऐसी हालत में वह किसकी कामना करेगा ? भगवान का आदेश है कि आत्मवान बनो। भगवानने यह नहीं कहा कि धनवान, रूपवान या अधिकारवान बनो। उन्होंने आत्मवान बनने को कहा है। इससे स्पष्ट है कि संसार में सभी पदार्थों और ओहदों से आत्म स्थित होना ही सर्वोत्तम है।

प्रश्न - श्रीकृष्ण ने अर्जुन से किस प्रकार का व्यवहार करने को कहा ?

उत्तर - (१) त्रिगुणातीत बनना चाहिए (२) द्वंद्व रहित होना चाहिए। (३) निरंतर विशुद्ध सत्व में स्थित रहना चाहिए। (४) योगक्षेम की दृष्टि नहीं होनी चाहिए। (५) आत्मज्ञानी बन कर व्यवहार करना चाहिए।

सम्बन्ध - पूर्वश्लोक में अर्जुन को यह बात कही गयी कि सब वेद तीनों गुणों के कार्य का प्रतिपादन करनेवाले हैं और तुम तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों में और उनके साधनों में आसक्ति रहित हो जाओ। अब उसके फलस्वरूप

ब्रह्मज्ञान का महत्त्व बतलाते हैं-

४६. *यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।*

तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।

शब्दार्थ - उदपाने = कुआँ आदि में। यावानर्थः = जितना प्रयोजन है। सर्वतः सम्प्लुतोदके = सब जगह पानी से भरे जल प्रावाह में। तावान् = वैसा प्रयोजन जैसे होरहा है। सर्वेषु वेदेषु = समस्त वेदों में। (यावानर्थ = जितना प्रयोजन है) (तावान् अर्थः = उतना प्रयोजन) विजानतः = आत्मस्वरुप निश्चयानुभाववाला, ब्राह्मणस्य = ब्रह्मनिष्ठ को। (तथा + भवति = उसी प्रकार प्राप्त होता है)।

भावार्थ - सब ओरसे परिपूर्ण जलाशयके प्राप्त हो जानेपर छोटे जलाशयमें मनुष्यका जितना प्रयोजन रहता है, ब्रह्मको तत्त्वसे जाननेवाले ब्राह्मणका समस्त वेदोंमें उतना ही प्रयोजन रह जाता है ॥

और एक भाव - स्नान पान आदि विषयों के लिए जल से भरे तालाब आदि से मनुज का जो प्रयोजन है, वही प्रयोजन समस्त वेदों से अनुभवी ब्रह्मनिष्ठ को है।

व्याख्या - छोटे छोटे कुओं से स्नान पान आदि के लिए जो प्रयोजन मिलता है, वह प्रयोजन सर्वत्र जल से भरे तालाब में बतलाये गये समस्त कर्मकांड का फल आत्मानुभवी ब्रह्मज्ञानी में अंतर्भूत है। इसलिए वैसा ब्रह्मनिष्ठ वेदों के उन काम्यकर्म के फल की अपेक्षा कभी नहीं करता। जैसा शते पंचाशत् न्याय हैं (सौ में पचास निहित है) जैसे हाथी के पांव में बाकी समस्त प्राणियोंके पांव हैं वैसे ही आत्म सुख में बाकी सभी सुख निहित हैं। अतः आत्मानुभवी ज्ञानी वेदों के काम्यकर्म संबंधी फलों के पीछे नहीं पडेगा। यहाँ '**जानतः न**' कह कर '**विजानतः**' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि ऊपरी ज्ञान नहीं अनुभव का ज्ञान होना चाहिए।

इस श्लोक की व्याख्या श्री रामानुजाचार्य आदिने और एक तरह सी की। प्यासे को तालाब के सारे जल से प्रयोजन नहीं होता। चार चुल्लुओं का जल काफी है। रोगी को सब दवाएँ लेने की जरूरत नहीं, किसी एक दवा का

सेवन करे तो काफी है। भूखे को अन्न की सब राशियाँ खाने की जरूरत नहीं, थोडा सा खाना काफी है। इसी प्रकार विवेकवान को वेदों में से ब्रह्मप्राप्ति के लिए आवश्यक कुछ साधनों का अनुष्ठान कर उन्हें अनुभव में लाना चाहिए। बाकी काम्य कर्मों से उसको कोई प्रयोजन नहीं। वेदों में कई मंत्रों, उपासनाओं तथा कर्मों का बोध कराया गया है। साधक को मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन सब के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। किसी एक साधन का अनुष्ठान काफी है।

भगवान श्री कृष्ण ने भक्तों को आश्वासन दिया है कि सभी का हमने अनुष्ठान नहीं किया। उससे किसी को उदास होने की जरूरत नहीं है।

सम्बन्ध - इस प्रकार समबुद्धिरूप कर्मयोगका और उसके फलका महत्त्व बतलाकर अब दो श्लोकोंमें भगवान् कर्मयोगका स्वरूप बतलाते हुए अर्जुनको कर्मयोगमें स्थित होकर कर्म करनेके लिये कहते हैं-

४७. ***कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।***
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

शब्दार्थ - ते= तुझे। कर्मण्येव = कर्म में ही।अधिकारः = अधिकार। कदाचन = कभी। फलेषु = फलों में। मा = नहीं चाहिए। कर्मफल हेतुः = कर्म फलों के कारणभूत। मा भू = मत होओ। अकर्मणि = कर्म न करने में। ते = तुमको। सङ्गः = आसक्ति। मा अस्तु = पैदा न हो।

भावार्थ - तेरा कर्म करनेमें ही अधिकार है, उसके फलोंमें कभी नहीं। इसलिये तू कर्मोंके फलका हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो॥

व्याख्या - हे अर्जुन ! कर्म करना ही तुम्हारा कर्तव्य है। कर्मफल की इच्छा करने का अधिकार तुमको नहीं है। भगवान का यह स्पष्ट कथन है। **'कदाचन'** कहने से भगवान का यह आदेश है कि किसी भी काल में तुम फल की इच्छा मत करो। फल की इच्छा लेकर जो कर्म किये जाते हैं उनसे चित्त शुद्ध नहीं होता। चित्त की शुद्धि न हो तो आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। आत्मज्ञान की प्राप्ति न हो तो मोक्ष प्राप्त नहीं होता। इसलिए मोक्ष की प्राप्ति के लिए निष्कामकर्म

अत्यंत आवश्यक है।

"मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि" - भगवानने कहा है कि 'फल की इच्छा नहीं करनी चाहिए' इस ख्याल से कहीं कर्म करना ही छोड न देना। ऐसा करने से आलसी कहलाओगे। वह तमोगुण है। कोई कर्म न करने में बडप्पन नहीं है। नींद में कोई नहीं करता। दीवार कोई कर्म नहीं करती। उनका बडप्पन कुछ नहीं। भगवान आदेश देते हैं कि तमोगुणवाली अकर्मण्यता को दूर भगा दो। आलसियों के लिए भगवान का यह कथन कुठाराघात जैसा है। कुछ लोग समाधि निष्ठा के नाम पर केवल तमस् में ही रह कर समय काटते हैं। ऐसे लोग इह एवं पर दोनों लोकों से वंचित हो जाएँगे। कोई न कोई कर्म करना चाहिए। भगवान का आदेश है कि कर्म निष्काम भावना से करें। गीता के प्रधान आशयों में यह अनासक्तियोग एक है। अकर्मण्य बन कर अर्जुन जब रथ में बैठ गये तब उन्हें इन्हीं सन्देशोंसे फिर कर्मवीर बताया। इसलिए लोगों को निष्कामकर्म के बारे में अच्छी तरह समझ कर, उसका अनुष्ठान करके अपने जीवन को सुधार लेना चाहिए।

प्रश्न - मनुष्य का किस पर अधिकार है ?

उत्तर - कर्म करने का ही अधिकार है। फल की इच्छा का नहीं।

प्रश्न - किसको त्यागना चाहिए ?

उत्तर - कर्मफल तथा अकर्मण्यता दोनों को छोडना चाहिए।

प्रश्न- फल का सारांश क्या है ?

उत्तर- कर्म करते हुए फल को त्यागना चाहिए।

४८. योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

शब्दार्थ - धनञ्जय = हे अर्जुन! (त्वम् = तुम)। योगस्थः = योग निष्ठा में रह कर। सङ्गं = आसक्ति को। त्यक्त्वा = छोड कर। सिद्ध्यसिद्ध्योः = फल प्राप्त हो या न हो। समोभूत्वा = समान बुद्धिवाला होकर। कर्माणि = कर्मों को। कुरु =

। समत्वं = (वह) समबुद्धि को ही। योगः = योग। उच्यते = कहा जाता है।

भावार्थ - हे धनञ्जय ! तू आसक्तिको त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धिमें समान बुद्धिवाला होकर योगमें स्थित हुआ कर्तव्यकर्मोंको कर, समत्व ही योग कहलाता है ॥

व्याख्या - भगवान ने आदेश दिया है कि योगनिष्ठा में रह कर कर्म करो। योग माने क्या है ? कार्य की सिद्धि एवं असिद्धि में समबुद्धि रखना यहाँ योग कहा गया है। प्रश्न यह है कि वैसे निर्विकार बुद्धि कैसे प्राप्त होगी ? समत्वबुद्धि कैसे प्राप्त की जाय ? मन को पार कर आत्मा में स्थिर रह सकने पर वह स्थिति प्राप्त होती है। वही योग स्थिति है। मन और आत्मा का मिलन ही योग है। जीव और परमात्मा का संयोग ही योग है। उस योग की स्थिति में ही निर्विकार स्थिति उदित होती है। इसलिए उसे भी यहाँ योग कहा गया है। भगवान आदेश देते हैं कि योग में स्थित होकर दृश्य से संग त्याग कर फल की प्राप्ति व अप्राप्ति में समभाव रख कर कर्म करो।

कर्म शुरू करने के पहले 'योगस्थ' होना चाहिए। अर्थात् योग में स्थित होना सीखना चाहिए। दैवी बुद्धि एवं आत्मबुद्धि की आदत डालनी चाहिए। ऐसा न करके कर्म शरू करें तो चित्त विकार ग्रस्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि कर्म के आचरण के पूर्व ज्ञान एवं आत्म चिंतन आवश्यक है। तभी निष्काम कर्म सुलभ होता है। इसी कारण से गीता में कर्मयोग के पहले सांख्ययोग (ज्ञान) के बारे में बताया गया है।

प्रश्न - योग माने क्या है ?

उत्तर - समत्वबुद्धि ही योग है।

प्रश्न - किस प्रकार कर्म करना चाहिए ?

उत्तर - (१) योगनिष्ठा में रह कर (२) संग(आसक्ति) को छोड कर (३) कार्य सिद्ध न हो तो भी समभाव से कर्म करना चाहिए।

सम्बन्ध - भगवान बताते हैं कि काम्य कर्म छोड कर समत्वबुद्धि से युक्त कर्म

करो।

४९. *दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय।*
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥

शब्दार्थ - धनञ्जय = हे अर्जुन ! बुद्धि योगात् = समत्वबुद्धि से किये जानेवाले निष्कामकर्म से। कर्म = काम्यकर्म। दूरेण = बहुत। अवरंहि = कम है न ? (अतः) बुद्धौ = समत्वबुद्धि में। शरणम् = आश्रय को। अन्विच्छ = इच्छा करो। फल हेतवः = अल्प हैं (दीन)।

भावार्थ - हे अर्जुन ! समत्वरूप बुद्धि योग से सकाम कर्म अत्यंत निम्न श्रेणी का है। इसलिए तू समबुद्धि में ही रक्षा का उपाय ढूंढ अर्थात् बुद्धियोग का आश्रय ग्रहण कर, क्योंकि फल की इच्छा करनेवाले दीन हैं।

व्याख्या - अर्जुन के लिए धनञ्जय शब्द का प्रयोग लगातार तीन श्लोकों में किया गया है। इसका प्रयोजन है। इस प्रयोग के द्वारा सूचित किया गया है कि हे अर्जुन ! भौतिकधन के अलावा ज्ञानधन एवं योगधन पर भी विजय प्राप्त करो। गीता में आगे चल कर कुछ जगहों पर बुद्धियोग शब्द का प्रयोग ज्ञानयोग के अर्थ में किया गया। यहाँ समत्वबुद्धि से युक्त निष्कामकर्मयोग के अर्थ में उसका प्रयोग हुआ। काम्यकर्म जनन मरण की हेतु है तो निष्कामकर्म चित्तशुद्धि के द्वारा मोक्ष की हेतु है। इसलिए इन दोनों में संबंध ही नहीं है। काम्यकर्म बहुत अल्प है। उसका विचार करनेवाले दीन हैं। वे जनन मरण रूपी भव सागर में गोते लगाते रहते हैं। भगवान यहाँ सचेत करते हैं कि ऐसी दीनता के आश्रय में किसी को जाना नहीं चाहिए। ऐसी दीनता से छुटकारा पाकर भगवान के कथन "बुद्धौ शरण मन्विच्छ" के अनुसार विज्ञ व्यक्ति को समात्वबुद्धि से निष्काम कर्म करना चाहिए।

प्रश्न - फल की इच्छा से किया जानेवाला कर्म कैसा है ?

उत्तर - निकृष्ट है। (निष्काम कर्म ही सर्वोत्कृष्ट है।)

प्रश्न - मनुष्य को किसकी शरण लेनी चाहिए ?

उत्तर - समत्वबुद्धि से निष्कामकर्म करने की प्रवृत्ति की शरण में जाना चाहिए।

प्रश्न - फल की इच्छा से धर्म करनेवाले कैसे हैं ?

उत्तर - वे अत्यंत दीन हैं। वे भव सागर में बह जाते हैं।

सम्बन्ध- भगवान बताते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्तव्यों का समबुद्धि से पालन करना चाहिए।

> ५०. ***बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।***
> ***तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥***

शब्दार्थ - बुद्धियुक्तः = समत्वबुद्धि से युक्त। उभे सुकृत दुष्कृते = पुण्य और पाप दोनों को। इह = इस लोक में। जहाति = त्याग रहा है। तस्मात् = उस कारण से। योगाय = समत्वबुद्धि सहित निष्काम कर्मयोग के लिए। युज्यस्व = तैयार हो ओ। कर्मसु = कर्मों में। कौशलम् = कुशलता। योगः = योग। उच्यते = कहा जाता है।

भावार्थ - समबुद्धियुक्त पुरुष और पाप दोनोंको इसी लोकमें त्याग देता है अर्थात् उनसे मुक्त हो जाता है। इससे तू समत्वरूप योगमें लग जा; यह समत्वरूप योग ही कर्मोमें कुशलता है अर्थात् कर्मबन्धनसे छूटनेका उपाय है॥

व्याख्या - बुद्धियुक्त माने समत्वबुद्धि से अनासक्त होकर निष्कामकर्म करनेवाला है। पुण्य या पाप उसे छू नहीं सकते। आसक्त होकर फल की अभिलाषा लेकर जो कर्म करता है उसे पुण्य या पाप छूते हैं। अनासक्त होकर फल की इच्छा के बिना जो निष्काम भावना से कर्म करता है उसे पुण्य और पाप नहीं छू सकते। कहा गया है -

यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते (४-२८) वे बंधमुक्त रहते हैं। साधक को पुण्यकार्य करना चाहिए।

“**कौशलम्**” - समत्वबुद्धि से युक्त होकर काम्यकर्मों से मन को हटाने की सामर्थ्य ही योग है। इस प्रकार कर्मो में कुशल बनना योग कहा गया है।

प्रश्न - योग माने क्या है ?

उत्तर - कर्म करने में कुशलता पाना ही योग है। (कुशलता के साथ अनासक्त

होकर कर्म कर सकने की सामर्थ्य ही योग है)

५१. *कर्मजं बुद्धियुक्ता ही फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।*
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥

शब्दार्थ - बुद्धियुक्ताः = समत्वबुद्धि से युक्त । मनीषिणः = विवेकी । क - कर्मों के । फलम् = फल को । त्यक्त्वा = छोड कर । जन्म बन्ध विनि = जन्म नामक बंधन से मुक्त किये जाकर । अनामयम् = दुःखरहित । स्थान । गच्छन्तिः = पारहे हैं ।

भावार्थ - क्योंकि समबुद्धिसे युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होनेवाले त्यागकर जन्मरूप बन्धनसे मुक्त हो निर्विकार परम पदको प्राप्त हो जाते

व्याख्या - मनीषा का अर्थ है प्रज्ञा । यहाँ कहा गया है कि बुद्धि एवं प्रज्ञा कर्मफल को त्याग देते हैं । इससे स्पष्ट है कि कर्मों के आचरण के पहले अत्यावश्यक है । जो व्यक्ति कर्मों को कामना के साथ करता है वह उठाता है । जो व्यक्ति निष्काम भावना के साथ निस्संग होकर कर्म करता बडा श्रेय पाता है । जो यह बात अच्छी तरह जानता है वह क र्मफल छो उत्तमपद पासकता है । विवेक से ही मनुष्य कर्मों को निष्काम एवं अनास से कर सकता है । इसीलिए यहाँ कहा गया है कि बुद्धिमान, मनीषी ही त्यागने में समर्थ बनते हैं । निष्कामकर्म से चित्त शुद्ध होता है । ऐसे निर्मल में आत्मज्ञान के पैदा होने से वे जन्म बन्धन से मुक्त होते हैं । इस प्रक किया गया है कि कर्ममार्ग मोक्ष के किस तरह काम आता है । कुछ लो संदेह हो सकता है कि क्या कर्मों से मोक्ष मिल सकता है ? इसका उत्त भगवानने ही दिया है । गीताचार्यने स्पष्ट बता दिया है कि जो व्यक्ति प कामना न कर अनासक्त होकर कर्म करते हैं वे निर्मल, उपद्रव एवं भवबंध मोक्षपद अवश्य प्राप्त कर सकते हैं ।

"जन्मबन्ध विनिर्मुक्ताः" - इस संसार में सब लोग सोचते हैं कि कैसा छूटेगा । इसका एक सुलभ उपाय भगवान बताते हैं । वे कहते है

लोगों ! अगर तुम बंधन से मुक्त होकर मोक्षपद पाना चाहते हो तो निष्काम भावना से, ईश्वरार्पण की बुद्धि से कर्म करो। इससे चित्त शुद्ध होगा। आत्मज्ञान पैदा होगा। तब तुम मोक्षधाम अवश्य पा सकोगे।"

"**मनीषिण:** " - कर्म का रहस्य जानकर लोक में अनासक्त भावना से जो काम करता है वही वास्तव में प्रज्ञावान है। लौकिक पांडित्यवाला प्रज्ञावान नहीं है।

"**पदं गच्छन्त्यनामयम्**" - संसार में कई बडे बडे पद हैं राजा का पद, महाराजा का पद आदि। वे सब संसार चक्र के अंतर्गत ही हैं। वे जनन मरण के बंधन से मनुष्य को छुडा नहीं सकते। सब से महान् पद एक है, वह है आत्म पद, ब्रह्म-पद। उसे पाने का मार्ग क्या है ? वह मार्ग भगवानने ही यहाँ सूचित किया है। फल की कामना त्याग कर कर्म करते हुए चित्त शुद्धि प्राप्त कर, उसके द्वारा आत्मज्ञान पाना ही वह मार्ग है। उस मार्ग पर चल कर विज्ञ लोग मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न - प्रज्ञावानों का लक्षण क्या है ?

उत्तर - निष्काम भावना से कर्माचरण करना प्रज्ञावानों का लक्षण है।

प्रश्न - उस निष्काम कर्म से वे कौन सा फल पाते हैं ?

उत्तर - जन्म के बन्धन से मुक्त होकर वे मोक्षपद पाते हैं।

प्रश्न - परमात्मा का पद कैसा है ?

उत्तर - (१) जो जन्मबंध रहित हो (२) निरामय हो, वही परमात्मा का पद है।

सम्बन्ध - भगवान्ने कर्मयोगके आचरणद्वारा अनामय पदकी प्राप्ति बतलायी; इसपर मनुष्य को जिज्ञासा हो सकती है कि अनामय परमपद की प्राप्ति मुझे कब और कैसे होगी ? इसके लिये भगवान् दो श्लोकोंमें कहते हैं-

५२. *यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति।*
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च॥

शब्दार्थ - यदा = जब। ते = तुम्हारी। बुद्धिः = बुद्धि। मोह कलिलम् =

अज्ञानरूपी मालिन्य को। व्यतितरिष्यति = पार कर सकेगी। तदा = तब। श्रेतव्यस्य = सुनने लायक बोध में। श्रुतस्य च = सुनेहुए बोध में। निर्वेदम् = विरक्ति। गन्तासि = पा सकोगे।

भावार्थ - जिस काल में बुद्धि मोहरूप दलदल को भलीभाँति पार कर जायगी, उस समय तू सुने हुए और सुनने में आनेवाले इस लोक और परलोक सम्बन्धी सभी भोगोंसे वैराग्यको प्राप्त हो जायगा॥

व्याख्या - जीव का लक्ष्य मोह को पार करना है। उस मोह के ही नाम हैं अज्ञान, माया एवं प्रकृति। तमस् के उस पार परमात्मा है। 'तमसस्तु पारे' यह वेदवाक्य इसी सत्य को सूचित करता है। प्रकाश के रूप में स्थित परमात्मा के पास पहुंचना हो तो मोह (तमस्) को पार करना चाहिए। निष्काम कर्म करते हुए श्रवण, मनन, ध्यान के द्वारा आत्मविश्लेषण करते हुए उस कार्य को साधना चाहिए। इस प्रकार बुद्धि जब अज्ञान रूपी मालिन्य को दूर करेगी, उस पार स्थित परमात्मा को प्राप्त करेगी तब ध्येय वस्तु में ही रमती रहेगी। तब श्रवण आदि के प्रति आसक्ति नहीं रहेगी। यहाँ पर अच्छी तरह जान लेना चाहिए कि यह साध्य वस्तु (आत्मा) पानेवालों के बारे में कही गयी बात है न कि साधकों के बारे में। साधकों को शास्त्रों का श्रवण अवश्य करना चाहिए।

"**मोह कलिलम**" इस कथन से स्पष्ट है कि हृदय में अज्ञान रूपी जो मालिन्य जमा है,उसे बडे जतन के साथ निष्कामकर्मवाले आचरण तथा आत्म विश्लेषण के द्वारा दूर करके आत्म साक्षात्कार प्राप्त करना चाहिए।

५३. ***श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला।***
समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि॥

शब्दार्थ - श्रुति विप्रतिपन्ना = नानाविध श्रवण आदि से कलित। ते = तेरी। बुद्धिः = बुद्धि। यदा = जब। निश्चला = निश्चल होकर। समाधौ = परमात्मा के ध्यान पर। अचला = स्थिर रूप से। स्थास्यति = स्थापित रहती है। तदा = तब। योगम् = योग को। अवाप्स्यसि = पा सकोगे।

र्थ - भाँति-भाँति के वचनों को सुननेसे विचलित हुई तेरी बुद्धि जब
मा में अचल और स्थिर ठहर जायगी, तब तू योगको प्राप्त हो जायगा
तेरा परमात्मा से नित्य संयोग हो जायगा ॥

भाव - वेदों में कई वाक्यों द्वारा कहा गया है कि इस फल की प्राप्ति के लिए
म करना चाहिए। उस फल की प्राप्ति के लिए कर्म करना चाहिए। इससे
क पर स्थिर नहीं रहती। व्याकुल होती है। जब बुद्धि स्थिर होती है, तत्व
से अज्ञान रूपी मालिन्य को दूर कर लेती है; इहलोक एवं परलोक की
कि त्याग कर परमात्मा के ध्यान में रत रहती है तब वह आत्मसाक्षात्कार
कती है। वह स्थिति योग कहलाती है। यहाँ पर प्रयुक्त योग का अर्थ है
कर एक होना, जीवात्मा एवं परमात्मा का मिलन। बुद्धि का आत्मा में
होना। कई वाद प्रातिवाद सुन सुन कर भटक रही बुद्धि अंत में दृश्य
मामलों से हटकर आत्मा में ध्यान-मग्न होती है तब समुंदर के जल में
नमक की तरह आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर परम शांति एवं आनंद
है। भगवान कहते हैं कि तभी योग की प्राप्ति होती है। जब चित्त चंचल
है तब चिंतन मनन संभव नहीं होता। इसीलिए 'निश्चला' तथा 'अचला'
षण जोडे गये हैं। हाथ कांप रहा हो, या धागे की छोर पतली न हो तो
रह धागा सुई की छेद में प्रवेश नहीं करता उसी तरह एकाग्र एवं विषय
रहित न हो तो बुद्धि (मन) आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकती। इसलिए
को श्रवण के साथ मनन आदि भी करना चाहिए। दृश्य संबंधी विषयों
को मोड कर मन को अंतर्मुखी बनाना चाहिए। तभी चित्त एकाग्र होकर
में स्थिर रह सकेगा।

मनुज कब आत्मसाक्षात्कार पा सकता है ? इस प्रश्न का जवाब इस
में दिया गया है। आत्मानुभूति के लिए काल की अवधि का नियम नहीं
चित्त विषय वासनाओं से विमुख होकर, एकाग्र हो सकेगा तब मोक्ष पा
इसीलिए 'यदा तदा' दो शब्दों का प्रयोग किया गया है।

प्रश्न - मनुष्य को जीव एवं ब्रह्म का एकत्वयोग कब प्राप्त होगा ?

उत्तर - बुद्धि जब निश्चल, निर्विषयी होकर आत्मध्यान में स्थिर रहेगा तब जीव एवं ब्रह्म का एकत्व योग प्राप्त होगा।

सम्बन्ध - पूर्वश्लोकोंमें भगवान्‌ने यह बात कही कि जब तुम्हारी बुद्धि मोहरूपी दलदलको सर्वथा पारकर जायगी तथा तुम इस लोक और परलोक के समस्त भोगोंसे विरक्त हो जाओगे, तुम्हारी बुद्धि परमात्मा में निश्चल ठहर जायगी, तब तुम परमात्माको प्राप्त हो जाओगे। इसपर परमात्माको प्राप्त स्थितप्रज्ञ सिद्धयोगीके लक्षण और आचरण जानने की इच्छा से अर्जुन पूछते हैं-

अर्जुन उवाच

५४. *स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।*
स्थितधी : किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

शब्दार्थ - अर्जुन उवाच = अर्जुनने कहा। केशव = हे कृष्ण। समाधिस्थस्य = समाधिस्थ। स्थित प्रज्ञंस्य = स्थिरबुद्धिवाले का। भाषा = लक्षण। का = क्या है ? स्थितधी : = स्थिरबुद्धिवाला। किम् = क्या। प्रभाषेत = बोलेगा। किम् = किस तरह। आसीत = रहेगा। किम् = किस तरह। व्रजेत = संचार करेगा।

भावार्थ - अर्जुन बोले - हे केशव ! समाधिमें स्थित परमात्माको प्राप्त हुए स्थिर बुद्धि पुरुषका क्या लक्षण है ? वह स्थिरबुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है ?

व्याख्या - समाधि की निष्ठा में लीन योगी के लक्षण अर्जुनने जानना चाहा। कुछ ढोंगी, समाधिनिष्ठा में लीन सा अभिनय करते हैं। इसलिए सच्चे समाधिनिष्ठ व्यक्तियों को पहचानने का मार्ग लोगों को चाहिए। इत्तफाक से अर्जुनने ही इससे संबंध रखनेवाला प्रश्न पूछा। अर्जुनने जानना चाहा कि एक व्यक्ति सही आध्यात्मिक मार्ग पर चलरहा है या नहीं , वह सच्चा योगी है या ढोंगी इस बात का पता कैसे लगाया जाय ? इसके लिए तीन बातें मुख्य हैं। (१) व्यक्ति की वाणी (२) उसका रहन सहन (३) उसका चाल चलन। हर व्यक्ति के गुण

उसके कार्यों से प्रकट होते हैं। अज्ञानी के हर काम में तमोगुण, रजोगुण एवं अपवित्रता दृग्गोचर होते हैं। ज्ञानी के नित्य व्यवहार में दैवत्व, शांति एवं पवित्रता प्रकट होते हैं। इसलिए स्थितप्रज्ञ के लक्षण, स्वरूप स्वभाव और उसके दैनिक जीवन के रहस्य जान जायँ तो दूसरे लोग भी उनका अनुसरण करके अपने जीवन को धन्य बना सकते हैं। इसीलिए अर्जुनने भगवान से यह प्रश्न पूछा।

स्थित+प्रज्ञः या धीः - अर्थात् प्रज्ञा या बुद्धि को आत्मा में स्थिर करनेवाला स्थितप्रज्ञ है। बाकी लोग अस्थिर प्रज्ञ हैं। उनकी बुद्धि एवं प्रज्ञा आत्मा में लीन न रह कर दृश्य जगत् की वस्तुओं में लीन रहती हैं। इसलिए सच्चे स्थितप्रज्ञ के लक्षण जानना आवश्यक है। उन्हें आचरण में लाकर भव के बंधनों से मुक्त होना चाहिए। स्थितप्रज्ञ के लक्षणों से संबंधित यह भाग (५४ वें श्लोक से ७२ वें श्लोक तक) गीता में प्रमुख है। महात्मा गान्धीजी हर दिन इस भाग का पारायण किया करते थे।

प्रश्न - अर्जुनने स्थितप्रज्ञ के कौन कौन से लक्षण जानना जाहा ?

उत्तर - (१) उसकी भाषा कैसी हो ? (२) उसका रहन सहन कैसा हो ? (३) उसका चाल चलन कैसा हो ?

सम्बन्ध - अर्जुन के प्रश्न के उत्तर में भगवान अगले १८ श्लोकों में स्थित प्रज्ञ के लक्षण बतलाते हैं -

५५. *प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।*
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

शब्दार्थ - श्री भगवान उवाच = भगवान श्रीकृष्णने कहा। पार्थ = हे अर्जुन ! यदा = जब। मनोगतान् = मन में बसी। सर्वान् = समस्त। कामान् = कामनाओं को। प्रजहाति = बिल्कुल छोड देता है। आत्मन्येव = आत्मा में। आत्मना = आत्मा से। तुष्टः = संतुष्टि पाकर (भवति = रहता है) तदा = तब। स्थितप्रज्ञः = स्थितप्रज्ञ। उच्यते = कहलाता है।

भावार्थ - श्री भगवान् बोले-हे अर्जुन ! जिस कालमें यह पुरुष मनमें स्थित सम्पूर्ण कामनाओंको भलीभाँति त्याग देता है और आत्मासे आत्मामें ही सन्तुष्ट रहता है, उस कालमें वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ॥

व्याख्या - कई लोग अपने गुरुओं के यहाँ जाकर पूछते हैं कि हमें मोक्ष कब मिलेगा ? सांसारिक बाधाओं से हमें मुक्ति कब मिलेगी ? तब भगवान श्रीकृष्ण के इसी श्लोक को गुरु लोग उत्तर में सुनाते रहते हैं। लोगों की मोक्ष प्राप्ति का सही मुहूर्त उन उन के हाथों में ही रहता है। **यदा = जब तुम साधना करोगे, तदा = तब तुम मोक्ष पा ओगे।** यही भगवान का जवाब है। इस श्लोक में कही गयी योग्यता जब जीव को प्राप्त होगी तब उसे मुक्ति की प्राप्ति होगी। इसलिए अपनी मोक्ष प्राप्ति के लिए दूसरों से पूछ ताछ करते रहने से कोई फायदा नहीं होगा। निरंतर साधना करनी चाहिए।

वह साधना कैसी है ? - प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्-

१. पहले पहल अपनी सभी इच्छाओं को छोड देना चाहिए। यहाँ 'जहाति' न कह कर 'प्रजहाति' कहा गया है। इसका अर्थ है इच्छाओं को संपूर्ण रूप से छोड देना चाहिए। 'सर्वान्' कहा गया है। इसका अर्थ है सभी इच्छाओं को पूर्ण रूप से त्याग देना। वासना, अग्नि, ऋण, रोग, शत्रु, राग, वैर एवं विषयादि वस्तुओं में से थोडा सा बचा रहा तो भी बडा खतरा है। इसलिए शास्त्र कहते हैं कि उन्हें पूर्ण रूप से छोड देना चाहिए। 'सभी इच्छाओं को संपूर्ण रूप से त्याग देना चाहिए' इस बात के धृवीकरण के लिए "**प्रजहाति**" तथा सर्वान शब्दों का भगवानने प्रयोग किया है। इच्छाएँ मन के कोने में छिपी रहती हैं। वासनाओं के रूप में वे अंदर बसी रहती हैं। इसीलिए 'मनोगतान्' कहा गया है। दोष या बंधन बाहर नहीं, अंदर ही हैं। इसलिए मन रूपी तम से भरे अगाथ कुहर में जो भी इच्छाएँ छिपी पडी हैं उन्हें विवेक रूपी दीप की सहायता से खोज कर निकाल देना चाहिए। भगवान कहते हैं कि जिस प्रकार चावल से कंकडों, बगीचों से कांटों तथा सागभाजी के

पौधों से कीडों को निकाल कर बाहर फेंक देते हैं उसी प्रकार मन से इच्छाओं को निकाल कर फेंक देना चाहिए। ये इच्छाएँ आज की नहीं है। जन्म जन्मांतर की हैं। वे जीव के हृदय में बस कर उसे जनन मरण के बंधनों में जकड कर संसार में भटका रही हैं। इसलिए उन्हें समूल उखाड कर फेंकना चाहिए। एक भी बची रहे तो खतरा है। सारी अग्नि बुझ जाय, पर एक चिनगारी बची रहे तो वह कालक्रम में प्रचंड रूप धारण कर लेगी। इसीलिए भगवानने सभी इच्छाओं के त्यागने पर ही जोर दिया है।

२. दूसरी साधना - "आत्मान्येवात्मा तुष्टः"। अपनी आत्मा में आप संतुष्ट रहना। तुष्टि तथा आनन्द कहाँ मिलते हैं ? इसका जवाब यहाँ दिया गया है। अपनी आत्मा में ही वे मिलते हैं। मन का मालिन्य जब दूर होगा तब अपने आप आत्मानन्द प्राप्त होगा। वेदाँत का सार यही है। ब्रह्मानन्द बाहर नहीं है। अंदर ही है। काँई हटाने से जिस तरह निर्मल जल मिलेगा उसी प्रकार दृश्य दोष जब दूर होंगे तब प्रकाशवान परमात्मा स्वयं हृदय में प्रकट होंगे। इसीलिए भगवानने श्लोक के प्रथम पाद में कामना राहित्य की साधना के बारे में बताया। फिर दूसरे पाद में "आत्मतुष्टि तथा आत्मानन्द नामक साध्य विषय के बारे में बताया। मतलब यह कि साधना करें साध्य मिलेगा। इस प्रकार जो साधक सभी इच्छाएँ संपूर्णरूप से त्याग कर निरंतर आत्मा में संतुष्ट रहेगा वही स्थितप्रज्ञ है। ज्ञानी है। जीवन्मुक्त है। इस आधार पर ज्ञानी की परख की जासकती है। जीवन्मुक्त के मुख पर तुष्टि एवं आनन्द की झलक रहती है। कामनाओंवाले व्यक्ति के मुख पर सदा उदासी एवं दुख प्रकट होते हैं। स्थितप्रज्ञ के लिए प्राप्त करने की कोई चीज बची नहीं रहती। वह सदा मन ही मन आनन्द के सागर में तैरता रहता है। यही उसकी परख है।

प्रश्न - स्थितप्रज्ञ के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर - (१) मन की सब इच्छाएँ पूर्ण रूप से त्यागना (२) निरंतर आत्मा में

संतुष्ट रहना।

प्रश्न - संसार में पूर्ण आनन्द कहाँ मिलेगा ?

उत्तर - अपनी ही आत्मा में।

सम्बन्ध - स्थितप्रज्ञके विषयमें अर्जुनने चार बातें पूछी हैं, उनमेंसे पहला प्रश्न इतना व्यापक है कि उसके बादके तीनों प्रश्नोंका उसमें अन्तर्भाव हो जाता है। इस दृष्टिसे तो अध्यायकी समाप्तिपर्यन्त इस एक ही प्रश्नका उत्तर है; पर अन्य तीन प्रश्नोंका भेद समझनेके लिये ऐसा समझना चाहिये कि अब दो श्लोकोंमें 'स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है' इस दूसरे प्रश्नका उत्तर दिया जाता है-

५६. *दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।*
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

शब्दार्थ - दुःखेषु = दुःखों में। अनुद्विग्न मनाः = अनुद्विग्नमनवाला। सुखेषु = सुखों में। विगतस्पृहः = आसक्तिरहित। वीतराग भय क्रोधः = अनुराग, भय, क्रोध रहित। मुनिः = मननशील। स्थितधीः = स्थितप्रज्ञ। उच्यते = कहलाता है।

भावार्थ - दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर जिसके मनमें उद्वेग नहीं होता, सुखोंकी प्राप्तिमें जो सर्वथा निःस्पृह है तथा जिसके राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, ऐसा मुनि स्थिरबुद्धि कहा जाता है॥

व्याख्या - स्थितप्रज्ञ के कुछ और लक्षणों का उल्लेख यहाँ किया जारहा है। जो व्यक्ति प्रज्ञा या बुद्धि को आत्मा में स्थिर कर सकता है वही स्थितप्रज्ञ है। सामान्य जन की बुद्धि या प्रज्ञा संसार की वस्तुओं और देह आदि दृश्य वस्तुओं में फँस कर भगवान पर स्थिर नहीं रहती। इसलिए वे स्थितप्रज्ञ नहीं हैं। यहाँ स्थितप्रज्ञ के तीन लक्षण बताये गये हैं।

(१) दुःखों से स्थितप्रज्ञ का मन क्षुब्ध नहीं होता। जिस प्रकार बादल के ऊपर स्थित सूरज को वर्षा तथा बिजली के गिरने की वह आफत नहीं होती, जो बादल के नीचे रहनेवालों को होती है, उसी प्रकार मन को घेरे रहनेवाले

सुख-दुःख आदि आत्मज्ञ को नहीं होते। वह मन का साक्षी रहता है। साक्षी को साक्ष्य के धर्म कभी भी दुःख नहीं पहुँचाते। जिस प्रकार पर्वत को तीर छेद नहीं सकते, कमलनाल के रेशे मस्त हाथी को बांध नहीं सकते उसी प्रकार दुःख आदि ज्ञानी को व्यथा पहुँचा नहीं सकते। यह बात मुनीन्द्र वशिष्ठ ने श्री रामचन्द्र को बतायी थी।

(२) सुखों की प्राप्ति पर ज्ञानी खुशी से नहीं फूलता। दुःखों की तरह सुखभी मन के ही विकार हैं। मन को लांघ कर आत्मा तक पहुँचनेवाले स्थितप्रज्ञ का मनोविकार कुछ नहीं बिगाड सकते। क्योंकि जागृति ज्ञानी स्वप्न के सुख को कभी नहीं चाहेगा। अगर चाहेगा तो उसका अर्थ है कि वह अभी नहीं जागा। जनक के यहाँ शुक मुनीन्द्र रहते थे। वे वैभव नहीं चाहते थे। दुःखों से विचलित नहीं होते थे। निश्चित रूप से वे स्थितप्रज्ञ माने गये। ऐसे लक्षणवाले स्थितप्रज्ञ हैं।

(३) स्थितप्रज्ञ राग, भय तथा क्रोधरहित होते हैं। ज्ञानी को सारी सृष्टि आत्म स्वरूप लगती है। ईशावास्योपनिषद्वाक्य है "तत्र को मोहः कः शोक एकत्व मनुपश्यतः"। इस प्रकार अपने को जो ढालते हैं उनको शोक, मोह, राग और भय हो नहीं सकते। खुद ही सब कुछ है तो फिर उसे विकार कैसे होंगे ? मुनि का अर्थ है मननशील। महनीय लोग आध्यात्मिक सत्यों का खूब मनन किया करते हैं। इसीलिए उनका नाम मुनि पडा। मननशील ही स्थितप्रज्ञ बन कर जीवन्मुक्त बन सकते हैं। शायद इसीलिए यहाँ मुनि शब्द का प्रयोग किया गया है। आध्यात्मिक क्षेत्र में आलसियों को स्थान नहीं मिलता। आलसी लोग 'सोहं' पहाड को किसी भी काल में लांघ नहीं सकते। मननशील एवं साधक ही जीवन्मुक्ति पा सकते हैं।

प्रश्न - स्थितप्रज्ञ के कुछ लक्षण बताओ।

उत्तर - (१) दुःखों में कुंठित न होना।

(२) सुखों के प्रति आसक्ति का न होना।

(३) राग, भय एवं क्रोध का न होना।

५७. *यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।*
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

शब्दार्थ - यः = जो। सर्वत्र = सबविषयों में। अनभिस्नेहः = अभिमान रहित होकर। तत्तत् = उन उन। शुभाशुभम = प्रिय एवं अप्रिय विषयों को। प्राप्य = पाने पर भी। नाभिनन्दति = खुश नहीं होता। द्वेष्टि = द्वेष नहीं पाता। तस्य = वैसे व्यक्ति का। प्रज्ञा = ज्ञान। प्रतिष्ठिता = बहुत स्थिर है।

भावार्थ - जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है॥

व्याख्या - "यः"(जो) - गीता में कई जगहों पर 'यः' शब्द का प्रयोग किया गया है। कहा गया है कि जो ऐसी योग्यता पाएगा वह मुक्ति प्राप्त करेगा। कहीं भी जाति, मत, वर्ण, लिंग तथा उम्र का उल्लेख नहीं किया गया। यही गीता का विशाल दृष्टिकोण है।

"सर्वत्रानभिस्नेहः" कहा गया है कि सब विषयों में अभिमान रहित होना चाहिए। आम तौर पर अप्रिय विषयों के प्रति किसी को रुचि नहीं होती। इसी प्रकार जिसे प्रिय विषयों के प्रति भी रुचि नहीं होती वही स्थितप्रज्ञ है। प्रिय तथा अप्रिय सब माया के अंतर्गत हैं। इसलिए मायातीत ज्ञानी को उनके प्रति रुचि नहीं होती। न चाहने पर भी कभी कभी ज्ञानी को दैवयोग से प्रिय तथा अप्रिय का सामना करना पडता है। तब वह प्रिय और अप्रिय के प्रति समान भाव रख कर स्थिर रहता है। पर्वत की तरह अचंचल रहता है। स्थितप्रज्ञ का यही लक्षण है।

प्रश्न - स्थितप्रज्ञ के और क्या क्या लक्षण यहाँ स्पष्ट किये गये हैं ?

उत्तर - (१) सब विषयों में अभिमान का न होना।

(२) प्रिय एवं अप्रिय का सामना करना पडे तो संतोष या द्वेष रहित रहना।

सम्बन्ध - 'स्थिरबुद्धिवाला योग कैसे बोलता है ?' इस दूसरे प्रश्नका उत्तर

समाप्त करके अब भगवान् 'वह कैसे बैठता है ?' इस तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हुए यह दिखलाते हैं कि स्थितप्रज्ञ पुरुषकी इन्द्रियोंका सर्वथा उसके वशमें हो जाना और आसक्तिसे रहित होकर अपने-अपने विषयोंसे उपरत हो जाना ही स्थितप्रज्ञ पुरुषका बैठना है-

५८. *यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।*
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥

शब्दार्थ - सदा = जब। अयम = यह (योगी)। कूर्म = कछुआ। अङ्गानीव = अवयवों की तरह। इन्द्रियार्थेभ्यः = इन्द्रिय संबंधी विषयों से। इन्द्रियाणि = इन्द्रियों को। सर्वशः च = सभी ओर से। संहरते = पीछे मोडता है। तस्य = उसका। प्रज्ञा = ज्ञान। प्रतिष्ठिता = अधिक स्थिर है।

भावार्थ - और कछुआ सब ओरसे अपने अङ्गोंको जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के सब प्रकारसे हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है (ऐसा समझना चाहिये)॥

व्याख्या - यहाँ स्पष्ट बताया गया है कि मोक्ष की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय निग्रह बहुत आवश्यक है। यदा शब्द के प्रयोग के द्वारा बताया गया है कि जब मनुष्य इन्द्रिय निग्रह कर सकेगा तब बुद्धि आत्मा में स्थिर हो सकेगी। यह बात पतंजली महर्षिने "योगश्चित्तवृत्ति निरोधः, तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्" कह कर व्यंक्त किया है। मतलब यह कि जब चित्त बहिर्मुख विषय प्रवृत्तियाँ त्याग कर, अंतर्मुखी बनेगा तब वह आत्मा में अच्छी तरह स्थित होगा। एक उपमान देकर भगवानने इस तत्व को समझाया है। कछुआ आहट पाते ही झट अपने अवयवों को अन्दर मोड लेता है। इस तरह योगी शब्द स्पर्श आदि बाह्य विषयों से मन मोड कर उसे अंतरात्मा में समा लेता है। "सर्वशः" शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि एक अवयव नहीं, सभी अवयवों को वश में करना चाहिए। रात के समय सब दरवाजे बन्द कर एक दरवाजा खोल कर रख दें तो चोर उसी दरवाजे से अंदर घुस आएगा। सब खिडकियाँ बंद कर एक खिडकी खोल कर रख दें

तो उससे हवा अन्दर आती है और जलती बत्ती को बुझा देती है। इसलिए मुमुक्षु को सचेत रह कर सब इन्द्रियों को विषय वासनाओं से खींच लेना चाहिए। गीताचार्य इस श्लोक के द्वारा बताते हैं कि आत्मानुभूति एवं स्थितप्रज्ञत्व के लिए ऐसा विषय राहित्य अत्यंत आवश्यक है।

प्रश्न - मनुष्य कब स्थितप्रज्ञ बन सकता है ?

उत्तर - मनुष्य जब अपनी सब इन्द्रियों को शब्द आदि विषयों से मोड लेगा (चित्त को अन्तर्मुखी बना कर आत्मा में स्थापित करेगा, तब स्थितप्रज्ञ बन सकेगा।)

सम्बन्ध - पूर्वश्लोकमें तीसरे प्रश्नका उत्तर देते हुए स्थितप्रज्ञके बैठनेका प्रकार बतलाकर अब उसमें होनेवाली शङ्काओंका समाधान करनेके लिये अन्य प्रकारसे किये जानेवाले इन्द्रियसंयमकी अपेक्षा स्थितप्रज्ञके इन्द्रियसंयमकी विलक्षणता दिखलाते हैं-

५९. *विषया विनिवर्त्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।*
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥

शब्दार्थ - निराहारस्य = शब्दादि विषयों को स्वीकार न करनेवाले। देहिनः = जीव को। रसवर्जं = विषय वासनाएँ छोड कर। विषयाः = सब विषय। विनिवर्तंते = निवृत्त होते हैं। परम् = परमात्मा को। दृष्ट्वा = देखने पर। रसोऽपि = वह विषय वासना भी। अस्य = इसे। निवर्तते = निवृत्त होती है।

भावार्थ - इन्द्रियों के द्वारा विषयोंको ग्रहण न करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है॥

व्याख्या - यह श्लोक साधकों के लिए अत्यंत आवश्यक है। क्यों कि साधना से संबंधित एक परम रहस्य इसमें बताया गया है।

शास्त्रों में तीन साधन बताये गये हैं (१) वासनाओं का क्षय (२) मनो नाश (३)

तत्वज्ञान। कहा गया कि इन तीनों साधनों की सफलता की प्राप्ति एक ही बार हो तो मोक्ष का साक्षात्कार संभव है। इनमें भी वासनाक्षय तत्वज्ञान की प्राप्ति से होती है। तत्वज्ञान से वासनाक्षय होता है। पिछले श्लोक में कहा गया कि वासनाक्षय से तत्वज्ञान की प्राप्ति होती है। इस श्लोक में कहा गया है कि तत्वज्ञान से वासनाक्षय होता है। इसी वजह से यहाँ कहा गया है कि "परं दृष्ट्वा रसोऽपि निवर्तते" परमात्मा के दर्शन से ही वासनाएँ मिट जाती हैं। वासनाओं का क्षय सामान्य विषय नहीं है। मोक्षप्राप्ति का रहस्य इसी में छिपा है। अनेक जन्मों से अर्जित वासनाएँ हृदय में जमी रहती हैं। इन्हें समूल मिटाना चाहें तो आत्मा के दर्शन करना चाहिए। आत्मा की सत्यता तथा जगत् की मिथ्या के बारे में जानना चाहिए। ज्यों ज्यों आत्म तत्व का भास होता जाएगा त्यों त्यों वासनाओं का अंत होता जाएगा। इसलिए भगवान के द्वारा सूचित तत्व दर्शन के उपायों को अमल में लाकर वासनाओं का अंत कर लें तो जन्म सार्थक होगा। 'निराहारस्य' का अर्थ कुछ लोगों ने 'उपवास करनेवाले को' कहा है। यह अर्थ ठीक नहीं लगता। ऊपर व्यक्त किया गया अर्थ ही ठीक लगता है।

प्रश्न - मोक्ष की प्राप्ति के लिए क्या इन्द्रियों को विषय वासनाओं से मोडना काफी है?

उत्तर - काफी नहीं है। चित्त में स्थित विषय वासनाओं को मिटाना भी आवश्यक है।

प्रश्न - वासनाओं को मिटाने का उपाय क्या है?

उत्तर - परमात्मा के दर्शन ही इसके लिए उपाय है। अर्थात् आत्मतत्व के चिंतन मनन आदि के द्वारा दृश्य जगत् की मिथ्या एवं आत्मतत्व की सत्यता की अनुभूति प्राप्त करना है।

सम्बन्ध - आसक्तिका नाश और इन्द्रियसंयम नहीं होने से क्या हानि है? इसपर कहते हैं -

६०. *यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।*
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

शब्दार्थ - कौन्तेय = हे अर्जुन। यततः अपि = प्रयत्न करनेवाला भी। विपश्चितः

= विद्वान। पुरुषस्य = पुरुष के। मन: = मन को। प्रमाथीनि = क्षुभित करने-वाले। इन्द्रियाणि = इन्द्रिय। प्रसभम = जबर्दस्ती (बलात्कार के द्वारा)। हरन्ति हि = हर रही हैं।

भावार्थ - हे अर्जुन! आसक्ति का नाश न होने के कारण ये प्रमथनस्वभाववाली इन्द्रियाँ यत्न करते हुए बुद्धिमान् पुरुष के मन को भी बलात्कार से हर लेती हैं।

व्याख्या - यहाँ स्पष्ट बताया गया कि इन्द्रियाँ कितनी शक्तिशाली हैं। "विपश्चित:" कहा गया है। विद्वान् मनुष्य के मन को भी इन्द्रियाँ जब हर रही हैं तो सामान्य मनुष्य की बिसात ही क्या है? "बलवानिन्द्रिय ग्रामों विद्वांसमपि कर्षति" यह भगवान व्यास का कथन है। इन्द्रिय समूह शक्तिशाली है। वह विद्वान् को भी हिला देता है। इससे स्पष्ट है कि इन्द्रियाँ कितनी शक्तिशाली एवं प्रभावशाली हैं।

हर जीव के हृदय में आत्मा अनात्मा और धर्म अधर्म का युद्ध किसी न किसी रूप में चलता ही रहता है। साधक ज्यों ज्यों दैवीशक्ति प्राप्त करने लगता है त्यों त्यों माया मोह आदि विषय वासनाएँ और इन्द्रियाँ रूपी अपने सैनिकों के द्वारा आक्रमण कराते हैं। उस संग्राम का वर्णन इस श्लोक में किया गया है। मुमुक्षु तभी विजयी हो सकता है जब कि दैवी शक्ति का उसमें आधिक्य हो। इस श्लोक में बताया गया कि विद्वान् पुरुष के मन को भी इन्द्रियाँ बलात्कार कर अपने वश में कर रही है। इससे साधकों को निराश या उदास नहीं होना चाहिए। देवीशक्ति का अर्जन कर आसुरी शक्तियों को जीतने का प्रयत्न साधक को कर ना चाहिए।

'विपश्चित:' शब्द के प्रयोग से लगता है कि भगवान की दृष्टि में केवल शास्त्र का ज्ञान ही काफी नहीं है, साथ ही साथ अनुभव का ज्ञान भी आवश्यक है।

भगवान ने इस श्लोक के द्वारा स्पष्ट बता दिया है कि साधकों के शतृ कितने शक्तिशाली हैं। ऐसी हालत में मुमुक्षु का कर्तव्य है कि वह दैवीशक्ति का

अर्जन ज्यादा से ज्यादा करे और इन्द्रियों एवं विषय वासनाओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करे।

प्रश्न - स्पष्ट करो कि इन्द्रियों की शक्ति कैसी है?

उत्तर - वे इतनी शक्तिशाली हैं कि मोक्षमार्ग की ओर जा रहे विद्वान के मन को भी बलात्कार कर खींच लेती हैं। विषयवासनाओं की ओर ढकेलती हैं।

सम्बन्ध - इस प्रकार इन्द्रियसंयम की आवश्यकता का प्रतिपादन करके अब भगवान् साधक का कर्तव्य बतलाते हुए पुनः इन्द्रियसंयम को स्थितप्रज्ञ-अवस्था का हेतु बतलाते हैं -

६१. *तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः।*
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

शब्दार्थ - तानि = उन इन्द्रियों को। सर्वाणि = सभी को। संयम्य = अच्छी तरह वश में करके। युक्तः = समाधिस्थ। मत्परः = मुझमें आसक्त तत्ववाला। आसीत= होना चाहिए। हि = क्यों कि। यस्य = जिनकी। इन्द्रियाणि = इन्द्रियों। वशे = वश में। (वर्तन्ते = हैं) तस्य = उसकी। प्रज्ञा = ज्ञान। प्रतिष्ठिता =स्थिर। भवति =होरही है।

भावार्थ - इसलिये साधकको चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यानमें बैठे; क्योंकि जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ वशमें होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है॥

व्याख्या - 'सर्वाणि' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट आदेश दिया गया है कि किसी एक इन्द्रिय को नहीं, सभी इन्द्रियों को अच्छी तरह वश में करना चाहिए। घडे में एक छेद हो तो सारा पानी बाहर निकल जाता है। एक खिडकी भी खुली रहे तो उसमें से अन्दर आनेवाली हवा से दीप बुझ जाता है। आगे चल कर भगवान कहते हैं कि तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नाव मिवाम्भसि (२-६७)।

इस श्लोक में दो साधन बताये गये हैं। (१) सब इन्द्रियों को विषय वासनाओं की ओर जाने न देना (२) मन को भगवान (आत्मा) में स्थित रखना। अर्थात्

दृश्य का निरोध करना और दृक्स्वरूप की शरण लेना। ये दोनों आवश्यक हैं। दृश्य का निरोध कर बैठने से फायदा नहीं होता, क्यों कि वह सुषुप्त स्थिति निद्रा में मनुष्य पा ही रहा है। इसलिए उसके साथ साथ आत्मा में स्थिरता एवं आत्मध्यान भी होना चाहिए। उधार चुका देना है, धन जमा कर लेना है। तभी जीव को शांति मिलेगी। साधक को जानना चाहिए कि वासनाक्षय तथा तत्वज्ञान दोनों आवश्यक हैं। केवल आत्मध्यान ही स्वीकार करें तो इन्द्रियाँ मन को बहिर्जगत् की ओर खींच लेती हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण बताते हैं कि इन्द्रियों का निरोध एवं आत्म चिंतन दोनों जरूरी हैं।

"युक्तः" अर्थात् दृश्य जगत् में न रम कर दृक्स्वरूप आत्मा से युक्त साधक है। "मत्परः" इसका अर्थ है मेरे प्रति आसक्त चित्तवाला। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान हैं। अतः हमें इसका अर्थ मेरे प्रति की जगह आत्मा के प्रति लेना चाहिए। सगुणाराधक श्रीकृष्ण के दिव्य मंगल रूप में मन को लीन करते हैं। ऐसे द्वैतभावी धीरे समझ जाते हैं कि श्रीकृष्ण उनकी आत्मा में ही स्थित हैं। तब द्वैत से अद्वैत की ओर, सगुण से निर्गुण की ओर आकृष्ट हो सकते हैं। इससे भक्ति मार्ग दोनों पर चलनेवालों के लिए गीता उपयोगी सिद्ध होती है। इस श्लोक का पहला पाद साधना और दूसरा पाद उस साधना के फलको सूचित करते हैं। इन्द्रियों पर अंकुश लगा कर मन को आत्मा में स्थापित करो, यह प्रथम पाद की सीख है। वैसे ही लोगों की आत्मानुभूति स्थिर रहती है, यह द्वितीय पाद की सीख है। इन्द्रिय निग्रह न हो तो आत्मा में स्थिरता नहीं होती। अगर होती भी तो इन्द्रियों के दबाव में आकर आत्मज्ञान की वह शक्ति क्षीण होती है। इसीलिए भगवान इस श्लोक में आदेश देते हैं कि आत्मज्योति को स्थिर रखने के लिए इन्द्रियाँ रूपी रन्ध्रों एवं खिडकी को बन्द करेगा उसीकी प्रज्ञा आत्मा में स्थिर रह सकेगी। इससे स्पष्ट होता है कि मोक्ष की प्राप्ति एवं आत्मा के साक्षात्कार के लिए इन्द्रियों का निग्रह कितना आवस्यक है।

प्रश्न - मोक्षप्राप्ति के साधन क्या हैं ?

उत्तर - (१) सब इन्द्रियों को विषय वासनाओंकी ओर जाने से रोकना (२) मन को आत्मा में स्थापित करना।

प्रश्न - किसका ज्ञान स्थिर रहता है ?

उत्तर - सब इन्द्रियां जिसके वश में होती हैं उसका ज्ञान स्थिर रहता है।

सम्बन्ध - भगवान विषय चिंतन के खतरों से आगाह कराते है-

६२. *ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।*
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

६३ *क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।*
स्मृतिभ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

पदार्थ - विषयान् = (शब्द स्पर्श आदि) विषयोंका। ध्यायतः = ध्यान करने-वाले। पुंसः = मनुष्य को। तेषु = उन विषयों में। सङ्गः = आसक्ति। उपजायते - होरही है। सङ्गात् = आसक्ति से। कामः = कामना। संजायते = उत्पन्न होता है। कामात् = कामना से; क्रोधः = क्रोध। अभिजायते = उत्पन्न होता है। क्रोधात् = क्रोध से। सम्मोहः = अविवेक। भवति = होता है। सम्मोहात् = अविवेक से। स्मृति विभ्रमः = भूलने की वृत्ति। (भवति = होती है।) स्मृति भ्रंशात् = भूलने की वृत्ति से। बुद्धिनाशः = बुद्धि का नाश (भवति = होता है)। बुद्धि नाशात् = बुद्धि के नाश से। प्रणश्यति = नष्ट हो रहा है।

भावार्थ - हे अर्जुन! मनसहित इन्द्रियोंको वशमें करके परायण न होनेसे मनके द्वारा विषयोंका चिन्तन होता है और विषयों को चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और काम में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है॥

क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढभाव से स्मृति में भ्रम होता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्ति का नाश हो जाता है और बुद्धि का नाश हो जाने से यह पुरुष अपनी स्थिति से गिर जाता है॥

व्याख्या - इन दोनों श्लोकों में स्पष्ट बताया गया कि विषय वासनाओं का चिंतन कितना बडा नष्टदायक है। मित्र की तरह अभिनय करके शत्रु धीरे से अंदर प्रवेश करता है। पहले थोडी जगह चाहता है। फिर सारी जगह अपने वश में कर लेता है। वामन की तरह व्याप्त होकर आश्रयदाता को ही मार डालता है। अंग्रेजी की एक कहावत है -

"Give me Room To Sit down and I can make Room To lie down " मुझे बैठने के लिए जगह काफी है। लेटने के लिए मैं ही जगह कर सकता हूँ।। '' पहले ईस्ट इंडिया कंपनीवाले व्यापार के बहाने भारत आये। प्रार्थना कर थोडी जगह ली। धीरे धीरे वे अपने क्षेत्र का विस्तार करते गये। अंत में समस्त भारत को अपने कब्जे में कर लिया। भारतीयों को दबा दिया। विषय वासनाओं का भी ऐसा ही मामला है।

पहले मनुष्य को कोई संकल्प नहीं होता। धीरे धीरे किसी एक दृश्य वस्तु के बारे में वह सोचने लगता है। तब मन से उस विषय का संबंध जुडता है। फिर वह संबंध इच्छा का रूप धारण करता है। उसीको काम कहते हैं। वह बडा नष्टदायक है। घर में चोर या सांप घुसे तो वे जितना नुकसान घरवालों को पहुंचाते हैं उससे भी बढ कर काम भावना मनुष्य को नुकासान पहुँचाती है। इसलिए जिस प्रकार चोर या सांप को घर से बाहर निकाल कर ही दम लेते हैं उसी प्रकार झट काम भावना को हृदय से निकाल देना चाहिए। आरंभिक स्थिति में ही उसे नष्ट कर देना चाहिए ताकि वह पनप न सके। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो अपने मित्रों, साथियों एवं समर्थकों को साथ लेकर घरवालों पर काम भाव आक्रमण कर उन्हें अपने पैरों तले कुचल देगा। वह विवरण गीताचार्य ने यहाँ बताया है। साधकों के लिए यह संदेश अत्यंत उपयोगी है। क्यों कि जीव से बताया गया कि उसके शत्रु कौन हैं ? वे किस तरह जीव के पास आकर उससे संबंध जोडते हैं। फिर अंदर प्रवेश कर किस तरह सारे घर को बरबाद कर देते हैं। काम अन्दर प्रवेश करते ही क्रोध को भी उभाड देता है। काम और क्रोध दोनों

आप्त मित्र हैं। एक दूसरे को छोड कर वे रह ही नहीं सकते। इच्छा की पूर्ति में बाधा डालनेवालों पर क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधी मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। आँखें लाल होती हैं। चित्त विकल होता है। उचित अनुचित व्यवहार को भूल जाता है। जोशीला बन कर बेखबर हो जाता है। इसीलिए यहाँ उसका सारा विवरण स्पष्ट समझाया गया है। भगवान ने सचेत किया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह विषय वासनाओं की ओर जाने से मन को रोक ले।

'ध्याय तो विषयान्' - इसकी एक विशेषता है। ध्यान अलभ्य वस्तु नहीं है। हर मनुष्य उससे जुडा रहता है। लेकिन मनुष्य विषय वासनाओं का ही ध्यान करता है। भगवान का ध्यान नहीं करता। अब उस पर ध्यान देकर चित्त को उस ओर से भगवान की ओर मोडना चाहिए। तब मोक्ष सरलता से मिल जाएगा। प्रह्लाद ने ऐसा ही किया। यहाँ मोह न कह कर सम्मोह कहा गया। भ्रम न कह कर विभ्रम कहा गया। नश्यति न कह कर प्रणश्यति कहा गया। इससे उन उन वस्तुओं तथा क्रियाओं के आधिक्य पर प्रकाश डाला गया है।

प्रश्न - जीव के विनाश का कारण क्या है?

उत्तर - (दृश्य) विषयों का चिंतन।

प्रश्न - वह किस प्रकार मनुष्य को गिरा देता है ?

उत्तर - विषय चिंतन से विषय संग होता है। इससे काम, कामसे क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से विस्मृति, विस्मृति से बुद्धि का नाश और बुद्धि के नाश से अधोगति आदि क्रम से प्राप्त होते हैं।

सम्बन्ध - इन्द्रियों तथा मन पर जो विजय प्राप्त करता है वह स्थितप्रज्ञ बनता है। संसार में उसके व्यवहार का विवरण देकर भगवान बताते हैं कि इससे वह कैसे फल पाता है।

६४. *रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।*
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

शब्दार्थ - तु = लेकिन। विधेयात्मा = स्वाधीन मनवाला। राग द्वेष वियुक्तैः =

राग द्वेष रहित। आत्म वश्यैः = अपने अधीन में स्थित। इन्द्रियैः = इन्द्रियों से। विषयान् = (शरीर धारणार्थ आवश्यक स्नान पान आदि) विषयों को। चरन = अनुभव करते हुए भी। प्रसादम् = मन की निर्मलता। अधिगच्छति = पा रहा है।

भावार्थ - अपने मन को वश में किया हुआ साधक राग द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों में अर्थात् खान पान आदि कार्यों में लगे रहनेपर भी मन की निर्मलता (शांति) प्राप्त करता है।

व्याख्या - इस श्लोक में बताया गया कि मन की निर्मलता अर्थात् शांति कौन पा सकता है। स्पष्ट कहा गया कि जिसका मन राग द्वेष रहित रहता है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं, वह अवश्य मन की शांति पाता है। देह की रक्षा के लिए वह यद्यपि खान पान संबंधी विषयों में लगा रहता है तथापि उसका मन निर्मल एवं शांत रहता है। विषैले दांतों के उखड जाने से जिस प्रकार सांप किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता उसी प्रकार राग द्वेष रहित मन, और इन्द्रियों के द्वारा सांसारिक कार्य करते हुए भी साधक का कुछ भी अनिष्ट नहीं होता। कहे अनुसार चलनेवाले घोडों के कारण वाहक जिस प्रकार मंजिल पर सही सलामत पहुँचता है, उसी प्रकार इन्द्रियों को काबू में रख सकनेवाला साधक सांसारिक कार्यों में रत रहने पर भी उसका मनःशांति पाता है और वह लक्ष्य तक पहुँचता है। यहाँ "आत्मवश्यैः, विधेयात्मा" दो शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनसे स्पष्ट होता है कि मन और इन्द्रियाँ मनुष्य के वश में रहे, मनुष्य मन और इन्द्रियों के वश में न रहे। संसार में ज्यादातर लोग मन और इन्द्रियों के गुलाम बने रहते हैं। ऐसे लोगों के चित्त को कभी भी शांति नहीं मिलेगी। चाहे वह धनी हो, बली हो या विद्वान हो जब तक मन और इन्द्रियों को वश में नहीं रखता तब तक शांति नहीं पाता। इसीलिए भगवानने इस श्लोक के द्वारा स्पष्ट घोषित किया है कि जो मनुष्य अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखेगा वही शांति पाएगा। अतः हर मनुष्य को चाहिए कि वह मन और इन्द्रियों का गुलाम न बने, उनपर विजयी

होकर शांति और निर्मलता प्राप्त करे। विवेक, वैराग्य तथा भगवद्भक्ति के द्वारा अपने मन और इन्द्रियों को वश में रख ले, सांसारिक बन्धनों से मुक्त रहे, आत्मिक आनन्द का अनुभव करे।

प्रश्न - शांति और निर्मलता कौन पा सकता है ?

उत्तर - (१) जो रागद्वेष से रहित हो (२) जो अपने मन और इन्द्रियों को वश में रख सके, वही शांति और निर्मलता प्राप्त कर सकता है।

६५. ***प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।***
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

शब्दार्थ - प्रसादे = मन की निर्मलता पाने पर। अस्य = इसे। सर्व दुःखानाम् = सब दुःखों का। हानिः = विनाश। उपजायते = होता है। प्रसन्न चेतसः = निर्मल मनवाले की। बुद्धिः = बुद्धि। आशु = शीघ्र ही। पर्य वतिष्ठतिहि (परमात्मा में) स्थिर होती है।

भावार्थ - अन्तःकरणकी प्रसन्नता होनेपर इसके सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव हो जाता है और उस प्रसन्न चित्तवाले कर्मयोगीकी बुद्धि शीघ्र ही सब ओरसे हटकर एक परमात्मामें ही भलीभाँति स्थिर हो जाती है॥

व्याख्या - हर मनुष्य दुःख राहित्य और आनन्द की प्राप्ति चाहता है। वह कैसे मिले ? उसीका मार्ग इस श्लोक में भगवान सूचित करते हैं। मन निर्मल हो तो जीव को वे तत्व प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में वस्तु अच्छी तरह प्रतिबिंबित होती है, उसी प्रकार शुद्ध अंतःकरण एवं प्रशांत चित्त में आत्मा का उज्वल स्वरूप स्थित रहता है। श्री वशिष्ठ मुनिने कहा-

'मोक्षो हि चेतो विमलं सम्यग्यान विबोधितम्' 'उत्तम ज्ञान के विचार से विलसित (वशिष्ठ गीता) निर्मल चित्त ही मोक्ष है।' पतंजलि महर्षिने भी यही विचार प्रकट किया। इसलिए जो मुमुक्षु मोक्ष चाहते हैं उन्हें अपने चित्त को विषय वासनाओं के प्रभाव से मुक्त कर लेना चाहिए। ऐसा करने से दो लाभ होंगे। (१) सभी दुःख दूर होंगे। (२) बुद्धि जल्दी आत्मा में स्थित होगी।

'दुःख राहित्य एवं आनन्द की प्राप्ति' ये दोनों मन की निर्मलता से प्राप्त होते हैं। " सर्व दुःखानां" कहा गया। इससे स्पष्ट होता है कि एक दो दुःख नहीं, आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक सभी दुःख दूर होंगे। सांसारिक विषय वासनाओं में लगे दुःखी एवं अशांत लोगों के लिए इससे बढ कर दूसरा सुलभ उपाय नहीं है। इसीलिए कृपालु भगवानने लोगों के आत्मिक सुख एवं आत्मिक शांति के लिए यह मार्ग सुझाया है।

चित्त की निर्मलता से आनन्द की प्राप्ति होती है। कहा गया है कि बुद्धिः पर्यवतिष्ठति' चित्त जब निर्मल होगा तब वह आत्मा में स्थित होगा। आत्मा का मतलब है सच्चिदानन्द सागर। ब्रह्मानंद का सागर। ऐसी आत्मा में चित्त जब स्थित होगा तब साधक का लक्ष्य पूरा होगा। इसलिए इस श्लोक के द्वारा स्पष्ट किया गया कि दुःख राहित्य एवं आनन्द की प्राप्ति के लिए मन की निर्मलता का प्रयास साधक को करना चाहिए।

प्रश्न - सभी दुःखों के शमन का उपाय क्या है ?

उत्तर- मन को निर्मल बनाना ही इसका उपाय है।

प्रश्न - किसकी बुद्धि आत्मा में स्थिर होती है?

उत्तर - निर्मल चित्तवाले की बुद्धि आत्मा में स्थिर रहती है।

प्रश्न - मन की निर्मलता से प्राप्त होनेवाले प्रयोजन क्या क्या हैं ?

उत्तर - (१) सभी दुःख दूर है। (इससे आनन्द की प्राप्ति होती है)

सम्बन्ध - इस प्रकार मन और इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्तभावसे इन्द्रियों द्वारा व्यवहार करनेवाले साधक को सुख, शान्ति और स्थितप्रज्ञ-अवस्था प्राप्त होने की बात कहकर अब दो श्लोकों द्वारा इससे विपरीत जिसके मन-इन्द्रिय जीते हुए नहीं हैं, ऐसे विषयासक्तमनुष्यमें सुख-शान्तिका अभाव दिखलाकर विषयोंके सङ्गसे उसकी बुद्धिके विचलित हो जाने का प्रकार बतलाते हैं-

६६. *नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।*
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

शब्दार्थ - अयुक्तस्य = इन्द्रिय निग्रह रहित व्यक्ति को। बुद्धिः = विवेक। नास्ति = प्राप्त नहीं होता। अयुक्तस्य = इन्द्रिय निग्रह रहित व्यक्ति को। भावना च = आत्म चिंतन। न = प्राप्त नहीं होता। अभावयतः = आत्मचिंतन से रहित व्यक्ति को। शान्तिः = शांति। न = प्राप्त नहीं होती। अशान्तस्य = शांति रहित व्यक्ति को। सुखम् = सुख। कुतः = कहाँ ?

भावार्थ - न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है ?

व्याख्या - हर प्राणी सुख और आनंद चाहता है। वे कैसे मिलेंगे ? दृश्य पदार्थों तथा विषय वासनाओं से जो सुख मिलता है वह वास्तविक नहीं है। वह सुख का आभास मात्र है। वह सुख क्षणिक है। पूर्ण एवं अविच्छिन्न सुख जीव को तभी प्राप्त होता है जब कि उसके चित्त में शांति स्थापित होती है। अशांत चित्त सुखी नहीं हो सकता। फिर प्रश्न उठता है कि ऐसी शांति कैसे मिलेगी ? नश्वर सांसारिक पदार्थों का चिंतन से वह नहीं मिलेगी। थोडी सी शांति मिल भी जाय तो भी वह स्थिर नहीं रह सकती। आत्मा और आत्मा का चिंतन करने से वह प्राप्त होगी। लेकिन आत्मचिंतन अशुद्ध चित्तवाले नहीं कर सकते। चित्त शुद्ध रहे तो आत्मचिंतन की शक्ति जीव में पैदा होगी। इन्द्रिय निग्रह एवं मन के संयमन से बुद्धि शुद्ध होगी।

सुख चाहते हो - तो - शांति प्राप्त करो।
शांति चाहते हो - तो - आत्मचिंतन करो।
आत्मचिंतन चाहते हो - तो - निर्मल बुद्धि प्राप्त करो।
निर्मल बुद्धि चाहते हो - तो - इन्द्रिय निग्रह का प्रयास करो।

यही बात इस श्लोक में भगवान ने बतायी है। इन्द्रिय निग्रह पर भगवानने ज्यादा जोर दिया है। अतः परम सुख को जीवन का लक्ष्य बनाकर उसकी प्राप्ति के

लिए इन्द्रियों को काबू में रखने का प्रयास हर जीव को करना चाहिए।

१. **प्रश्न** - सुख किससे मिलेगा ?

उत्तर - शांति से मिलेगा।

२. **प्रश्न** - शांति किससे मिलेगी ?

उत्तर - आत्म चिंतन से मिलेगी।

३. **प्रश्न** - आत्म चिंतन किससे मिलेगा ?

उत्तर - निर्मल बुद्धि से मिलेगा।

४. **प्रश्न** - निर्मल बुद्धि किससे मिलेगी ?

उत्तर - इंद्रिय निग्रह से, मन को संयमित करने से और विषय वासनाओं की विरक्ति से मिलेगी।

६७ *इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनु विधीयते।*
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि ॥

शब्दार्थ - चरतां इन्द्रियाणाम् = विषयों में विचरित हो रहे इन्द्रियों में। यत् = जिस इन्द्रिय का। मनः = मन। अनुविधीयते = अनुसरण करता है। तत् = उस इन्द्रिय को। अस्य = इसके। प्रज्ञाम् = विवेक को। अंभसि = पानी में। नावम् = नाव को। वायुरिव = वायु की भांति। हरतिहि = हरण कर लेती है।

भावार्थ - क्योंकि जलमें वायु नावको जैसे हर लेता है वैसे ही विषयों में विचरती हुई इन्द्रियोंके बीचमें जिस इन्द्रियके साथ मन रहता है, वह एक ही इन्द्रिय इस अयुक्त पुरुष की बुद्धिको हरण कर लेती है॥

व्याख्या - साधक को शब्द स्पर्श आदि से विरक्त रहना चाहिए। ऐसा न होकर इन्द्रियाँ स्वेच्छा से विषय रूपी जंगल में संचार करती रहें तो जो खतरा होगा, उसका स्पष्टीकरण इस श्लोक में किया गया है। विषय वासनाओं में जो इन्द्रिय लीन रहती है उसका अनुसरण मन करे तो वह इन्द्रिय मनुष्य को संसाररूपी कूप में धकेल देगी। इसके समर्थन में सुंदर उदाहरण यहाँ दिया गया है। समुंदर में जहाज चलता रहता है। तूफान आजाय या प्रतिकूल वायु तेजी से चले तो

जहाज भटक जाएगा। वह अपमार्ग पर चल पडेगा या समुंदर में डूब जाएगा। इसी प्रकार मन कापीछा करनेवाली इन्द्रिय मनुष्य को दैवीमार्ग से हटा कर संसार रूपी कूप में ढकेल देती है। जब एक इन्द्रिय ही मन का बडा अनर्थ कर सकती है तो सभी इन्द्रियाँ मन को वश में कर लें तो विनाश की सीमा ही नहीं रहती।

इसलिए मन को विवेक से भर कर इन्द्रियों के पीछे पडने से उसे रोकना चाहिए। उन्हें काबू में कर लेना चाहिए। अगर ऐसा न हो, मन इन्द्रियों के काबू में हो तो इन्द्रियाँ मनुष्य की प्रज्ञा एवं विवेक को खाक में मिला देंगी। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह अपने मन पर अंकुश रखे। उसे इन्द्रियों से जनित विषयवासनाओं में फंसने न दे। अपने विवेक और आत्मचिंतन की शक्ति की रक्षा करे। इन्द्रियों के दरवाजे सब बंद कर दे, विषवायु के स्पर्श से इन्द्रियों को बचा ले। यही रहस्य इस श्लोक में बताया गया है। कई साधक यद्यपि विवेक एवं आत्मचिंतन से काम लेकर चित्त को शांत रखते हैं, परन्तु असावधानी से मन को विषय वासनाओं की ओर जाने देते हैं तो उनकी सारी प्रज्ञा नष्ट होजाती है। ऐसे लोगों को भगवानने इस श्लोक के द्वारा चेतावनी दी है। अतः साधकों को चाहिए कि भगवानने जो उपदेश इस श्लोक में दिया उसका पालन अपने जीवन में करें। अपने आच रण एवं अनुष्ठान पर कडी निगरानी रखें।

प्रश्न - इन्द्रियाँ और मन विषय वासनाओं में संचार करें तो कौन सा नुकसान होगा ?

उत्तर - वे इन्द्रियाँ और मन जो विषयवासनाओं में संचार करते रहते हैं, मनुष्य की प्रज्ञा, भगवद्भक्ति को नष्ट कर देते हैं।

सम्बन्ध - इस प्रकार अयुक्त पुरुषकी बुद्धिके विचलित होनेका प्रकार बतलाकर अब पुनः स्थितप्रज्ञअवस्थाकी प्राप्ति में सब प्रकारसे इन्द्रियसंयमकी विशेष आवश्यकता सिद्ध करते हुए स्थितप्रज्ञ पुरुषकी अवस्थाका वर्णन करते हैं-

६८. ***तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।***
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

शब्दार्थ - महाबाहो = महाबाहुओंवाले हे अर्जुन ! तस्मात् = इसलिए। यस्य

= जिसकी। इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ। इन्द्रियार्थेभ्यः = विषयों से। सर्वशः = सभी तरह से। निगृहीतानि = निग्रह की हुई हैं। तस्य = उसके। प्रज्ञा = ज्ञान (विवेक) प्रतिष्ठिता = स्थिर रहता है।

भावार्थ - इसलिये हे महाबाहो! जिस पुरुषकी इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है।।

व्याख्या - "सर्वशः" - कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि सभी इन्द्रियों का निग्रह अत्यंत आवश्यक है। एक दो इन्द्रियों के निग्रह से कोई फायदा नहीं होगा। भगवान इस श्लोक में जोर देकर कहते हैं कि शब्द स्पर्श आदि की ओर जाने से मन और इन्द्रियों को साधक रोक ले, तभी उसकी बुद्धि स्थिर रहेगी और वह आत्मा में स्थित होगी। बार बार भगवान के जोर देकर कहने से स्पष्ट होता है कि इन्द्रिय निग्रह का कितना बडा महत्व है। लोग चाहते हैं कि हमारे दुःख दूर हों, सांसारिक यातनाएँ दूर हों और हमें मोक्ष प्राप्त हो। परन्तु उनकी प्राप्ति के लिए लोगों को जिस साधना की आवश्यकता है उस पर ध्यान नहीं देते। अतः लोगों को चाहिए कि वे भगवान के बताये मार्ग पर चलें, इन्द्रियों को काबू में रखें और परमानन्द प्राप्त करें।

प्रश्न - किसकी प्रज्ञा स्थिर रह सकती है?

उत्तर - जो अपनी सभी इन्द्रियों को काबू में रख सकता है। उसकी प्रज्ञा स्थिर रह सकती है।

सम्बन्ध - यहाँ भगवान सामान्य जनों एवं संयमी योगियों की प्रवृत्ति का अंतर बतलाते हैं-

६९. ***या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।***
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ।।

शब्दार्थ - सर्वभूतानाम् = सभी प्राणियों को। या = जो। निशा = रात है। तस्याम् = उसमें। संयमी = इन्द्रिय निग्रही योगी। जागर्ति = जागा रहता है। यस्याम् = जिसमें। भूतानि = प्राणी। जाग्रति = जागे रहते हैं। सा = वह।

पश्यतः = परमात्मा के तत्व के जाननेवाले। मुनेः = मननशील को। निशा = रात्रि। (भवति = होती है)

भावार्थ - सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये जो रात्रिके समान है, उस नित्य ज्ञानस्वरूप परमानन्दकी प्राप्ति में स्थितप्रज्ञ योगी जागता है और जिस नाशवान् सांसारिक सुखकी प्राप्ति में सब प्राणी जागते हैं, परमात्माके तत्त्व जाननेवाले मुनिके लिये वह रात्रिके समान है॥

व्याख्या - यह श्लोक आलंकारिक भाषा में है। इस में बताया गया है कि अज्ञानियों के लिए जो रात है वह ज्ञानियों के लिए दिन है। ज्ञानियों के लिए जो दिन है वह आज्ञानियों के लिए रात है। इसका भाव जानना आवश्यक है। आत्मा, दैव और इन्द्रिय निग्रह वगैरह पारमार्थिक विषय अज्ञानियों को मालूम् नहीं हैं। मालूम करने की इच्छा भी उन्हें नहीं रहती। इसलिए वे उनके लिए रात के समान हैं। ऐसे पारमार्थिक विषयों के प्रति उन्हें रुचि भी नहीं रहती। अतः सोते रहते हैं। परन्तु संयमी ज्ञानियों का व्यवहार इसके विपरीत रहता है। वे निरंतर भागवान के ध्यान में लगे रहते हैं। आत्मा के बारे में सचेत रहते हैं। ब्रह्मानुभूति में जागृत रहते हैं। ईश्वर चिंतन में ज्ञानी जागे रहते हैं। अ ज्ञानी सोते रहते हैं। ज्ञानियों के लिए जो रात है वह अज्ञानियों के लिए दिन है। ज्ञानियों के लिए जो दिन है वह अज्ञानियों के लिए रात है।

ज्ञानी महानुभाव इन्द्रियों को वश में रखते हैं। विषय वासनाओं के प्रति विरक्त रहते हैं। नाम रूपात्माक दृश्य जगत् को मिथ्या समझते हैं। सांसारिक विषयों से विरक्त रहते हैं। वे उन्हें दिखायी नहीं देते। इसलिए भोग विलास तथा विषय वासनाएँ सब ज्ञानियों को रात के समान लगते हैं। अतः उनसे विमुख होकर वे सोते रहते हैं। लेकिन अज्ञानियों के लिए भोग विलास अत्यंत होते हैं। रात दिन उनका अनुभव करते हुए उन्हीं में लगे रहते हैं। इस प्रकार ज्ञानियों के लिए जो रात है वह अज्ञानियों के लिए दिन है।

रात में संचार करनेवाले जीव जंतु बहुत हैं। बिल्ली, चमगीदड, उल्लू,

राक्षस तथा खूँख्वार जानवर आदि। लोगों के लिए जो दिन है वह उनके लिए रात है। अ ज्ञानी निशाचरों की श्रेणी के हैं। ज्ञानी दिनचरों की श्रेणी के हैं।

'संयमी' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट होता है कि जो पूर्ण रूप से इंद्रियों को वश में रखता है वह आत्मा के बारे में सचेत रहता है। जो संयमी नहीं होता वह ईश्वर (आत्मा) से अनभिज्ञ रहता है। इस तरह यहाँ स्पष्ट किया गया है कि आध्यात्मिक क्षेत्र में संयम (इन्द्रिय निग्रह) का कितना बडा महत्व है।

'पश्यतो मुनेः' - मुनि का मतलब है मननशील। मुनि बहुत रह सकते हैं परन्तु उनमें आत्मदर्शी मुनि बहुत कम रहते हैं। 'पश्यतः' शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि भगवान (आत्मा) को प्रत्यक्षरूप से देखा जासकता है। उसकी अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। उस स्थिति को प्राप्त करना हर एक का कर्तव्य है। इस श्लोक में बताया गया है कि हर प्राणी को विषय वासनाओं को त्यागना चाहिए। इन्द्रियों को वश में रखना चाहिए। सदा जागृत रहना चाहिए।

प्रश्न - अज्ञानी और ज्ञानी में अंतर क्या है ?

उत्तर - अज्ञानी - ईश्वर के प्रति विमुख रहता है। विषय वासनाओं में लगा रहता है।

ज्ञानी - ईश्वर के प्रति सदा रुचि रखता है। विषय वासनाओं के प्रति विमुख रहता है।

सम्बन्ध - इस प्रकार रात्रिके रूपकसे ज्ञानी और अज्ञानियोंकी स्थितिका भेद दिखलाकर अब समुद्रकी उपमासे यह भाव दिखलाते हैं कि ज्ञानी परम शान्तिको प्राप्त होता है और भोगोंकी कामनावाला अज्ञानी मनुष्य शान्तिको प्राप्त नहीं होता-

७०. आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

शब्दार्थ - आपूर्यमाणम् = जल से सब तरह से भरपूर। अचल प्रतिष्ठं = स्थिर प्रतिष्ठावाले। समुद्रम् = समुद्र को। आपः = जल। यद्वत् = जिस रीति से।

प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं। तद्वत् = उसी रीति से। सर्वे कामाः = सब कामनाएँ। यम् = जिस मनुष्य में। प्रविशन्ति = प्रवेश करते हैं। सः = वह मनुज। शांन्तम् = शान्ति को। आप्नोति = पाता है। कामकामी = भोगों को चाहनेवाला। न (आप्नोति) = प्राप्त नहीं करता।

भावार्थ - जैसे नाना नदियों के जल जब सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं।।

व्याख्या - 'कामाः' शब्द का अर्थ यहाँ इच्छाएँ कहना ठीक नहीं लगता। क्यों कि ब्रह्मज्ञानी एवं स्थितप्रज्ञ की इच्छाएँ नहीं होती। अतः काम्यन्ते, इति कामाः वाले व्युत्पत्ति-अर्थ के अनुसार चाहे जानेवाले भोग विषय कहना समीचीन लगता है।

इस श्लोक में बताया गया है कि शांति कौन पासकता है। स्पष्ट किया गया कि काम के दास, विषयों में आसक्त, और इच्छाओं के दास कभी शांति नहीं पा सकते। अकामकामी जो कामनाएँ नहीं करता, जो विषय वासनाओं के प्रति आसक्त नहीं रहता, और जो काम पर जीत पाता है वह शांति पासकता है। इस बात के स्पष्टीकरण के लिए यहाँ एक दृष्टांत बताया गया है। ज्ञानी की उपमा समुद्र से दी गयी। समुद्रका जल यद्यपि सूर्य की गर्मी से भाप बन कर मेघों का रूप धारण करता है तथापि वह जल कम नहीं होता। इसी प्रकार कितनी ही नदियों, तथा वर्षा का पानी समुद्र में आजाता है तब भी समुद्र का जल बढ नहीं जाता। समान रहता है। इसी प्रकार ज्ञानी एवं स्थितप्रज्ञ चाहे इन्द्रियों से संबंधित शब्दादि का स्पर्श हो या न हो, निर्विकार बने रहते हैं। विचलित नहीं होते। 'सर्वे कामाः' कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि एक नहीं चाहे जितने भी भोग-विषय आ जायँ, सब के सब दब जाते हैं। उनका असर स्थितप्रज्ञ पर नहीं पडता। अर्थात् यद्यपि वह विषयों से घिरा रहता है तथापि उनसे विचलित नहीं

होता। निर्विकार बना रहता है।

श्री वसिष्ठ मुनींद्रने कहा -

ज्ञात ज्ञेयस्य मनसो नून में तत्थि लक्षणम्।
न स्वदन्ते समग्राणि भोगवृन्दानि यत्सुवः ।।

इसके अनुसार भोग विलास में आसक्ति का न होना ही आत्मज्ञानी का लक्षण है। वही उसकी पहचान है। यदि आसक्ति रहती है तो समझना चाहिए कि ज्ञान की स्थिति उसे प्राप्त नहीं हुयी। जिस प्रकार समुद्र महाजल से भरा रहता है उसी प्रकार ज्ञानी ब्रह्मानंद से भरा रहता है। जिस प्रकार समुद्र अचल होकर प्रतिष्ठित रहता है उसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष, निर्विकार और निश्चल रह कर मेरु समान गंभीर बना रहता है। ताल-तलैयों, नदी-नालों और कूप-झीलों में जल जब बेहद भर जाता है तब वह किनारों को तोड कर बाहर उमड पडता है। लेकिन गर्मी के दिनों में या वर्षा के अभाव में वे सूख जाते हैं। अज्ञानियों की भी यही दशा होती है। अज्ञानियों एवं ज्ञानियों में यही अंतर होता है। यही बात इस श्लोक में बतायी गयी है। कामी कभी शांति नहीं पा सकता। इसलिए मनुष्य को काम त्यागना चाहिए। विषयों की आसक्ति त्याग कर कामना रहित होना चाहिए। उसे कभी कामनायुक्त नहीं होना चाहिए।

यहाँ और एक रहस्य है। समुद्र कभी भी नदियों तथा तालाबों आदि के जल की कामना नहीं करता। वही खुद आकर समुद्र में मिलता है। इस तरह ज्ञानी भी कभी कुछ नहीं चाहता। फिर भी दैनिक व्यवहारों में कभी इत्तिफाक से शब्दादि विषयों की प्राप्ति हो तो भी वह विचलित नहीं होता। निर्विकार बना रहता है। इसलिए जो लोग शांति चाहते हैं उन्हें इस श्लोक का विशेष कर 'सशान्ति माप्नोति न काम कामी' वाले अंतिम चरण का खूब मनन करना चाहिए। फिर अपने हृदय में छिपीं एक एक इच्छा व कामना को चुन चुन कर उखाड कर बाहर फेंक देना चाहिए। तब जो आत्मानंद एक परमशांति की प्राप्ति होती है उससे लाभ उठाना चाहिए।

प्रश्न - शांति कौन पा सकता है ?

उत्तर - कामना रहित, विषय वासनाओं से विरक्त, समुद्र की तरह निर्विकार रहनेवाला शांति पाता है। कामी, विषयवासनाओं के प्रति आसक्त प्राणी, कभी शांति नहीं पा सकता।

सम्बन्ध - 'स्थितप्रज्ञ कैसे चलता है ?' अर्जुनका यह चौथा प्रश्न था। अब भगवान दूसरे चौथे प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देते हुए स्थितप्रज्ञ पुरुषके आचरणका प्रकार बतलाते हैं-

७१. विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

शब्दार्थ - यःपुमान् = जो मनुष्य। सर्वान् = समस्त। कामान् = कामनाओं को। विहाय = छोड कर। निस्पृहः = उन के प्रति आसक्ति रहित। निर्भयः = ममकार रहित। निरहंकारः = अहंकार रहित होकर। चरति = संचार कररहा है। सः = वह। शान्तिम् = शांति। अधिगच्छति = पारहा है।

भावार्थ - जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है॥

व्याख्या - स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के बारे में अर्जुनने चार प्रश्न पूछे। वे निम्न प्रकार हैं -

(१) का भाषा ? (उसके लक्षण क्या हैं ?) (२) किं प्रभाषेत = क्या बोलता है? (३) किमासीत् = किस रीति से रहता है ? (४) व्रजेत किम् = कैसे व्यवहार करता है ?

(१) गीता के दूसरे अध्याय के ५५ वें श्लोक से लेकर अध्याय के अंत तक जितने श्लोक हैं उन सब में स्थितप्रज्ञ के सामान्य लक्षण बताये गये हैं। वे प्रथम प्रश्न के समाधान हैं। (२) ५५ वें श्लोक से ५७ वें श्लोक तक द्वितीय प्रश्न के समाधान हैं। (३) ५८ वें श्लोक से ६१ वें श्लोक तक तृतीय प्रश्न के समाधान

है। (४) ७१ वाँ श्लोक चतुर्थ प्रश्न का समाधान है। शांति किसे मिल सकती है उसका विवरण फिर से इस श्लोक में दिया गया है। जो शांति एवं सुख पाना चाहते हैं उन्हें चार साधनों को आचरण में लाना चाहिए। वे चार साधन निम्न प्रकार हैं-

(१) सभी इच्छाओं और शब्द आदि विषयों को त्यागना। (२) उनके प्रति थोडी सी कामना भी न करना। (३) अहंकार को दूर करना (४) ममकार का विसर्जन। अब इन चारों का विश्लेषण करेंगे।

(१) स्थितप्रज्ञ के बारे में प्रारंभ में भगवानने कहा कि प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्' (सभी कामनाओं को त्यागना चाहिए) वही बात फिर से इस श्लोक में बतायी है। 'सर्वान्' शब्द पर ध्यान देना आवश्यक है। इसका मतलब है कि एक भी कामना या विषय हृदय में न रहे। क्यों कि वही धीरे धीरे बढ कर साधना के मार्ग में अवरोध बनेगा। अतः सब कुछ त्याग कर हृदय को वासना रहित बनाना चाहिए। (२) विषय वासनाओं को त्यागने के बाद फिर से उनके स्मरण और चिंतन से मन को दूर रखना चाहिए। (३) अहंकार को पास पटकने नहीं देना चाहिए। वास्तव में शरीर आदि मनुज नहीं है, आत्मा ही मनुज है, इस भावना को हृदयंगम कर लेना चाहिए। (४) जब शरीर ही अपना नहीं है तो उनसे परे गृह द्वार, दारा सुत आदि अपने कैसे हो सकेंगे ? इसलिए उनकी ममता त्यागनी चाहिए। भगवान बताते हैं कि इस प्रकार जो मनुज उपर्युक्त चार साधनों का अनुष्ठान करेगा वह परम शांति पाएगा। जो ऐसी साधना नहीं करेगा वह सांसारिक चक्कर में फंस कर अशांति एवं दुःख पाता रहेगा।

इस श्लोक में ''यः'' (जो) शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे स्पष्ट है कि चाहे वह किसी भी जाति, किसी भी कुल, किसी भी लिंग, किसी भी वर्ग तथा किसी भी वर्ण का क्यों न हो यदि उपर्युक्त साधना में सफलता प्राप्त कर सके तो शांति एवं मोक्ष अवश्य प्राप्त करेगा। गीता में सर्वत्र ऐसे ही उदार और महान् विचार प्रकट हुए हैं।

प्रश्न - शांति कौन पा सकते हैं ?

उत्तर - (१) जो सब कामनाओं और विषयों को त्याग देंगे वे ही शांति पा सकेंगे। (२) किसी भी दृश्य पदार्थ के प्रति जिसकी आसक्ति नहीं होगी वे शांति पा सकेंगे हैं। (३) जो अहंकार को दूर कर लेंगे वे शांति पा सकेंगे। (४) जो ममकार को त्याग देंगे वे, शांति पा सकेंगे।

सम्बन्ध - इस प्रकार अर्जुनके चारों प्रश्नोंका उत्तर देनेके अनन्तर अब स्थितप्रज्ञ पुरुष की स्थिति का महत्त्व बतलाते हुए इस अध्याय का उपसंहार करते हैं-

७२. एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

शब्दार्थ - पार्थ = हे अर्जुन। एषा = यह। ब्राह्मी स्थिति = ब्रह्म प्राप्ति की स्थिति। एनाम् = इसे। प्राप्य = पाकर। न विमुह्यति = विमोह नहीं पाएगा। अन्तकालेऽपि = अन्त्यकाल में भी। अस्याम् = इस स्थिति में। स्थित्वा = स्थित होकर। ब्रह्म निर्वाणम् = ब्रह्मानन्द को। ऋच्छति = पाता है।

भावार्थ - हे अर्जुन! यह ब्रह्मको प्राप्त पुरुषकी स्थिति है, इसको प्राप्त होकर योगी कभी मोहित नहीं होता और अन्तकालमें भी इस ब्राह्मी स्थितिमें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है॥

व्याख्या - स्थितप्रज्ञ के संबंध में जो साधन अर्थात् इन्द्रिय निग्रह, विषय त्याग, तथा अहंकार एवं ममकार का त्याग आदि बताये गये हैं उनका अनुष्ठान करते रहने से जीव और ब्रह्म की एकता साध्य होगी। कीटक जिस तरह भ्रमर के रूप में बदलता है उसी तरह जीव ब्रह्म का स्वरूप पाता है। वही ब्राह्मी स्थिति है। उस स्थिति में रह कर जीव ब्रह्मानन्द से भर जाता है। फिर कभी भी सांसारिक भ्रमों में नहीं पडता। मोह में नहीं फंसता।

"अन्तकालेऽपि" संस्कृत में अपि का अर्थ है 'भी'। अन्तकालेऽपि अर्थात् अन्त्यकाल में भी ऐसी ब्राह्मीस्थिति में रहनेवाला निर्वाण प्राप्त करेगा। इसलिए यहाँ अपि का अर्थ ही नहीं है। ऐसा अर्थ निकाला जाय तो लोग जीवनपर्यंत

आलसी एवं भोगी रह कर अन्त्यकाल में भगवध्यान पर ध्यान देने को तैयार होगे। इसका मतलब यह नहीं कि अन्त्यकाल में भगवान का ध्यान नही करना चाहिए। संभव है कि कई कारणों से जीव का ध्यान भगवान पर न गया हो, परन्तु अंत्य समय में भगवान का ध्यान करें तो शारीरिक एवं मानसिक दुर्बलता के कारण साधना ठीक तरह से नहीं हो सकती, ईश्वर की साधना, इन्द्रिय निग्रह तथा काम पर जीत एक जन्म में संभव होनेवाली चीज़ें नहीं हैं। जन्म जन्म से जमीं काम वासनाएँ क्या क्षण भर में समाप्त हो सकती हैं ? दीर्घ काल तक बुद्धि बल तथा शारीरिक शक्ति के सहारे साधना करने पर ही ये वासनाएँ हार मन कर नष्ट हो जाएँगी। अतः स्वास्थ्य, शक्ति, प्रज्ञा एवं स्मृति के सौष्ठववाले बाल्य एवं यौवन काल ही ऐसी साधना के लिए उपयुक्त हैं। इसीलिए भगवानने ८ वें अध्याय में कहा है-

'तस्मा' त्सर्वेषु कालेषु मा मनुस्मर युध्यच'' सभी कालों में भगवान का चिंतन करने को कहा है न कि अन्त्यकाल में। इसके अलावा जीवन भर जिसकी साधना करेंगे, जिस नाम को उच्चिरत करेंगे, वही अन्त्य काल में काम आएगा। ऐसा न कर केवल अन्त्यकाल में ही (वह भी ठीक ही है) शुरू करेंगे तो तब भगवान की स्मृति दृढ नहीं रह सकती। अत. अन्त्यकाल में भगवान का चिंतन दृढ औरस्थिर रखना चाहें तो बाल्य एवं यौवन काल में ही इसके लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिए।

कोई यह नहीं कह सकता कि अन्त्यकाल ठीक फलाने वक्त सकेगा। अत बाल्य एवं यौवन काल से ही साधना शुरू करें तो अन्त्यकाल जब कभी भी आ जाय, चिंता नहीं होगी। इसलिए साधकों को इसबारे में सतर्क रहना चाहिए। बुढापे के आने तक रुके रहने की जरूरत नहीं है। बाल्य एवं यौवन काल में साधना करते हुए ब्राह्मी स्थिति पाने और उसे स्थिर रखने का प्रयास करते रहना चाहिए।

प्रश्न - ब्राह्मीस्थिति माने क्या है ?

उत्तर - इन्द्रिय निग्रह, काम पर विजय तथा आत्मचिंतन से जो ब्रह्मानुभूति प्राप्त होगी वही ब्राह्मीस्थिति है।

प्रश्न - वह स्थिति कब से प्राप्त करनी चाहिए ?

उत्तर - बाल्य, यौवन तथा अन्त्यकाल में भी प्राप्त करनी चाहिए।

प्रश्न - उसका क्या प्रयोजन है ?

उत्तर - जीव ब्रह्मानन्द स्वरूप मोक्ष प्राप्त करेगा।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥

उपनिषत्प्रतिपादित, ब्रह्म विद्या, योगशास्त्र और श्रीकृष्णार्जुन संवाद युक्त श्री भगवद्गीता का सांख्ययोग शीर्षक यह दूसरा अध्याय है।

ॐ तत् सत्

गीता मकरंद

भाग -१

श्लोकों की अनुक्रमणिका

अ

	अ.	श्लो.
अकीर्तिं चापि भूतानि	२	३४
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्	२	२४
अत्रशूरा महेष्वासाः	१	४
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यम्	२	३३
अथ चैनं नित्यजातम्	२	२६
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा	१	२०
अधर्माभिभवात्कृष्ण	१	४१
अनन्तविजयं राजा	१	१६
अन्तवन्त इमे देहाः	२	१८
अन्ये च बहवः शूराः	१	९
अपर्याप्तं तदस्माकम्	१	१०
अयनेषु च	१	११
अवाच्यवादांश्च	२	३६
अविनाशि तु	२	१७
अव्यक्तादीनि	२	२८
अव्यक्तोऽयम्	२	२५
अशोच्यानन्व	२	११
अस्माकं तु विशिष्टा ये	१	७
अहो बत महत्पापम्	१	४५

आ

	अ.	श्लो.
आचार्याः पितरः पुत्राः	१	३४
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठम्	२	७०
आश्चर्यवत्पश्यति	२	२९

इ

	अ.	श्लो.
इन्द्रियाणां हि चरताम्	२	६७

उ

	अ.	श्लो.
उत्सन्नकुलधर्माणम्	१	४४
उत्सीदेयुरिमे लोकाः	३	२५
उद्धरेदात्मनात्मानम्	६	५

ए

	अ.	श्लो.
एतान्न हन्तुमिच्छामि	१	३५
एवमुक्तो हृषीकेशः	१	२४
एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये	१	४७

अ. = अध्याय; श्लो. = श्लोक।

	अ.	श्लो.
एवमुक्त्वा हृषीकेशम्	२	९
एषा तेऽभिहिता सांख्ये	२	३९
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ	२	७२

क

कथं न ज्ञेयमस्माभिः	१	३९
कथं भीष्ममहं संख्ये	२	४
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि	२	५१
कर्मण्येवाधिकारस्ते	२	४७
कामात्मानः स्वर्गपराः	२	४३
कार्पण्यदोषोपहत	२	७
काश्यश्च परमेष्वासः	१	१७
कुतस्त्वा कश्मलमिदम्	२	२
कुलक्षये प्रणश्यन्ति	१	४०
कृपया परयाविष्टो	१	२८
क्रोधाद्भवति संमोहः	२	६३
क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ	२	३

ग

गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्	१	३०
गुरूनहत्वा हि महानुभावान्	२	५

ज

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः	२	२७

त

	अ.	श्लो.
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च	१	१३
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते	१	१४
तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः	१	२६
तमुवाच हृषीकेशः	२	१०
तस्माद्यस्य महाबाहो	२	६८
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुम्	१	३७
तस्य संजनयन्हर्षम्	१	१२
तं तथा कृपयाविष्टम्	२	१
तानिसर्वाणिसंयम्य	२	६१
त्रैगुण्यविषया वेदाः	२	४५

द

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः	२	५६
दूरेण ह्यवरं कर्म	२	४९
दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकम्	१	२
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे	२	१३
देही नित्यमवध्योऽयम्	२	३०
दोषैरेतैः कुलघ्नानाम्	१	४३
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च	१	१८

ध

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे	१	१

	अ.	श्लो.
धृष्टकेतुश्चेकितानः	१	५
ध्यायतो विषयान्पुंसः	२	६२
न		
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण	१	३२
न चैतद्विद्मः कतरन्नो	२	६
न जायते म्रियते वा	२	२०
न त्वेवाहं जातु नासम्	२	१२
न हि प्रपश्यामि	२	८
नासतो विद्यते भावः	२	१६
नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य	२	६६
निमित्तानि च पश्यामि	१	३१
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः	१	३६
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति	२	४०
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि	२	२३
प		
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणाम्	१	३
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो	१	१५
प्रजहाति यदा कामान्	२	५५
प्रसादे सर्वदुःखानाम्	२	६५

ब

बुद्धियुक्तो जहातीह

भ

भयाद्रणादुपरतम्
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च
भीष्मद्रोणप्रमुखतः
भोगैश्वर्य प्रसक्तानाम्

म

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय

य

य एनं वेत्ति हन्तारम्
यततोह्यपि कौन्तेय
यदा ते मोहकलिलम्
यदा संहरते चायम्
यदिमामप्रतीकारम्
यदृच्छया चोपपन्नम्
यद्यप्येते न पश्यन्ति
यं हि न व्यथयन्त्येते
यः सर्वत्रानभिस्नेहः
या निशा सर्वभूतानाम्
यामिमां पुष्पितां वाचम्
यावदेतान्निरीक्षेऽहम्

	अ.	श्लो.
यावानर्थ उदपाने	२	४६
युधामन्युश्चविक्रान्तः	१	६
येषामर्थे काङ्क्षितं नो	१	३३
योगस्थः कुरु कर्माणि	२	४८
योत्स्यमनानवेक्षेऽहम्	१	२३
र		
रागद्वेषवियुक्तैस्तु	२	६४
व		
वासांसि जीर्णानि यथा	२	२२
विषया विनिवर्तन्ते	२	५९
विहाय कामान्यः	२	७१
वेदाविनाशिनं नित्यम्	२	२१
व्यवसायात्मिका बुद्धिः	२	४१
श		
	अ.	श्लो.
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते	२	५३
श्वशुरान्सुहृदश्चैव	१	२७
स		
स घोषो धार्तराष्ट्राणाम्	१	१९
संकरो नरकायैव	१	४२
सीदन्ति मम गात्राणि	१	२९
सुखदुःखे समे कृत्वा	२	३८
स्थितप्रज्ञस्य का भाषा	२	५४
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य	२	३१
ह		
हतो वा प्रप्स्यसि	२	३७
हृषीकेशं तदा वाक्यम्	१	२१

❖ ❖ ❖

T.T.D. Religious Publications Series No. 234
Price : Rs 65 = 00

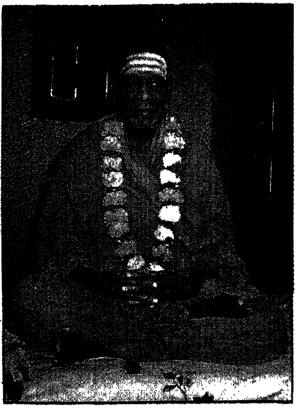

श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानन्दगिरिस्वामी

देश-विदेशों में गीता का संप्रति विस्तृत प्रचार हो रहा है। साहित्यज्ञ, राजनीतिज्ञ, दार्शनिक, कवि, पंडित आदि अपने-अपने दृष्टिकोणों से इस लोकोपयोगी कार्य में लगे हुए हैं। इसकी आवश्यकता को जानकर महान तपस्वी श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी द्वारा तेलुगु में विरचित 'गीता मकरंद' का हिन्दी रूपांतर तिरुमल तिरुपति देवस्थान द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है। सुपरिचित एवं हिन्दी व तेलुगु भाषाओं में निष्णात तथा हैदराबाद के निवासी श्री वेमूरि राधाकृष्णमूर्ति ने इस कार्यभार को संभाला है।

'गीता मकरंद' हिन्दी अनुवाद का यह प्रथम भाग है। इसमें विस्तृत भूमिका सहित गीता के पहले दो अध्यायों का प्रकाशन किया जा रहा है। सहृदय पाठक इसका अध्ययन कर गीतोपदेशक परब्रह्म श्रीकृष्ण एवं श्री श्री श्री विद्याप्रकाशानंदगिरि स्वामीजी के अनुग्रह के पात्र बनें।

Published by **Dr. P. Krishnaiah**, I.A.S., Executive Officer,
T.T.Devasthanams and printed at T.T.D. Press, Tirupati.